वार्षिक हिन्दी पत्रिका

करभ

प्रकाशक व संपर्क सूत्र

निदेशक

राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र

(भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद्)

पोस्ट बैग–07, जोड़बीड़, बीकानेर–334 001 (राज.), भारत

दूरभाष : 0151–2230183, 2230858, 2230070

फैक्स : 0091–151–2231213

ई–मेल : nrccamel@nic.in

वेबसाइट : www.nrccamel.res.in

करभ – 2013

वार्षिक हिन्दी पत्रिका

संरक्षक व प्रकाशक

डॉ. नितीन वसन्तराव पाटिल

निदेशक, राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द, बीकानेर

प्रधान सम्पादक

डॉ. फतेह चन्द टुटेजा

वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं प्रभारी राजभाषा

सम्पादक

श्री नेमीचन्द बारासा

वरिष्ठ तकनीकी अधिकारी

संपादन सहयोग

डॉ. संजय कुमार, वैज्ञानिक

डॉ. राकेश कुमार पूनियाँ, तकनीकी सहायक

मुद्रक

युगान्तर प्रकाशन प्रा. लि.

डब्ल्यू एच–23, मायापुरी, नई दिल्ली–110064

दूरभाषः 011–28115949

नोट : पत्रिका में प्रकाशित लेखों में विचार लेखकों के अपने हैं। इन विचारों के लिए प्रकाशक अथवा 'करभ' पत्रिका का सम्पादक मण्डल किसी भी प्रकार से उत्तरदायी नहीं है।

अनुक्रमणिका

विषय	पृष्ठ संख्या
* राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र : नवोन्मेषी व व्यावहारिक प्रयास	1
* राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र : चल चिकित्सालय	4
* प्रजनन क्षेत्र में उष्ट्र दुग्ध उत्पादन एवं संरक्षण	9
* परिवर्तित परिदृश्य में उष्ट्र पोषण	14
* दुधारू ऊँटनी तथा टोरडियों का गर्मी के प्रकोप से करें बचाव	17
* ऑटिज्म बनाम ऊँटनी का दूध	21
* उष्ट्र दुग्ध की जैविक गतिविधियाँ	23
* ऊँटों में खाज–खुजली रोग का प्रबंधन	26
* ऊँटो के उत्पादन एवं स्वास्थ्य सुधार में जैव–प्रौद्योगिकी का अनुप्रयोग	29
* ऊँटनी के नवजात बच्चों में कोलोस्ट्रम एवं दूध का महत्व	33
* हायडाटीडोसिस : ऊँटों व मनुष्यों में होने वाला एक परजीवी रोग	36
* पिछले एक दशक के दौरान बीकानेर और राजस्थान में प्रदेश जनसँख्या, पशुधन और कृषि की गतिशीलता	40
* नवजात टोरडियों के सर्वांगीण विकास हेतु खीस है जरूरी	50
* डेयरी फार्मिंग में कार्बन फुट–प्रिंट नियंत्रण	52
* लिफोलाइजेशन विधि द्वारा दूध पाउडर का उत्पादन	55
* ऊँटों में वरुथी संक्रमण एवं प्रबंधन	57
* ऊँट जनसंख्या में कमी : कारण, उपाय एवं संभावनाएँ	59
* आहार ब्लॉक द्वारा संतुलित पशु पोषण	63
* फ्लोराइड विषाक्तता व स्वास्थ्य पर उसके कुप्रभाव	66
* हेला कोशिका : एक अश्वेत महिला का विज्ञान को अमर योगदान	70

विषय	पृष्ठ संख्या
* पशु आहार के नवीनतम आयाम	73
* स्वस्थ जीवन हेतु अपनाएं सहज योग	76
* मरूधरा की शान : ऊँट	79
* भारत में बौद्धिक सम्पदा अधिकार	81
* वन वर्ल्ड – वन हेल्थ' अथवा 'एक संसार – एक स्वास्थ्य'	86
* साईबर : अपराध एवं सुरक्षा	89
* पशुधन विसर्जित मीथेन उत्सर्जन – एक सकारात्मक पहलू	91
* आमन्त्रित रचना	94
* बिजली की आँख मिचौली	96
* औलाद के लिए (1), अजीब लगता है (2)	97
* यायावरी और घुलती कुंठाएँ	98
* कापीराइट कानून : पुस्तकालय के संदर्भ में	101
* राजभाषा संबंधी कार्यक्रम एवं गतिविधियाँ	104
* आपके पत्र	114

शरद पवार
SHARAD PAWAR

सत्यमेव जयते

कृषि एवं खाद्य प्रसंस्करण उद्योग मंत्री
भारत सरकार
MINISTER OF AGRICULTURE &
FOOD PROCESSING INDUSTRIES
GOVERNMENT OF INDIA

संदेश

राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र, बीकानेर की राजभाषा पत्रिका 'करभ' के 11 वें अंक के प्रकाशन पर मेरी ओर से हार्दिक शुभकामनाएं संप्रेषित करता हूँ।

भारत देश में पशुपालन व्यवसाय, कृषि व्यवसाय की रीढ़ की हड्डी के रूप में जाना जाता है और यह व्यवसाय कृषि अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ता प्रदान करने में सहायक है। परिषद द्वारा विकसित नूतन व मौलिक तकनीकियाँ सकारात्मक परिणामों की ओर अग्रसर हैं तथा देश का जागरूक किसान इन्हें अपनाकर अधिकाधिक लाभान्वित हो सकता है।

मरुप्रदेश में ऊँट से बेहतर कोई विकल्प नहीं है। फलस्वरूप इसका महत्व और अधिक बढ़ जाता है परंतु परिवर्तित परिदृश्य में जहां विविध कारण इसके महत्व को सीमित करने में लगे हैं वहीं राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र, बीकानेर द्वारा ऊँटों एवं इसके पालकों के सुखद भविष्य के लिए नए आयाम तलाशने की कवायद निरन्तर जारी है जो कि नितांत आवश्यक भी है।

ऊँट पालकों एवं किसानों को वैज्ञानिक एवं तकनीकी जानकारी का संप्रेषण सरल व सुबोध भाषा में होने पर यह अधिक कारगर सिद्ध होगी। केन्द्र की राजभाषा पत्रिका 'करभ' ऊँट पालकों एवं किसानों के हितार्थ उपयोगी ज्ञान के प्रसार में सतत प्रयत्नशील है।

मैं राजभाषा पत्रिका 'करभ' के ग्यारहवें अंक के सफल प्रकाशन हेतु पुनः शुभ कामनाएं संप्रेषित करते हुए केन्द्र निदेशक एवं संपादक मण्डल को बधाई देता हूँ।

(शरद पवार)

भाकृअनुप
ICAR

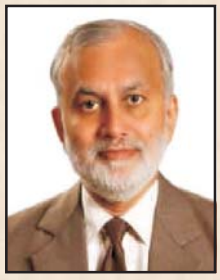

डा. एस. अय्यप्पन
सचिव एवं महानिदेशक

भारत सरकार
कृषि अनुसंधान और शिक्षा विभाग एवं
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद्
कृषि मंत्रालय, कृषि भवन, नई दिल्ली–110 001
दूरभाष: 91–11–23382629; 23386711
फैक्स: 91–11–23384773
ई–मेल: dg.icar@nic.in

संदेश

राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र, बीकानेर द्वारा राजभाषा पत्रिका 'करभ' के 11 वें प्रकाशन पर मेरी ओर से बहुत–बहुत बधाई एवं शुभकामनाएं।

आज का जागरूक किसान सूचना व प्रौद्योगिकी के नवीन आयामों को सहर्ष लेना चाहता है। इसी क्रम में देश के अनेक किसानों ने वैज्ञानिक ज्ञान को सूझबूझ से अपनाकर सफलता के नए मायने प्रस्तुत किए हैं। यह प्रासंगिक भी है क्योंकि कृषि प्रधान इस देश का पारंपरिक गूढ़ ज्ञान काफी हद तक विस्मृत किया जा चुका है। ऐसे में वैज्ञानिक आधार पर जाँची–परखी गई मौलिक व उन्नत तकनीकी, कृषि व पशुपालन व्यवसाय से श्रेष्ठ उत्पादन व लाभ प्राप्ति हेतु एक बेहतर विकल्प के रूप में उपलब्ध है। किसानों एवं वैज्ञानिकों के मध्य विचारों एवं ज्ञान का आदान–प्रदान एक परिष्कृत व प्रयोजन युक्त सोच को विकसित करने में अत्यधिक सहायक है जो न केवल अधिक कारगर सिद्ध होगी अपितु इससे वैज्ञानिक अनुसंधानों की सार्थकता भी तय की जा सकेगी।

यह केन्द्र ऊँटों के विकास एवं संरक्षण हेतु प्रतिबद्ध है तथा परिवर्तित परिदृश्य में अपने विविध अनुसंधानिक व व्यावहारिक क्रियाकलापों के माध्यम से उष्ट्र प्रजाति की विलक्षणताओं एवं उपयोगिता को सिद्ध करना चाहता है। यह निहायत जरूरी भी है क्योंकि प्रदेश का ऊँट पालक भौगोलिक विषमताओं एवं परिस्थितियों के कारण उष्ट्र पालन व्यवसाय से कटता जा रहा है। फलतः ऊँटों की संख्या भी प्रभावित हुई हैं। ऐसे में उष्ट्र प्रजाति का पुनः महत्व एवं उपयोगिता स्थापित करने हेतु ऊँट पालक व किसान केन्द्र की विकसित तकनीकियों व पद्धतियों का उष्ट्र पालन व्यवसाय में भरपूर उपयोग कर अपनी आजीविका में सुधार ला सकते हैं। केन्द्र अपनी महत्वपूर्ण उपलब्धियों को विभिन्न माध्यम से प्रचारित–प्रसारित करता है तथा राजभाषा पत्रिका 'करभ' भी एक सशक्त माध्यम के रूप में उभर कर सामने आई है।

राजभाषा पत्रिका 'करभ' ऊँट पालकों एवं किसानों को निरन्तर अपनी पुख्ता व उपयोगी ज्ञान से लाभान्वित करें, इन्हीं शुभकामनाओं के साथ केन्द्र निदेशक एवं पत्रिका से जुड़े सभी रचनाकारों को उनके साहित्यिक योगदान के लिए पुनः बधाई देता हूँ।

एस. अय्यप्पन

(एस. अय्यप्पन)

भाकृअनुप
ICAR

प्रो. कृष्ण मुरारी लाल पाठक
उपमहानिदेशक (पशु विज्ञान)

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद्
कृषि भवन, डा. राजेंद्र प्रसाद मार्ग, नई दिल्ली–110 114
दूरभाष: (कार्या.) 23381119, 23388991–7 एक्सटेंशन: 200
फैक्स: 009–11–23097001, 23387293
ई–मेल: ddgas.icar@nic.in

संदेश

राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र, बीकानेर द्वारा राजभाषा वार्षिक पत्रिका 'करभ' के नूतन अंक के प्रकाशन पर मेरी ओर से हार्दिक शुभ कामनाएं एवं बधाई।

प्रचार–प्रसार के इस युग में इस बात की महत्ती आवश्यकता है कि वैज्ञानिक अन्वेषण सरल व सहज रूप में अधिकाधिक पशुपालक वर्ग तक पहुँचे ताकि पशुपालक पशु नस्ल, प्रजनन, पोषण, प्रबंधन आदि से जुड़ी गहन वैज्ञानिक जानकारी को ग्रहण कर अपने पशु से अपेक्षा के अनुरूप उत्पादन प्राप्त कर सकें। इससे पशु की उपयोगिता एवं उसके प्रतिपालक का जीवन खुशहाल बनेगा।

मरूस्थल के बदलते स्वरूप में ऊँट की प्रासंगिकता एवं उसकी आर्थिक महत्ता के सशक्तिकरण हेतु केन्द्र द्वारा ऊँटों के प्रजनन, पोषण, शरीर क्रिया विज्ञान, स्वास्थ्य आदि विभिन्न पहलुओं पर गहन वैज्ञानिक अनुसंधान जारी है। केन्द्र द्वारा अपने विभिन्न प्रचार–प्रसार कार्यक्रमों एवं गतिविधियों के माध्यम से पशु पालकों, सरकारी एवं गैर सरकारी संगठनों, जन जातीय समुदाय, ग्रामीण महिला व शिक्षित युवा किसानों से जुड़ने के तीव्र प्रयास निश्चित रूप से प्रशंसनीय हैं। केन्द्र ऊँटों से जुड़ी प्रत्येक महत्वपूर्ण जानकारी को राजभाषा के माध्यम से प्रकाशित करने को प्राथमिकता देता है। ऊँट प्रजाति को संरक्षित और पोषित करने हेतु केन्द्र की ऐसी प्रत्येक क्रियाशीलता इस व्यवसाय के बीच सहजीविता के एक नये आयाम को परिभाषित करती है।

मैं राजभाषा पत्रिका 'करभ' के 11 वें अंक के प्रकाशन पर अपनी ओर से पुनः हार्दिक शुभकामनाएं एवं इस अंक के सभी लेखकों को बधाई संप्रेषित करता हूँ।

(के.एम.एल. पाठक)

भाकृअनुप
ICAR

संरक्षक की कलम से

केन्द्र का महत्वपूर्ण प्रकाशन 'करभ' अपने ग्यारहवें सोपान की ओर अग्रसर है तथा यह मेरे लिए अत्यंत सुखद अनुभूति है। इतिहास इस बात की पुष्टि करता है कि ऊँट नामक इस निरा प्राणी ने मानव जाति को विषम परिस्थितियों में अतुलनीय योगदान दिया तथा बदले में सूखे जंगल के डंठल पर ही अपना निर्वहन स्वीकार कर लिया। परंतु आधुनिक युग में ऊँट के पारंपरिक उपयोगों को नाकाफी मानते हुए इस प्रजाति के भविष्य को लेकर अनेक कयास लगाए जाने लगे हैं। इसके लिए ऊँट को दोषी ठहराया जाना न्यायोचित नहीं है क्योंकि मशीनीकरण, चरागाहों का सीमित होना, परिवर्तित मानव जीवन शैली एवं विशेषकर पशु पालन समुदाय के युवाओं का अनाकर्षण, ऊँटों की अवैध तस्करी व वध आदि तमाम कारण इसकी उपयोगिता व महत्व को प्रभावित कर रहे हैं। ऐसे में ऊँटों की पारंपरिक उपयोगिता के साथ–साथ नवीन आयामों यथा– दूध, पर्यटन, मनोरंजन (दौड़), लघु व कुटीर उद्योग व्यवसाय आदि को अधिकाधिक प्रोत्साहन दिया जाना होगा जिससे इस प्रजाति का एक सुरक्षित भविष्य सुनिश्चित किया जा सके।

यह केन्द्र ऊँटों के विभिन्न पहलुओं से जुड़े अनुसंधान कार्यों तथा व्यावहारिक गतिविधियों के माध्यम से 'ऊँट' प्रजाति के संरक्षण एवं विकास हेतु समर्पित भाव से कार्य कर रहा है तथा प्रचार–प्रसार के माध्यमों को भी महत्वपूर्ण संवाहक मानते हुए भाषा साहित्य को प्राथमिकता देता है। इसी क्रम में केन्द्र की राजभाषा वार्षिक पत्रिका 'करभ' निरन्तर अपनी उपयोगिता सिद्ध कर रही है। केन्द्र स्तर पर राजभाषा के प्रगामी प्रयोग हेतु विविध कार्यक्रम एवं गतिविधियाँ नियमित रूप से संचालित की जाती है तथा इनमें वैज्ञानिकों एवं अधिकारियों की सहर्ष भागीदारी हमें उत्साहित करती हैं।

मैं, पत्रिका के इस अंक के प्रकाशन पर केन्द्र के सभी वैज्ञानिकों, तकनीकी अधिकारियों एवं कर्मचारियों के साथ–साथ इस प्रकाशन से जुड़े सभी लेखकों को बधाई देता हूँ जो इस पवित्र एवं नैतिक कार्य में अपनी रचनाधर्मिता के माध्यम से महत्वपूर्ण योगदान दे रहे हैं।

(नितीन वसन्तराव पाटिल)
निदेशक

राष्ट्रीय ऊष्ट्र अनुसंधान केन्द्र
NRCC

प्राक्कथन

हिन्दी भाषा देश की एक अत्यंत समृद्ध भाषा है जो जन–जन में रची बसी है। यह जन कल्याण की भाषा है तथा संपूर्ण देश को एकसूत्र में पिरोने में यह संवाहक के रूप में कार्य कर रही है।

प्रदेश की संस्कृति की बात करें तो यह सर्वाधिक उपयुक्त भाषा है जिसमें विचारों का आदान–प्रदान सहज व सरल रूप में किया जाता है। ऐसे में किसी भी प्रकार की वैज्ञानिक व तकनीकी ज्ञान का संप्रेषण राजभाषा हिन्दी में किया जाना स्वाभाविक है। केन्द्र भी इस दिशा में अपने विविध प्रयास करता है तथा ऊँट पालकों, किसानों आदि से हिन्दी भाषा के माध्यम से ही संपर्क स्थापित किया जाता है। उन्हें वैज्ञानिक व तकनीकी ज्ञान का हस्तांतरण किया जाता है। केन्द्र का यह मानना है कि जरूरतमंद किसान के पास अनुसंधान का लाभ पहुंचेगा तभी अनुसंधान अपनी सार्थकता सिद्ध करेंगे।

भाषा के विकास एवं समृद्धि के लिए यह भावना प्रेरणादायक है तथा करभ पत्रिका इसका प्रतिफल है जो निरन्तर ऊँट पालकों व किसानों के लिए उपयोगी जानकारी के संप्रेषण का एक सशक्त माध्यम बन कर सामने आ रही है। पत्रिका 'करभ' में तकनीकी ज्ञान को सीधे तौर पर अपनाए जाने हेतु उपयोगी जानकारी समाहित किए जाने का भरसक प्रयत्न किया जाता है।

केन्द्र की राजभाषा पत्रिका के इस अंक हेतु वैज्ञानिक व तकनीकी आलेख तथा रचनाएं उपलब्ध करवाने वाले सभी लेखकों के हम आभारी हैं। इस अंक के प्रति पाठकों का रूझान बढ़ाने हेतु राजभाषा के साथ–साथ प्रादेशिक भाषा (राजस्थानी) साहित्य का भी पुट दिया गया है।

पत्रिका 'करभ' निरन्तर अपनी सार्थकता सिद्ध करती रहे तथा इसमें नवीन व उपयोगी ज्ञान का समावेश हो, इस हेतु आपके विचार सदैव हमारे लिए अनुकरणीय रहेंगे।

फतेह

(फतेह चन्द टुटेजा)
प्रभारी राजभाषा

राष्ट्रीय ऊष्ट्र अनुसंधान केन्द्र
NRCC

राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र : नवोन्मेषी व व्यावहारिक प्रयास

नितीन वसन्तराव पाटिल, निदेशक
राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र, बीकानेर

राजस्थान प्रदेश के शुष्क भूभाग में बसा बीकानेर नगर अपने ऐतिहासिक शौर्य, लोक संस्कृति, लोक कथाओं एवं दर्शनीय पृष्ठभूमि के लिए विश्व विख्यात है। इसी लोकप्रियता की कड़ी में वर्ष 1984 को एक अध्याय और जुड़ा। अपने आप में अनूठी उष्ट्र प्रजाति के समग्र विकास व महत्व को दृष्टिगत रखते हुए भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद द्वारा महत्वपूर्ण अधिदेशों के साथ राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र की स्थापना 5 जुलाई, 1984 को की गई। केन्द्र ने उष्ट्र प्रजाति पर गहन अनुसंधान द्वारा विकास की क्रमिक यात्रा तय करते हुए ऊँटों के विभिन्न पहलुओं यथा– प्रजनन, जनन, नस्ल निर्धारण, पौष्टिकता, शारीरिक कार्यक्षमताओं, स्वास्थ्य एवं विभिन्न रोगों आदि पर महत्वपूर्ण अनुसंधान कर न केवल राष्ट्रीय अपितु अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी अपनी विशिष्ट पहचान बनाई हैं।

परंतु परिवर्तित परिदृश्य में इस प्रजाति के सर्वांगीण विकास एवं संरक्षण को ध्यान में रखते हुए केन्द्र द्वारा कुछ नवोन्मेषी व व्यावहारिक कार्यों एवं गतिविधियों को प्राथमिकता दी जा रही है। केन्द्र इस बात से भलीभांति परिचित है कि आज मरूस्थल के बदलते स्वरूप में ऊँट प्रजाति को आर्थिक प्रासंगिकता की कसौटी पर खरा उतारने की मांग बलवती है। जब उष्ट्र प्रजाति के वर्चस्व को पुनः स्थापित करने की बात उठती है तो सबकी नजरें राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र, बीकानेर पर आकर टिक जाती है जो कि इस बात का द्योतक है कि केन्द्र इस प्रजाति एवं इसके पालकों के सर्वांगीण विकास व लाभार्थ महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहा है।

केन्द्र ऊँटों के विभिन्न पहलुओं पर अपना गहन अनुसंधान जारी रखते हुए इस प्रजाति की विशिष्ट क्षमताओं को उजागर करने की कवायद में जुटा है। हाल ही में हुए अनुसंधानों से यह पता चला है कि ऊँट के रक्त में उपस्थित इम्यूनोग्लोबिन्स मानवीय इम्युनोग्लोबिन्स से लगभग 35 प्रतिशत समानता रखते हैं। साथ ही यह इम्यूनोग्लोबिन्स एक विशिष्ट प्रकार की संरचना धारण करते हैं जिससे इसे बहुतांश बीमारियों से लड़ने की सक्षमता प्रदान करता है। ऊँट के इस इम्यूनोग्लोबिन्स को 'नैनो एन्टीबॉडीज' के रूप में जाना गया है। इन नैनो एन्टीबॉडीज की सक्षमता इनके आकार, जैव प्रणाली कारण लक्ष्य (उत्तकों) को पहचानने व इनमें दाखिल होने की तत्परता प्रदान करता है तथा जैव प्रौद्योगिकी की दृष्टि से इसकी संरचना में सहजता भी इसे चिकित्सा जगत में एक विशिष्ट दर्जा दिलवा रहा है जिससे मानवीय रोगों के निदान व उपचार हेतु इन नैनो एन्टीबॉडीज को उपयोग में लेना संभव हो पाया है। इन तकनीकों का इस्तेमाल कर बहुतांश मानव व पशुओं के रोगों को पहचानने व संपूर्ण उपचार हेतु विभिन्न औषधी विज्ञान के उत्पाद तैयार किए गए हैं जो भविष्य में सभी प्रकार की पशु एवं मानवीय बीमारियों का अचूक ज्ञान व उपाय योजना का साधन सिद्ध होगा। जैव प्रौद्योगिकी से तैयार ऊँट इम्यूनोग्लोबिन के लगभग 50 ऐसे उत्पादों हेतु पैटेन्ट दाखिल हो चुके हैं व इसका और प्रसार होना तय है। इसमें ऊँटनी का दूध, रक्त आदि प्रमुख तौर पर हैं। साथ ही ऊँटों के विभिन्न रोगों की प्रभावी रोकथाम के उपाय व निदान तलाशते हुए ऊँट पालकों को अधिकाधिक राहत प्रदान की जा सके। केन्द्र अपने अधिदेशों को ध्यान में रखते हुए कुछ व्यावहारिक व मौलिक प्रयास करता है जो वास्तविकता में कारगर सिद्ध हो सके।

इसी कड़ी में वर्ष 2012 में उष्ट्र–हितधारक समन्वय कार्यशाला का आयोजन किया गया जिसमें ऊँटों के पोषण एवं स्वास्थ्य प्रबंधन, उष्ट्र दुग्ध उत्पादों का विकास, लोकप्रियता एवं व्यावसायीकरण एवं उद्यमिता दिवस जैसे तमाम विषयों एवं मुद्दों पर गहन बातचीत की गई। यह कार्यशाला एक कुबड़ीय एवं दो कुबड़ीय ऊँटों की भावी संभावनाओं के परिप्रेक्ष्य में एक महत्वपूर्ण पहल थी जिसमें केन्द्र के विषय–विशेषज्ञ वैज्ञानिक गण, देशभर के उद्यमी एवं ऊँट पालक एक साथ एक मंच पर जुड़े। ऊँटों की त्वचा, बाल एवं हड्डी से निर्मित बेहतरीन उत्पादों को कुशल कारीगरों ने सदन में रखते हुए अपने अनुभव बांटे। ऐसे में यह बात सामने उठकर आई कि ऊँट प्रजाति के विकास हेतु असीम संभावनाएं हैं, जरूरत केवल उन्हें प्रोत्साहित व प्रेरित करने की हैं जो न केवल ऊँटों की घटती संख्या को विराम लगाने में मददगार हो सकती है अपितु यह इस व्यवसाय से जुड़े लोगों के लिए नैराश्य की भावना को कोसों दूर करते हुए उनमें एक नई ऊर्जा का संचार कर सकती है।

रेगिस्तान में रहने वाले लोगों के लिए ऊँटनी का दूध एक स्वास्थ्यवर्धक पेय पदार्थ है। केन्द्र द्वारा इसके दूध पर हुए अनुसंधानों ने इसकी महत्ता सिद्ध की है। स्वाद में हल्का नमकीन, लगभग 11 प्रतिशत सकल ठोस पदार्थ, 2–4 प्रतिशत प्रोटीन तथा 2–5 प्रतिशत वसा, 7.5 से 8.5 प्रतिशत वसा रहित ठोस, 52 युनिट इन्सुलिन युक्त यह दूध लैक्टोपरऑक्सीडेज एवं लाइसोजाइम की अधिक मात्रा होने के कारण काफी देर तक खराब नहीं होता है। परंतु लोक मान्यताएं व भ्रान्तियों के कारण ऊँटनी के दूध को वह स्थान नहीं मिल पा रहा है जिसका वह हकदार है। इसमें कोलेस्ट्रॉल की मात्रा गाय के दूध की अपेक्षा कहीं कम होती है। साथ ही लोहे तथा विटामिन 'सी' की मात्रा भी अधिक होती है। अनिवार्य वसीय अम्लों के कारण यह कैंसर रोग में प्रभावी है वहीं मधुमेह के उपचार में भी प्रभावी रूप से कार्य करता है। बीटा–लेक्टॉग्लोब्यूमिन प्रोटीन न के बराबर होने के कारण मनुष्यों में एलर्जी नहीं करता है। साथ ही अल्फा–लेक्टॉग्लोब्यूमिन प्रोटीन ज्यादा मात्रा में होने के कारण यह रोग–प्रतिरोधी है। क्षय रोग, हेपेटाइटिस–सी तथा त्वचा रोग संक्रमण में भी प्रभावी हैं। किण्वित दूध के प्रोबायोटिक अतिसार, श्वास–रोगों एवं एलर्जी में प्रभावी है। लेक्टोफेरिन तथा इम्यूनोग्लोब्यूलिन–जी (IgG) इसे स्वास्थ्यवर्धक बनाते हैं। लेक्टोप्रोटीन की मात्रा अधिक होने कारण यह कैल्शियम का अवशोषण बढ़ाता है। इससे सभी स्वादिष्ट उत्पाद जैसे खोवा, पनीर, खीर, कुल्फी, गुलाब जामुन आदि सुगमता से बनाये जा सकते हैं। इसके दूध में अनगिनत विशेषताएं विद्यमान होने के कारण केन्द्र ने ऊँटनी के दूध को अपनी उष्ट्र दुग्धशाला व मिल्क पार्लर तक न सीमित रखते हुए इसे फील्ड क्षेत्र पर ले जाने की मुहिम तेज कर दी है।

केन्द्र अपनी रचनात्मक प्रयासों के माध्यम से ऊँट पालन व्यवसाय को नूतन आयाम प्रदान करने हेतु ऊँट पालकों को तैयार करने की जुगत में लगा है। यह केन्द्र अपने आप में अनूठी 'ऊँटनी दूहने की प्रतियोगिता' ग्रामीण अंचलों में नियमित रूप से आयोजित कर जहां ऊँट पालकों को इस व्यवसाय की ओर अग्रसर कर रहा है वहीं आमजन के बीच ये प्रतियोगिताएं कौतूहल पैदा करती हैं। यह कोई दिवा–स्वप्न नहीं जो पूरा नहीं किया जा सकता क्योंकि कुछ दशकों पूर्व भारत देश में दूध को एक व्यवसाय के रूप

में नहीं लिया जाता था तथा आमजन अपनी जरूरतों को एक–दूसरे के पास उपलब्ध वस्तुओं के माध्यम से साझा करते हुए ही पूर्ण कर लेते थे। लेकिन धीरे–धीरे अर्थ प्रधानता के कारण लोगों की मानसिकता में परिवर्तन आया तथा गाय व भैंस आदि के दूध को बेचा जाने लगा। नतीजा आज आपके सामने हैं तो फिर जब बात आजीविका से जुड़ी हो तो ऊँटनी के दूध को भी व्यवसाय के क्षेत्र में उतारा जाना समय की मांग भी है। इसके लिए केन्द्र अपने स्तर पर ऊँटनी के दूध से विकसित मूल्य–सवंर्धित उत्पादों को बनाने संबंधी निःशुल्क प्रशिक्षण भी देता है तथा सरकारी व गैर सरकारी एजेंसियों से भी सम्पर्क साधने हेतु उत्सुक है ताकि ये ऊँटनी के दूध से बने उत्पादों को उनकी रोजमर्रा की जिंदगी में खाद्य पदार्थों के रूप में शामिल करवाते हुए आम जन में इन्हें लोकप्रिय व स्थायित्व प्रदान करवाने में मददगार बन सकें।

रचनात्मकता की इसी कड़ी में पर्यटन एवं लोक संस्कृति आदि की दृष्टि से उष्ट्र महत्व को प्रतिपादित करने हेतु पर्यटन विभाग उष्ट्र उत्सव जैसे वृहद कार्यक्रम नियमित रूप से आयोजित करता है। यद्यपि केन्द्र के उष्ट्र संग्रहालय में ऊँटों के बहु–उपयोगों को प्रभावी ढंग से प्रदर्शित किया गया है जहां न केवल ऊँटों से जुड़ी तमाम जानकारियाँ दी गई है बल्कि इस प्रजाति के विविध उपयोग हेतु भी एक सोच का निर्माण भी करती है। इसी कड़ी में विगत दो वर्षों से केन्द्र द्वारा अपने स्तर पर भी लघु उष्ट्र मेलों का आयोजन किया गया तथा इसके प्रति लोक रूझान से केन्द्र उत्साहित है। केन्द्र ने इन उष्ट्र मेलों में विभिन्न गतिविधियों के साथ ऊँटनी दूहने एवं उष्ट्र दौड़ प्रतियोगिताएं रखीं। क्योंकि भौतिकवादी इस युग में लोग मनोरंजन के विविध रूपों में अपनी आमदनी का एक बड़ा हिस्सा सहर्ष खर्च कर देते हैं तो फिर भला इस आधार पर एक उपयुक्त पशु होने के नाते ऊँट को क्यूँ न आगे लाया जाएं। अरब आदि देशों में उष्ट्र दौड़ जैसी प्रतियोगिताएं खासा प्रसिद्ध हैं।

केन्द्र ऊँट एवं ऊँट पालकों से जुड़ी तमाम समस्याओं एवं चुनौतियों से मुखातिब होना चाहता है ताकि इस व्यवसाय को स्थिरता प्रदान की जा सके। केन्द्र एक उष्ट्र चल चिकित्सालय के माध्यम से अपने वैज्ञानिकों की टीम नियमित रूप से जरूरतमंदों के पास भेजता है तथा उन्हें उचित निदान व सुझाव देता है। अब कोई भी ऊँट पालक केन्द्र को एसएमएस जैसी सन्देशवाही सुविधा के माध्यम से अपनी समस्या से अवगत करवा सकता है। केन्द्र आत्मा परियोजना के तहत उष्ट्र पालन व्यवसाय प्रशिक्षण भी आयोजित करने हेतु तत्पर रहता है जिसके माध्यम से विशेषज्ञों द्वारा ऊँटों के रखरखाव व केन्द्र द्वारा विकसित नूतन प्रौद्योगिकी को अपनाए जाने की बात रखी जाती है। केन्द्र ने इसके आहार–दाने के ऐसे मानक तैयार किए हैं जो इस पशु के लिए संतुलित आहार के रूप में अपनाए जाने चाहिए। क्योंकि विगत कुछ वर्षों में तथा विविध कारणों से ऊँट पालक अपने गूढ़ ज्ञान को तेजी से विस्मृत करता जा रहा है, ऐसे में यह अधकचरा ज्ञान इस व्यवसाय को भी प्रभावित कर रहा है। वैज्ञानिक तरीके से ऊँटों का प्रबन्धन, उनके स्वास्थ्य व उत्पादन की दृष्टि से उपयोगी साबित हो सकते हैं।

निष्कर्षतः यह केन्द्र अपने विविध अनुसंधानों एवं व्यावहारिक व मौलिक प्रयासों के माध्यम से उष्ट्र प्रजाति के कल्याणार्थ गहनतापूर्वक कार्य कर रहा हैं तथा अपने प्रयासों को सफल बनाने हेतु केन्द्र ऊँट पालकों एवं आमजन की सहभागिता भी चाहता है क्योंकि अब वह समय नहीं रहा जब ऊँट को केवल पारम्परिक उपयोगों तक सीमित रखते हुए इसका व इसके पालक का निर्वहन सुनिश्चत किया जा सके।

❀❀❀❀

राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र : चल चिकित्सालय

एफ.सी. टुटेजा, वरिष्ठ वैज्ञानिक, **ए.के. नागपाल** एवं **एस. सिंह,** प्रधान वैज्ञानिक
राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र, बीकानेर

ऊँट भारत के थार मरूस्थल का महत्वपूर्ण एवं बहु उपयोगी पशु है। भारत में ऊँटों की संख्या लगभग 5.17 लाख है। ऊँट राजस्थान की सांस्कृतिक धरोहर के रूप में भी पहचाना जाता है। राजस्थान में ऊँटों का उपयोग मुख्य रूप से सामान ढोने, सवारी एवं हल चलाने में होता है। ऊँट रखने वाले कई परिवार इसके दूध का भी प्रयोग करते हैं। ऊँटनी का दूध पौष्टिक व स्वास्थ्यवर्धक है चूँकि ऊँट मुख्यतः प्राकृतिक वनस्पति पर चरते हैं। ऊँट की हड्डियों एवं चमड़े से हस्त शिल्प वस्तुएं बनाई जाती हैं जो पर्यटकों में काफी लोकप्रिय है। रेगिस्तानी सीमा पर, सुरक्षा बलों द्वारा सीमा निगरानी में भी ऊँट महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। उपरोक्त सभी कार्यों के लिए ऊँटों का सुडौल होना भी अति आवश्यक है। इसको ध्यान में रखते हुए राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र, बीकानेर ने निकटवर्ती गांवों में बीमार ऊँटों के उपचार एवं केन्द्र की गतिविधियों के प्रचार–प्रसार के लिए चल उष्ट्र चिकित्सालय की शुरूआत सन 2010 में की। इस चल उष्ट्र चिकित्सालय में विषय–विशेषज्ञों द्वारा विभिन्न प्रकार की जानकारी प्रदान की जाती है जिनमें से कुछ मुख्य बिंदु इस प्रकार हैं :–

1. ऊँटों के स्वास्थ्य से सम्बन्धित जानकारी

उष्ट्र स्वास्थ्य में सामान्य बीमारियों का तुरंत इलाज एवं परामर्श दिया जाता है। सामान्य बीमारियाँ जो उष्ट्र में नियमित देखने को मिलती है, उनमें विशेषकर सर्रा (ट्रिपेनोसोमियेसिस), खुजली (मेंज), आफरा, निमोनिया, बंद (रुमिनल इम्पेक्सन), दस्त लगना, एक्टिंनोबेसिलोसिस, ऊँटनियों में थनैला रोग, टोरडियों में मुमड़ी (कन्टेजियस इक्थायमा), माता रोग (कैमल पॉक्स), ठीकरिया (स्किन कैंडिडीडीयोसिस) प्रमुख हैं। इन बीमारियों के तुरंत उपचार के अलावा बचाव के बारे में भी विषय–विशेषज्ञों द्वारा परामर्श दिया जाता है। जाँच एवं अनुसंधान हेतु बीमारी के नमूने भी एकत्र किये जाते हैं। उष्ट्र पालको को स्वास्थ्य–विशेषज्ञों द्वारा अन्य कई प्रकार के उचित परामर्श भी दिए जाते हैं जो प्रमुखतया ऊँटो में संक्रामक बीमारियों को फैलने से बचाना, सभी ऊँटों को समय–समय पर तिबरसा, पेट के कीड़े व पांव रोग का इलाज समय–समय पर करते रहने से सम्बन्धित होते हैं। इसके अलावा ऊँटों को चीचड़, मक्खी, मच्छर व जूं तथा गर्मियों में लू लगने से बचाना इत्यादि प्रमुख हैं।

साथ ही उष्ट्र पालकों को अन्य सम्बन्धित जानकारी जैसे कि जुनोटिक बीमारियाँ (वे संक्रामक बीमारियाँ होती

हैं जो पशुओं से मनुष्यों में लग जाती हैं) जैसे कि माल्टा बुखार (ब्रुसेलोसिस), क्षय रोग, कैम्पाईलोबैक्टरीयोसिस, हिड़काव (रेबीज), फीता कृमि, खुजली (मेंज) व फफूँद रोगों इत्यादि से बचाव की भी जानकारी दी जाती है।

2. ऊँटों में प्रजनन के बारे में जानकारी

ऊँटों में प्रजनन मुख्यतया शीत ऋतु में होता है एवं प्रजनन का समय प्रायः नवम्बर से मार्च माह तक होता है। प्रजनन हेतु नर ऊँट अच्छी नस्ल का होना चाहिए और स्वास्थ्य की दृष्टि से सुडौल होना चाहिए तथा शारीरिक भार न अधिक व न कम होना चाहिए। प्रजनन के लिए 6 से 14 साल तक की आयु उपयुक्त है। नर ऊँट 'झूट' के दौरान मुंह से गुल्ला व झाग निकाल कर विशेष प्रकार की आवाज करता है और दांतों को रगड़ने से विशेष प्रकार की आवाज निकालता है तथा पीछे के पांवों को चौड़ा करके पूंछ को ऊपर व नीचे फटकारता है, ये सभी 'झूट' के लक्षण हैं। टोले में हर तीन साल बाद नर ऊँट बदल लेना चाहिए ताकि अंतःप्रजनन (इन ब्रीडिंग) न हो।

अच्छे ऊँट की छोटी मुंह नाल, छोटे कान, छोटी पूंछ पतली गर्दन व ऊँट का आसन लम्बा व चौड़ा हो तथा घुटने के नीचे पैर पतले एवं पगथली छोटी हो। एडर छोटा हो तथा ज्यादा उभरा हुआ न हो एवं अगले पैर चलते समय एडर से रगड़ नही खाने चाहिए अर्थात् सीना चौड़ा होना चाहिए। पिछले पैरों के पुट्ठे चौड़े एवं मजबूत होने चाहिए। अंडकोष अधिक बड़े व लटके हुए न हो तथा शरीर से सटे हुए होने चाहिए।

मादा ऊँट लगभग 3–4 साल की आयु में वयस्क होती है और 4–5 वर्ष की आयु में ग्याभिन करवाने योग्य हो जाती है। मादा ऊँटों को सर्दियों में नवम्बर से मार्च तक कभी भी ग्याभिन करवाया जा सकता है। ऊँटनियों में गर्भकाल लगभग 13 महीने का होता है। सर्दियों में मादा ग्याभिन होती है, तो अगली सर्दियों में ब्याती है। ब्याने के बाद अगली सर्दी में फिर ग्याभिन करवाई जा सकती है। गर्भ धारण के समय मादा ऊँटनी स्वस्थ होनी चाहिए। मादा ऊँटनी 4 साल से लेकर 17–18 साल तक की आयु तक प्रजनन योग्य रहती है। यह देखा गया है कि ऊँट के मादा ऊँट से संसर्ग करवाने के 48 घंटे के अंतराल बाद उसी ऊँट से संसर्ग करवाने से गर्भ धारण करने की संभावना बढ़ जाती है।

3. ऊँटों के रखरखाव संबंधी जानकारी

ग्याभिन ऊँटनी को अन्य ऊँटों से अलग रखना चाहिए तथा उसके उपयुक्त आहार का विशेष तौर पर ध्यान रखना चाहिए। इस समय अगर हरा चारा उपलब्ध हो तो पशु को खिलाना चाहिए। 10 महीनों की गर्भित सांड़ों पर अधिक ध्यान देना चाहिए तथा चारे–दाने का विशेष प्रबंधन करना चाहिए। गर्भकाल की अंतिम अवस्था में टोले के अन्य ऊँटो से अलग रखना चाहिए। ब्याने से पहले ग्याभिन सांड दूसरी सांडों से अलग रहती है, बार–बार उठती व बैठती है, थनों का आकार बढ़ जाता है। मादा सांड के ब्याने से पहले उसके प्रजनन अंग ढीले या शिथिल पड़ जाते हैं तथा पूंछ के ऊपरी सिरे के दोनों ओर गढ्डे पड़ जाते हैं, अतः उस समय मादा सांड की खास निगरानी करनी चाहिए क्योंकि वह ब्याने का नजदीकी समय होता है। अतः मादा सांड के ब्याते समय किसी जानकार व्यक्ति का पास होना आवश्यक है। टोरडिए के जन्म के साथ ही उसे सांड को सूंघाना चाहिए जिससे कि मादा सांड अपने टोरडिए को अपना लें। मादा ऊँट की जर 8 से 12 घंटे के भीतर निकल जानी चाहिए अन्यथा पशु चिकित्सक को दिखाकर निकलवाना चाहिए। टोरडिए के नाड़े को नाभि से 4–5 ईंच की दूरी पर काटना चाहिए। टोरडिए के जन्म के बाद उसकी

नाभि में भी एंटीसेप्टिक दवा जैसे कि बीटाडीन लगानी चाहिए।

टोरडिए के जन्म लेते ही उसके नाक को साफ करना चाहिए, तथा उसके शरीर को पोंछना चाहिए। टोरडिया पैदा होने के एक घंटे बाद स्वयं दूध पीने की कोशिश करता है, इस समय टोरडिए की दूध पीने में मदद करनी चाहिए। मादा के पहले पांच दिन के दूध को 'खींस' अथवा कॉलेस्ट्रॉम कहते हैं। खींस रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाता है तथा इसमें पोषक तत्व काफी मात्रा में होते हैं। टोरडिए के जन्म के बाद मादा के आहार का ध्यान रखना चाहिए। ब्याने के बाद अगर टोरडिया पूरा दूध न पी सके तो थनों से पूरा दूध निकाल लेना चाहिए, अन्यथा थन खराब हो सकते हैं। प्रायः टोरडियों का जन्म सर्दियों में होता है, अतः ठंड से बचाव करना चाहिए और यदि इनका जन्म अप्रैल–मई में होता है तो गर्मी से बचाव करना चाहिए।

झूट' में ऊँट चारा खाना कम कर देता है। अतः उन दिनों में ऊँट को एक किलोग्राम गुड़ व आधा किलोग्राम तेल रोजाना देना चाहिए। झूट में ऊँट को दाना देना चाहिए जिसमें मोठ एवं जो दला हुआ दे सकते हैं या अन्य प्रकार के बाजार में उपलब्ध पशु आहार (कैटल फीड) भी 2–4 किलोग्राम तक दे सकते हैं।

4. ऊँटों के संतुलित पोषण के बारे में जानकारी

पारम्परिक उष्ट्र पालन में ऊँटों का पोषण मुख्यतया वनों एवम् चरागाहों की प्राकृतिक वनस्पति द्वारा होता है। आधुनिकीकरण से सिकुड़ते चरागाहों के कारण उत्पादन पर विपरीत प्रभाव पड़ा है। साथ ही जलवायु परिवर्तन से चरागाहों में स्थानीय घासें एवम् अन्य वनस्पतियों की उपलब्धता में कमी आ गई है। चरागाहों पर निर्भर रहने वाले पशुओं की आहार लागत बढ़ने से पशु पालकों की आय में कमी हुई है। खेती एवम् पशुपालन मिश्रित व्यवस्था में ऊँटों का महत्व इसलिए भी बढ़ जाता है कि पारिस्थितिकी अनुकूल विशेष घासों एवम् पेड़ों की पत्तियों का उपयोग जो अन्य पशु नहीं कर पाते, उनका उपयोग ऊँट कर सकता है।

उचित पाचन हेतु आहार में ऊर्जा, प्रोटीन, विटामिन एवम् खनिज लवणों का संतुलित मात्रा एवम् अनुपात में होना आवश्यक है। इसलिए सूखे चारे, हरे चारे एवम् दाने में उपस्थित पोषक तत्वों की मात्रा एवं उपलब्धता की जानकारी होना आवश्यक है साथ ही पशु के शारीरिक भार, उत्पादन क्षमता, वृद्धि दर एवम् पशुओं की विभिन्न उत्पादन अवस्थाओं के लिए आहार में आवश्यक प्रोटीन, ऊर्जा, खनिज लवणों की मात्रा का ज्ञान होना आवश्यक है। दुधारू पशुओं के लिए आवश्यक पोषक तत्वों की मात्रा, दूध की मात्रा तथा वसा पर निर्भर करती है। ऊँटों के मुख्य आहार मोठ, ग्वार फलगटी एवं मूंगफली चारा हैं। ऊँटों द्वारा खाये जाने वाले चारों तथा पत्तियों में प्रोटीन की पर्याप्त मात्रा होती हैं, ऊँटों के आहार में मुख्यतया ऊर्जा की कमी रहती है। ऊँटों को हरी घास एवं झाड़ियाँ, केवल मानसून के मौसम में उपलब्ध हो पाती है। शीतकाल में जब प्रजनन, जनन एवम् दुग्ध उत्पादन जैसी क्रियाएं शुरू होती है, उस दौरान प्राकृतिक वनस्पति सूख जाती है जिससे आवश्यक पोषक तत्वों की पूर्ति सम्भव नहीं हो पाती है। इस समय अनुपूरक आहार (सप्लीमेंटरी फूड) चारे अथवा दाने को देना आवश्यक हो जाता है। संतुलित आहार में प्रोटीन, ऊर्जा, विटामिन एवं खनिज लवणों की मात्रा शुष्क चारे, हरे चारे, दाने एवं खनिज लवण मिश्रण द्वारा उपलब्ध कराई जाती है।

पोषण में शुष्क पदार्थ बहुत ही महत्वपूर्ण है क्योंकि इसी के द्वारा पशु के उत्पादन एवं स्वस्थ रहने के लिए आवश्यक तत्वों की पूर्ति होती है जिसे सूखे चारे, हरे चारे

एवं दाने द्वारा पूर्ण किया जाता है। सामान्यतः एक वयस्क ऊँट को 1.1 से 1.2 प्रतिशत शुष्क पदार्थ की आवश्यकता होती है। ऊँटों को निर्वाह हेतु प्रति दिन 12 से 15 किलो कैलोरी की आवश्यकता होती है। ऊँटों को जीवन निर्वाह हेतु प्रति दिन 250–300 ग्राम पचनीय प्रोटीन की आवश्यकता होती है। गर्भावस्था में शुष्क पदार्थ की मात्रा बढ़कर 1.6 प्रतिशत हो जाती है। 6 माह की आयु वाले टोरडियों को 400 ग्राम प्रतिदिन वृद्धि के लिए और अधिक शुष्क पदार्थ 2.3 प्रतिशत शारीरिक भार चाहिए। दुग्धावस्था में शुष्क पदार्थ की प्रतिशत मात्रा 2.3 तक रहती है। ऊँटों के आहार में मुख्यतया ऊर्जा की कमी रहती है जिससे उत्पादन पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। प्रोटीन द्वारा अमीनो अम्ल नाइट्रोजन, सल्फर तथा अन्य तत्वों की पूर्ति होती है।

प्रत्येक ऊँट को कम से कम 60–120 ग्राम नमक तथा बच्चों को 30 से 60 ग्राम नमक प्रतिदिन खिलाना चाहिए। इससे पाचन क्षमता सही एवम् पानी पीने की रूचि बनी रहती है। आहार में 0.4 प्रतिशत कैल्शियम और 0.35 प्रतिशत फॉस्फोरस प्रति शुष्क पदार्थ का होना आवश्यक है। ऊँटों द्वारा खाये जाने वाले आहार में कैल्शियम पर्याप्त मात्रा में होता है लेकिन फॉस्फोरस की मात्रा कम होती है।

कैल्शियम एवं फॉस्फोरस की सही मात्रा एवं अनुपात को कम करने के लिए फॉस्फोरस अधिकता वाले चापड़ अथवा डाई कैल्शियम फॉस्फेट और मिनरल मिक्सचर खिलाना चाहिए।

स्थानीय तौर पर उपलब्ध खेजड़ी, नीम, अरडू, चना खार, गेंहू भूसा की उचित मात्रा से कम कीमत वाला संतुलित आहार तैयार कर सकते हैं जैसे आहार ईंटें वं सम्पूर्ण आहार गोलिका। इसमें स्थानीय रूप से उपलब्ध अपारम्परिक पदार्थों को जिसे सामान्यतः पशु खाना पसन्द नहीं करते, 10 से 20 प्रतिशत मिलाकर आसानी से खिलाया जा सकता है। इस तरह उपलब्ध अनुपयोगी संसाधनों का भी उचित उपयोग किया जा सकता है। साथ ही यह अधिक सुगमतापूर्वक लाया–ले जाया जा सकता है व सीमित जगह में अधिक मात्रा में भंडारण किया जा सकता है। उचित मात्रा में पोषक तत्व उपलब्ध होने के कारण पचनीयता अधिक होती है। इस प्रकार उत्पादन एवं स्वास्थ्य को बनाए रखा जा सकता है। संतुलित आहार के बहुत से लाभ है जैसे कि स्थानीय तौर पर उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों का उचित उपयोग, दुग्ध उत्पादन में बढ़ोतरी, प्रतिदिन लागत खर्चे में कमी, प्रजनन क्षमता में सुधार, पशु द्वारा कम मीथेन एवं नाइट्रोजन व फॉस्फोरस का उत्सर्जन। स्थानीय तौर पर उपलब्ध आहारीय संसाधनों के समुचित उपयोग से संतुलित आहार बनाकर तथा पशु को उत्पादन क्षमता के अनुरूप खिलाकर उत्पादन एवम् लाभ को बनाए रखा जा सकता है।

5. ऊँटनी के दूध का स्वच्छ उत्पादन एवं मूल्य–संवर्धन के बारे में जानकारी

स्वच्छ दूध उत्पादन हेतु सामान्य डेयरी प्रबंध प्रणाली में वैज्ञानिक सिद्धान्तों, प्रणालियों और कौशल का इस्तेमाल

करना चाहिए। पशुओं के दैनिक दुग्ध दुहने की प्रक्रिया दो बार करनी चाहिए। दूध दुहने का कार्य निश्चित समय पर किया जाना चाहिए। जहाँ तक संभव हो एक ही व्यक्ति द्वारा नियमित रूप से दूध दुहा जाना चाहिए। दूध दुहने वाले व्यक्ति को कोई भी संक्रामक रोग नहीं होना चाहिए और प्रत्येक बार दूध दुहने से पहले उसे अपने हाथों को एंटीसेप्टिक लोशन से धोना चाहिए। दूध दुहने का कार्य पूरे हाथों से, तीव्रता से और पूरी तरह किया जाना चाहिए तथा अंत में थन को निचोड़ लेना चाहिए।

पशु को साफ–सुथरे स्थान पर दूहा जाना चाहिए एवं थनों और अयन को एंटीसेप्टिक लोशन व गुनगुने पानी से धोना चाहिए और दुहने से पहले उन्हें सुखा लेना चाहिए। बीमार दुधारू पशुओं को सबसे अंत में दुहा जाना चाहिए ताकि संक्रमण को फैलने से रोका जा सके एवं इससे प्राप्त दूध को भी अलग रखना चाहिए। साफ–सफाई एवं स्वच्छता का निर्वाह करने के लिए समय–समय पर पशुओं को नहलाया जाना चाहिए। दुग्ध–उत्पादन और विपणन के बीच कम–से–कम अंतर रखा जाना चाहिए। साफ–सुथरे बर्तनों का इस्तेमाल करना चाहिए और दूध के रख–रखाव में स्वच्छता बरती जानी चाहिए। दूध की बाल्टी एवं अन्य बर्तनों को गरम पानी एवं डिटरजेन्ट से अच्छी तरह धोना चाहिए। परिवहन के दौरान दूध को बहुत ज्यादा हिलने–डुलने से बचाना चाहिए एवं दूध का परिवहन दिन के अपेक्षाकृत ठंडे समय में किया जाना चाहिए।

ऊँटनी के दूध का मूल्य संवर्धन करके इसकी उपयोगिता को बढ़ाया जा सकता है एवं मूल्य संवर्धन से तैयार उत्पादों को लम्बे समय तक रखने एवं परिवहन करने में आसानी होती है। ऊँटनी के दूध से विभिन्न पदार्थ जैसे चाय, कॉफी, मक्खन, घी, सुगन्धित दूध, पनीर, कुल्फी, दुग्ध पाउडर, मावा, गुलाब जामुन, बर्फी, पेड़ा, रसगुल्ला, राबड़ी, मीठी लस्सी इत्यादि बनाए जा सकते हैं।

उपरोक्त लिखित कुछ मुख्य बातें किसान भाइयों के मार्ग दर्शन के लिए हैं। आप उष्ट्र पालन एवं व्यवसाय से सम्बन्धित किसी भी प्रकार की जानकारी विषय–विशेषज्ञों से प्राप्त कर सकते हैं।

हिन्दी प्रतिष्ठा की भाषा है इसलिए नहीं कि वह शासन प्रशासन की भाषा है अपितु इसलिए कि वह उदात्त मानव मूल्यों की संवाहिका भाषा है। मूल्य के गिरते बाजार में विश्व को अच्छे मूल्यों की चीज देने की क्षमता हिन्दी में है और हिन्दी–विश्व इस उत्तरदायित्व का संयोजन है।

–प्रेम स्वरूप गुप्ता

धुर बरसालै लूंकड़ी, ऊँची घुरी खिणन्त।
भेळी होय जे खेल करै, जळधर अति बरसंत।।
–यदि वर्षा ऋतु के आरम्भ में लोमड़ियाँ अपनी 'घुरी' ऊँचाई पर खोदें एवं परस्पर मिलकर उछल–कूद करें तो समझिये की वर्षा होगी।

–उजास ग्रन्थ माळा–20 से साभार

प्रजनन क्षेत्र में उष्ट्र दुग्ध उत्पादन एवं संरक्षण

शरत् चन्द्र मेहता, प्रधान वैज्ञानिक
राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र, बीकानेर

अरबी ऊँट उनकी मरूस्थलीय जलवायु में उपयुक्तता के लिये जाने जाते हैं। अतिविषम भौगोलिक परिस्थितियों में यह मानव के लिये सामान ढोने का काम पीढ़ियों से करता आया है एवं इसकी जानकारी साहित्य, कला एवं संस्कृति में स्पष्ट दिखाई देती हैं, लेकिन अरबी ऊँटों की उपयुक्तता पहाड़ी क्षेत्र में किस प्रकार मानव जन जीवन को लाभान्वित कर रही है, इसकी जानकारी बहुत कम लोगों को हैं। ऊँटों की विभिन्न नस्लों के बारे में जब अध्ययन करते हैं तो यह रोचक तथ्य सामने आता है कि पुराने समय में मेवाड़ क्षेत्र में पहाड़ों पर आने–जाने एवं सामान लाने–ले जाने के साथ–साथ युद्ध की स्थिति में भी सहायता के लिये कुछ ऊँटों को यहाँ लाया गया एवं कालान्तर में यह ऊँट यहीं के होकर मेवाड़ी नस्ल के रूप में स्थापित हुए। आज के परिप्रेक्ष्य में यह नस्ल राजस्थान के उदयपुर, चित्तौड़गढ़ एवं राजसमन्द जिले में बहुतायत में पाई जाती है जबकि इनकी कुछ संख्या प्रतापगढ, बाँसवाड़ा, डूँगरपुर एवं मध्यप्रदेश के नीमच एवं मन्दसौर जिले तथा आसपास के क्षेत्रों में भी पाई जाती है। इस क्षेत्र की जमीन पहाड़ी है एवं यहाँ वर्षा अच्छी होती है, इस कारण यहाँ वनस्पतियाँ भी पर्याप्त मात्रा में उत्पन्न होती है। यह क्षेत्र समुद्र तल से लगभग 575 मीटर ऊपर है एवं पूर्व में 73^{0}20′ से 77^{0}20′ देशान्तर के मध्य एवं उत्तर में 22^{0}55′ एवं 25^{0}46′ अक्षांश के मध्य स्थित है। इस क्षेत्र की पहाड़ियों को "अरावली" की पहाड़ियों के रूप में जाना जाता है।

शारीरिक विशेषताएँ

मेवाड़ी ऊँट कुछ छोटे एवं गठीले होते हैं। इनके पिछले पुट्ठे मजबूत, पैर भारी एवं तला कठोर होता हैं, इन विलक्षणताओं के कारण ही ये पहाड़ियों में आसानी से विचरण कर पाते हैं। इनके बाल कुछ लम्बे एवं खुरदरे होते हैं जो कि इनकी पहाड़ों में पाये जाने वाले कीड़े–मकोड़ों एवं मधुमक्खियों से बचाव करने में मदद करते हैं। इनके शरीर का रंग हल्के भूरे से लगभग सफेद होता है। इनका सिर एवं गर्दन भारी होती है। बहुतायत में पाई जाने वाली बीकानेर नस्ल के ऊँटों से इनकी तुलना करें तो इनके सिर पर गड्ढ़ा (स्टोप) नहीं होता है। इनके आँखों, कानों, गर्दन आदि पर अधिक मात्रा में बाल नहीं पाये जाते हैं। इनका नथूना ढीला होता हैं एवं कान छोटे होते हैं। पूंछ भी छोटी होती है। इस नस्ल की मादाओं में दुग्ध शिरा एवं थन पूर्ण विकसित होते हैं। आणविक चिन्हों से विश्लेषण करने पर पता चलता है कि मेवाड़ी नस्ल के ऊँट बीकानेर, जैसलमेरी एवं कच्छी नस्ल के ऊँटों से भिन्न हैं (चित्र–1)।

चित्र 1 : मेवाड़ी नर ऊँट

पृष्ठ भूमि

मेवाड़ी नस्ल एवं ऊँटों के दूध उत्पादन का अवलोकन करने पर पता चलता है कि मेवाड़ी नस्ल ही ऊँटों की ऐसी

नस्ल है जो पिछले कई दशकों से दुग्ध उत्पादन हेतु पाली जा रही है। वर्ष 2004 से पूर्व इस नस्ल के बारे में बहुत ही कम जानकारी उपलब्ध थी। वर्ष 2004 में राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र, बीकानेर ने जैव प्रौद्योगिकी विभाग, भारत सरकार की एक परियोजना चलाई, उसके तहत देश के लगभग समस्त ऊँट पालन क्षेत्रों का सर्वेक्षण किया गया एवं वहाँ पाये जाने वाले ऊँटों के लक्षण एवं उनका आणविक परीक्षण किया गया। वर्ष 2007 में संयुक्त राष्ट्र संघ के कृषि एवं खाद्य संगठन ने अपने प्रकाशन में इस कार्य को प्रकाशित किया एवं यह नस्ल विश्व परिदृश्य पर अपना एक स्थान बनाने में सफल हुई। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के वैज्ञानिक प्रकाशनों में इसके बारे में महत्वपूर्ण जानकारी 2009 में प्रकाशित हुई। इस प्रकाशन में इसकी दुग्ध उत्पादन क्षमता एवं प्रजनन क्षेत्र में किस प्रकार उष्ट्र दुग्ध इस नस्ल के संरक्षण एवं उष्ट्र पालकों के जीविकोपार्जन में सहायक हैं, सामने आया है। इस प्रकार इस अनुवांशिकी स्रोत के सामने आने पर यह सोचा गया कि क्यों न इसका वैज्ञानिक विधि से पालन किया जाए एवं इसका चयन कर उन्नत नर प्रजनन हेतु उष्ट्र पालकों को उपलब्ध करवाए जाएं। इसी सोच के साथ राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र पर इनके समूह की स्थापना की गई एवं वैज्ञानिक पद्धति से इनका प्रजनन प्रारम्भ किया गया। इस केन्द्र पर इस नस्ल के करीब 78 ऊँट हैं जिनमें से 22 नर एवं 56 मादाएं हैं। अभी हाल ही में इनमें 3 नर एवं 3 मादा ऊँटों को और सम्मिलित किया गया हैं। ऊँटों का पालन मरूस्थलीय क्षेत्र में मुख्य रूप से बोझा ढोने के लिये होता था, इसलिये उष्ट्र पालन की समस्त गतिविधियाँ भी उसी अनुसार थी लेकिन अब ऊँटों में दुग्ध उत्पादन एक महत्वपूर्ण गुण के रूप में स्थापित होने के कारण इनके पालन–पोषण की विधियों में भी समुचित बदलाव लाया जा रहा है। ऊँटनी के दुग्ध के व्यापारिक विपणन एवं उससे जुड़े आयामों पर विचार किया जा रहा है एवं यथासंभव प्रयोग किये जा रहे हैं। इस संदर्भ में केन्द्र पर एक उष्ट्र दुग्धशाला की स्थापना की गई एवं इसके उत्पादों के विपणन के लिये पार्लर के माध्यम से सार्थक प्रयास किये जा रहे हैं।

अनुवांशिक उन्नयन के कार्यक्रम

बदलते हुए परिवेश में जहाँ यांत्रिकीकरण के कारण पशुओं के भार ढोने की क्षमता का उपयोग घटता जा रहा है वहीं अन्य उपयोगों से उनका संरक्षण करने एवं अनुवांशिक भिन्नता को बनाये रखने का प्रयास किया जा रहा है। मेवाड़ी उष्ट्र दुग्ध उत्पादन का स्वरूप उष्ट्र पालन क्षेत्रों में लागू करने के लिये एक विशिष्ट स्वरूप हैं। इससे न केवल पशुपालक को रोज आय होती है, बल्कि बदलते हुए परिवेश में ऊँटों को पालने का एक महत्वपूर्ण कारण भी देती है। इसी दिशा में कार्य को आगे बढ़ाते हुए देश में पाई जाने वाली अन्य उष्ट्र नस्लों को भी दुग्ध उत्पादन क्षमता के विकास की परियोजना में शामिल किया गया। वर्ष 2007 से 2012–13 के दौरान अध्ययन से यह पता चलता है कि –

- सामान्यतया एक ऊँटनी 6–7 लीटर दूध प्रतिदिन देती है।
- सामान्यतया ऊँटनी 16 महीने तक पर्याप्त दूध देती है।
- इस 16 महीने के दुग्धकाल में एक ऊँटनी करीब औसत 3000 लीटर दूध देती है।
- अच्छी ऊँटनियाँ औसत 10 लीटर दूध प्रतिदिन देती है।
- अत्यधिक उत्पादन दुग्धकाल के 5 वें महीने में होता है।
- अत्यधिक उत्पादन के दौरान अच्छी ऊँटनियाँ करीब 16 लीटर दूध देती है।
- ऊँटनियों में दुग्धकाल के दौरान दुग्ध उत्पादन क्षमता में अधिक कमी नहीं आती है।

- अत्यधिक दुग्ध उत्पादन क्षमता को लेकर दुग्ध काल में दुग्ध उत्पादन की कुल मात्रा का अनुमान आसानी से लगाया जा सकता हैं।
- दुग्ध उत्पादन की दृष्टि से इनको ऋतु अनुसार प्रजनन कराना ही अधिक लाभदायक है।

जीन आधारित चयन एवं प्रजनन

उपरोक्त जानकारी से यह स्पष्ट होता हैं कि ऊँटों की दुग्ध उत्पादन क्षमता को लेकर अब तक कोई चयन नहीं किया गया। आज के परिप्रेक्ष्य में संपूर्ण उष्ट्र जीनोम यानी ऊँट के सभी गुणसूत्रों पर स्थित जीन्स एवं उनकी उपयोगिता की जानकारी उपलब्ध है तथा उसको उपयोग मे लाने के लिये भी कई तरीके सामने आ रहे हैं। सामान्यतया उपयोगी जीन्स एवं उनके चयन हेतु विभिन्न चिन्हों का प्रयोग किया जाता हैं। यह देखा जाता है कि इन चिन्हों को लेकर अगर चयन किया जाये तो किस प्रकार के गुण चयनित पशु में आएंगे। इसी प्रकार के चयन को "चिन्ह आधारित चयन" कहते हैं। इस पद्धति का उपयोग काफी बढ़ रहा है एवं कम्प्यूटर से गणन क्षमता में वृद्धि होने के कारण अधिक से अधिक चिन्हों एवं उनका गुणों से सम्बन्ध स्थापित किया जा रहा है तथा उनका प्रयोग प्रजनन में किया जाने लगा है। प्रारम्भिक स्तर पर अनुवांशिकी के सिद्धान्तों अनुसार अच्छी दुग्ध उत्पादन क्षमता के ऊँटों का चयन विभिन्न सांख्यिकी सूत्रों के माध्यम से किया जाता है। एक ऊँट की दुग्ध उत्पादन क्षमता का पता लगाने के लिये अगर वह मादा है तो स्वंय का उत्पादन एवं अगर वह नर है तो उसकी संतानों का उत्पादन एवं अन्य जानकारी जैसे वंशानुगत उत्पादन क्षमता अथवा निकट के रिश्ते के ऊँटों की उत्पादन क्षमता का उपयोग किया जाता है। इस प्रकार विकसित किये गये एक समूह में समय–समय पर उच्च गुणवत्ता वाले नर अथवा मादा पशुओं को भी इस समूह में सम्मिलित किया जाता है। इससे गुणों में वृद्धि शीघ्रता से होती है एवं अन्तः प्रजनन के दोष कम आते हैं।

प्रजनन क्षेत्र में दुग्ध उत्पादन बढ़ाने की परिकल्पना

प्रजनन क्षेत्र में उष्ट्र दुग्ध उत्पादन क्षमता में वृद्धि हेतु परियोजना प्रारम्भ करने से पूर्व संभावनाओं का पता लगाना आवश्यक होता है ताकि यह अनुमान लगाया जा सके कि वर्तमान मे क्या स्थिति है एवं भविष्य में अच्छी

चित्र 2 : मेवाड़ क्षेत्र में उष्ट्र दुग्ध उत्पादन सर्वेक्षण

उपलब्धि प्राप्त करने के लिये किस प्रकार की परियोजना प्रारम्भ की जा सकती है। इसके लिये हाल ही में एक अध्ययन किया गया जिसमें राजस्थान के तीन प्रमुख जिले उदयपुर, चित्तौड़गढ़ एवं राजसमन्द के 17 गाँवों का दौरा किया गया एवं 135 उष्ट्र दुग्ध उत्पादकों से चर्चा कर जानकारी प्राप्त की गई। प्राप्त जानकारी के अनुसार इन 135 उष्ट्र पालकों के पास 3489 ऊँट थे जिनमें से 1083 दूध दे रहे थे एवं लगभग 3031 लीटर दूध प्रतिदिन ये उष्ट्र पालक बाजार में बेच रहे थे। औसतन एक उष्ट्र पालक के पास 26 ऊँट थे, उनमें से 8 दूध में प्रयुक्त कर वह प्रतिदिन लगभग 22 लीटर दूध बाजार में बेच रहा था। ऐसी जानकारी मिली कि उष्ट्र दूध का व्यवसाय इन जिलों एवं आसपास के अधिकतर जिलों में हो रहा है एवं उष्ट्र से "दूध" ही आय एक का प्रमुख साधन है (चित्र–2)।

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर उष्ट्र दूध का महत्व

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अध्ययन करने से पता चलता है कि ऊँटनी का दूध मानव के लिये अनेक उपयोगिताओं से परिपूर्ण है। इसके सेवन से कई रोगों से लड़ने में शरीर की क्षमता बढ़ती है। यह एक अच्छा स्वास्थ्यवर्धक पेय है। यह भी देखा गया कि संपूर्ण विश्व में गाय–भैंस से प्राप्त दूध मानव की आवश्यकता को पूर्ण नहीं कर पा रहा है एवं लगभग 16–17 प्रतिशत दूध अन्य पशुओं से प्राप्त किया जा रहा है जिनमें ऊँट भी एक महत्वपूर्ण पशु है। यह भी देखा गया कि भारी मात्रा में नकली दूध बनाकर बाजार में बेचा जा रहा है। ऐसी स्थिति में ऊँटनी का दूध एक वरदान के रूप में है क्योंकि ऊँट वो वनस्पतियाँ भी खा लेता है जो कि सामान्यतया अन्य पशु नहीं खाते हैं। यह विषम परिस्थितियों में भी अपना जीवन निर्वहन कर लेता है जहाँ अन्य पशुओं को काफी परेशानी होती है। इन सबके बावजूद उच्च गुणवत्ता वाला दूध अच्छी मात्रा में यह प्रदान करता है। इस स्थिति को ध्यान में रखते हुए यह सोचा गया कि अब ऊँटों की एक विशिष्ट नस्ल दूध उत्पादन बढ़ाने के लिये विकसित की जानी चाहिये। संयुक्त राष्ट्र संघ के कृषि एवं खाद्य संगठन के अनुसार विश्व में 24 देश 2256 हजार टन उष्ट्र दुग्ध का उत्पादन करते हैं। वर्ष 2006 में प्रदेश में किये गये सर्वेक्षण के अनुसार यह अनुमान लगाया गया कि मेवाड़ी ऊँट के प्रजनन क्षेत्र में किसी भी समय लगभग 21562 ऊँटनियाँ दूध में होंगी एवं वह 23080 लीटर प्रतिवर्ष दूध उत्पादित कर रही होगी। इस प्रकार उष्ट्र दुग्ध करीब 3218 परिवारों को आजीविका देता है एवं प्रतिवर्ष एक उष्ट्र पालक दूध से 60,000/– रूपये कमा लेता है। इस मेवाड़ी ऊँट के दूग्ध उत्पादन स्वरूप को अगर संपूर्ण देश में लागू किया जाए तो देश में किसी भी समय लगभग 166830 ऊँटनियाँ दूध हेतु प्रयुक्त की जा सकती है, जो कि 201 हजार टन दुग्ध उत्पादन प्रतिवर्ष कर सकती है। इस प्रकार उष्ट्र दूध का उत्पादन लगभग 8 गुना बढ़ सकता है एवं यह प्रदेश के कुल दुग्ध उत्पादन का 2.5 प्रतिशत भाग हो सकता है। इस प्रकार इस बदलते हुए परिवेश में यह उष्ट्र संरक्षण का महत्वपूर्ण कारक बन सकता है।

दूध की उपलब्धता

संयुक्त राष्ट्र संघ के कृषि एवं खाद्य संगठन के आँकड़ों के अनुसार वर्ष 2007 में विश्व में प्रति व्यक्ति प्रतिवर्ष दुग्ध उपभोग 84.9 लीटर, विकसित देशों में यह 213.7 लीटर, विकासशील देशों में 55.2 लीटर, दक्षिण एशियाई देशों में 72 लीटर एवं भारत वर्ष में 68.7 लीटर प्रति व्यक्ति प्रतिवर्ष है।

हालाँकि भारत विश्व का सर्वाधिक दूध उत्पादन करने वाला देश बन चुका है लेकिन अत्यधिक जनसंख्या के कारण भारत दुग्ध उपलब्धता में विश्व के प्रथम 100 देशों में नहीं आता हैं। उपरोक्त आँकड़ों में भारत के वर्ष 2010–11

के दुग्ध उत्पादन को देखा जाए तो भारत 121848 हजार टन दूध प्रतिवर्ष उत्पादन करने लगा है जिससे देश में प्रति व्यक्ति दूध उपलब्धता बढ़कर 100.68 किलोग्राम हो गई है फिर भी यह विश्व प्रति व्यक्ति दुग्ध उपलब्धता में काफी नीचे के स्थान (86 वें) पर आता है।

भारत में दूध ही प्रोटीन का मुख्य स्रोत है क्योंकि अधिकतर भारतीय शाकाहारी हैं। पशुपालन विभाग, भारत सरकार एवं पशुपालन विभाग, राजस्थान सरकार तथा भारत की जनगणना 2011 के आँकड़ों के विश्लेषण से पता चलता है कि राजस्थान 13234 हजार टन दूध उत्पादन के साथ देश में दूसरे स्थान पर है एवं यहाँ प्रति व्यक्ति दुग्ध उपलब्धता 193.06 किलोग्राम प्रति व्यक्ति प्रतिवर्ष है। जिलेवार विश्लेषण करने पर पता चलता है कि राजस्थान के विभिन्न जिलों में प्रति व्यक्ति प्रतिवर्ष दुग्ध उपलब्धता 93.37 किलोग्राम से 293.27 किलोग्राम के मध्य है। अलवर जिले में प्रति व्यक्ति दुग्ध उपलब्धता सर्वाधिक होने के साथ कोटा, बाँसवाड़ा, डूँगरपुर, उदयपुर एवं चित्तौडगढ, सबसे कम दुग्ध उपलब्धता वाले जिले हैं। ऐसा देखा गया कि कम दुग्ध उपलब्धता वाले क्षेत्रों में ऊँटों की संख्या भी गणना योग्य है। यहाँ उष्ट्र दुग्ध उत्पादन एवं विपणन कई दशकों से चल रहा है। यहाँ तक कि ऊँटनी के दूध के विपणन को लेकर जो प्रयास देश की सर्वोच्च अदालत तक गये, वह भी वर्ष 1978 में उदयपुर में ही प्रारम्भ हुए थे। ऐसी स्थिति में यह बहुत ही प्रासंगिक हो जाता है कि इस क्षेत्र के ऊँटों की दुग्ध उत्पादन क्षमता में वृद्धि के लिये सार्थक प्रयास किये जाये। यहाँ यह उल्लेख करना भी अति–महत्वपूर्ण होगा कि इस क्षेत्र में लगभग 8 प्रतिशत जनसंख्या अनुसूचित जाति की है एवं 49 प्रतिशत जन संख्या अनुसूचित जन जाति की है, जिनको मुख्यधारा से जोड़ने के लिये भारत सरकार विशिष्ट प्रयास कर रही है एवं उनके लिये अलग से कार्यक्रम चला रही है।

आजीविका सुरक्षा, पोषण सुरक्षा एवं उष्ट्र संरक्षण

हाल ही में किये गये सर्वेक्षण के अनुसार मेवाड़ क्षेत्र में एक उष्ट्र दुग्ध उत्पादक के पास कुल ऊँटों की संख्या का 31 प्रतिशत दूध वाली ऊँटनियों का होता है। प्रति ऊँटनी 2.8 लीटर दूध प्रतिदिन बाजार में बेचा जाता है। आंकड़ों के आधार पर यह मान लिया जाए कि क्षेत्र में ऊँटों की संख्या वर्ष 2007 की संख्या से करीब 25 प्रतिशत कम हो गई हो तो इस क्षेत्र में कुल ऊँटों की संख्या 10408 रह जाती है, जिनमें से 4335 प्रजनन योग्य होती है एवं 3226 मादाएँ दूध में होती है। इस प्रकार करीब एक हजार दूध वाली ऊँटनियाँ 2800 लीटर दूध प्रतिदिन अथवा 1022 टन प्रति वर्ष देती है एवं देश में 276 ग्राम प्रति व्यक्ति प्रतिदिन दूध की उपलब्धता के अनुसार लगभग 10,000 व्यक्तियों की दूध की आवश्यकता को पूर्ण करती है।

दुग्ध उत्पादन क्षमता के आकलन से पता चलता है कि एक ऊँटनी की दूध उत्पादन क्षमता को 6 लीटर प्रतिदिन तक आसानी से बढ़ाया जा सकता है क्योंकि 10 लीटर प्रतिदिन दूध देनी वाली मादाएँ एवं उनसे सम्बन्धित नर ऊँटों की पर्याप्त संख्या प्रदेश में उपलब्ध है। इस प्रकार जो 1000 ऊँटनियाँ वर्तमान में 10,000 लोगों की दूध की आवश्यकता को पूर्ण करती हैं वो आसानी से 20,000 लोगों की दूध की आवश्यकता को पूर्ण कर सकती है। इस प्रकार योजना को अगर सरकार एवं अन्य वित्तीय संस्थाओं से मदद मिलें एवं उचित पॉलिसी का समर्थन मिलें तो अधिक से अधिक ऊँटनियों को इस प्रकार की परियोजना में सम्मिलित कर दुग्ध उत्पादन एवं उससे लाभान्वित होने वाली जनसंख्या को बढ़ाया जा सकता है। इस प्रकार कम दूध उपलब्धता वाले जिलों में प्रति व्यक्ति दुग्ध उपलब्धता बढ़ने से उस क्षेत्र के लोगों की पोषण सुरक्षा में भी अभूतपूर्व योगदान दिया जा सकता है साथ ही उष्ट्र दुग्ध उत्पादन क्षमता बढ़ने से एक उष्ट्र पालक की आय में भी वृद्धि होगी एवं इससे ऊँटों के प्रजनन क्षेत्र में ही उनके संरक्षण में मदद मिलेगी।

परिवर्तित परिदृश्य में उष्ट्र पोषण

निर्मला सैनी, वरिष्ठ वैज्ञानिक
राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र, बीकानेर

पशु पालक अन्य पशुओं की तुलना में उष्ट्र पोषण पर कम ध्यान एवं महत्व देते हैं। सामाजिक, आर्थिक बदलाव के साथ–2 जलवायु परिवर्तन ने उष्ट्र पालन को प्रभावित किया है। अब उष्ट्र पालक ऊँटों को चारागाह में रखने की बजाय घर पर चारा खिलाने लगे हैं। इस कारण उष्ट्र आहार पर निर्भरता बढ़ने लगी है। अधिकांशतः पशु पालक शहर के आस–पास बसने लगे हैं। ऊँट का उपयोग बोझा ढोने, पर्यटन, सवारी तथा दूध उत्पादन द्वारा जीविकोपार्जन में करने लगे हैं।

उष्ट्र पालक की सफलता में संतुलित आहार, नस्ल संर्वधन एवम् बीमारी रोकथाम तीन महत्वपूर्ण पहलू है। आहार पर पशुपालकों का अधिक खर्चा होता है। इसीलिए इससे संबंधित जानकारी एवम् तकनीकी ज्ञान का लाभ पशुपालकों को अवश्य होना चाहिए। पशु आहार सुपाच्य

उष्ट्र पशु आहार के मुख्य अवयव

सूखा चारा	:	मूंगफली, ग्वार मोठ एवम् तुड़ी
हरा चारा	:	पेड़ों की पत्तियाँ, झाड़ियाँ, घासें, बरसीम, रिजका, जई
दाना/चूरी/कोरमा	:	बाजरा, ग्वार, ज्वार, दाल (मूंग चूरी)
खल	:	मूंगफली, सरसों, कपास
चोकर/चापड़	:	गेहूं, चावल

खनिज मिश्रण

सामान्यतया पशु पालक पशु को	संतुलित आहार
(1) केवल सूखा चारा देते हैं (2) केवल खल देते हैं। (3) केवल ग्वार कोरमा देते हैं (4) केवल मूंग चूरी देते हैं।	पोषण संबंधी आवश्यकता पूर्ण करने के लिए ऊर्जा हेतु अनाज, प्रोटीन हेतु खल, खनिज लवण एवं नमक को सूखे चारे के साथ देना आवश्यक होता है। इससे उत्पादन अधिक होता है।
एकल चारे अथवा दाने से पशु की पोषण संबंधी आवश्यकता पूर्ण नहीं हो पाती। इससे उत्पादन कम होता है। पोषक तत्वों की पचनीयता कम होने से वायुमण्डल में अपशिष्ट के रूप में पोषक तत्वों का अधिक उत्सर्जन होता है।	कोई भी एक अवयव अपने आप में पूर्ण नहीं होता, अतः सभी को समान मात्रा में मिलाने से एक पोषक तत्वों की कमी को दूसरे अवयव द्वारा पूर्ण किया जा सकता है जिससे उत्पादन बढ़ता है। उत्पादन बढ़ता है।

एवम् पोषक तत्वों से पूर्ण होना चाहिए। दूसरी मुख्य बात प्रोटीन, ऊर्जा एवम् खनिज तत्वों का सही मात्रा में समावेश होना चाहिए। पशु उत्पादन मांग को पूर्ण करने में समर्थ होना चाहिए।

संतुलित पशु आहार में समस्त पोषक तत्व जैसे प्रोटीन, वसा, कार्बोहाईड्रेट, खनिज लवण एवम् विटामिन उचित मात्रा एवम् अनुपात में उपलब्ध होते हैं। किसी एक की कमी से प्रजनन, वृद्धि एवम् जनन पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।

संतुलित दाना मिश्रण

उपरोक्त तथ्यों को ध्यान में रखते हुए पशु पालक घर पर ही संतुलित मिश्रण बना सकते हैं। इसके लिए आवश्यक अवयव एवम् मात्रा की जानकारी होनी चाहिए। बाजार में उपलब्धता एवम् मूल्य को देखकर ही आहार अवयव का चयन करें जिससे संतुलित एवं सस्ता आहार तैयार हो सके।

कुल भाग	100
मोठ अनाज/दाना (ऊर्जा स्रोत)	30–40 भाग
खल (प्रोटीन स्रोत)	30–40 भाग
चापड़/चोकर/चूरी	30–40 भाग
खनिज लवण	02 भाग
नमक	01 भाग

खनिज लवण मिश्रण – खर्चा थोड़ा तथा लाभ अत्यधिक होता है। मिनरल मिक्स्चर की आवश्यकता बहुत कम होती है। किन्तु आहार में लापरवाही से पशु कई बीमारियों से ग्रस्त हो जाता है तथा उत्पादन में तेजी से कमी आती है। अतः ऊँट के उत्तम स्वास्थ्य एवं अधिक उत्पादन के लिए खनिज मिश्रण अनिवार्य रूप से आहार में मिलाना चाहिए। खनिज बहुत–सी एन्जाइम क्रियाओं में प्रमुख घटक होते हैं। पशु आहार में कैल्शियम, फॉस्फोरस, जिंक, कॉपर, मैगनीज एवं कोबाल्ट मुख्य रूप से महत्वपूर्ण होते हैं। इनकी पशु खाद्य पदार्थों में कमी मुख्यतया पाई जाती है। जनन, प्रजनन एवं वृद्धि के दौरान खनिज तत्वों की मांग बढ़ जाती है। अतः वर्धनशील टोरडियों, ग्याभिन ऊँटनियों, दुधारू ऊँटनियों, ब्यांत पूर्व एवं बाद, गर्भधारण योग्य ऊँटनियों को खनिज लवण पूर्ति हेतु सूखे चारे में हरा चारा एवं पेड़ों की पत्तियों को (3:1) भाग में अथवा 50 ग्राम खनिज लवण मिश्रण अवश्य मिलाएं। मिश्रित राशन में 0.2 प्रतिशत खनिज लवण मिलाना चाहिए।

खनिज स्रोत

कैल्शियम	–	खल, हरा चारा, दलहनी चारा, पत्तियाँ
फॉस्फोरस	–	चापड़(गेहूं, चावल),खल (मूंगफली, सोयाबीन कपास)
मैग्नीशियम	–	दलहनी चारा, हरा चारा, घास
ताँबा	–	मूँगफली खल, गेहूं चापड़
जस्ता	–	खल, चापड़, चावल भूसी, हरा चारा, पत्तियाँ

खनिज लवण मिश्रण सदैव स्थानीय आवश्यकतानुसार तैयार करें तथा पशु को उनकी उत्पादन मांग के अनुसार खिलाएं। खिलाने से पूर्व पशु को खिलाए जाने वाले आहार में उपस्थित खनिज तत्वों की जांच अवश्य करें।

सम्पूर्ण आहर तकनीक

सम्पूर्ण आहार तकनीक के लिए चारा एवं दाना विभिन्न अनुपात में मिलाकर पशु की आवश्यकतानुसार (दुधारू पशु, वर्धनशील टोरडियों, गर्भस्थ ऊँटनियों को विभिन्न अनुपात में मिलाकर संतुलित आहार तैयार किया जाता है।

(1) संकटग्रस्त क्षेत्रों (सूखा और बाढ़ की स्थिति) एवं दुर्गम स्थानों जहां पर हमेशा आवागमन आसान नहीं होता और आहार असमानता (अधिकता/कमी) वाली

स्थिति में संपूर्ण आहार तकनीक पशु उत्पादन को बनाए रखने में सहायक होती है तथा उपलब्धता को सुगमता से सुनिश्चित किया जा सकता है।

(2) इस विधि द्वारा गैर परम्परागत स्थानीय चारा एवं दाना जिसे सामान्यतया पशु खाना पसन्द नहीं करते हैं, उचित मात्रा में खिलाया जा सकता है।

(3) स्थानीय एवं सस्ते आहारीय अवयवों द्वारा आदर्श एवं सस्ता आहार तैयार किया जा सकता है।

(4) पशु चारे एवं दाने में चुनाव करने के लिए स्वतन्त्र नहीं रहता। इससे आहार की बर्बादी कम होती है।

(5) कम स्थान में संग्रहित सुविधा होने से आहार अवयव की अधिकता के समय में चारे एवं दाने को इस तकनीक द्वारा संग्रहित कर अकाल एवं सूखे वाली अवस्था में पशु को खिला सकते हैं।

उष्ट्र रूमेन में चारा/दाना पचाने के लिए करोड़ों सूक्ष्म जीवाणु होते हैं। इन्हीं के योगदान से आहार की उत्तम प्रोटीन वाला दूध एवं मांस प्राप्त होता है। इन जीवाणुओं को उपयुक्त वातावरण की आवश्यकता होती है। अधिक अम्लीयता एवं क्षारीयता जीवाणु वृद्धि को प्रभावित करती है। सम्पूर्ण आहार में प्रोटीन, ऊर्जा एवं खनिज लवणों की पर्याप्त मात्रा के कारण रूमेन वातावरण की पी.एच. स्थिर रहती है जिससे जीवाणु द्वारा पाचन क्षमता अधिक होती है। इससे उत्पादन बढ़ता है।

सम्पूर्ण आहार कई प्रकार से बनाया जाता है यथा– (1) मिश्रण तकनीक, (2) पैलेट तकनीक, (3) ईंट तकनीक

इस तकनीक में चारा एवं दाने को ग्राईन्डर द्वारा पीसा जाता है। फिर उचित अनुपात में चारा दाना एवं खनिज मिश्रण विटामिन को आवश्यकता के अनुसार एक सार मिलाया जाता है। इसके बाद मिश्रण को इसी अवस्था में या मशीन द्वारा पैलेट और ईंट का रूप देकर काम में लिया जाता है।

इन तकनीकियों द्वारा पशु आहार को मनचाहा आकार देकर कर दूध में वांछित तत्वों की मात्रा बढ़ाई जा सकती है जो मनुष्य के स्वास्थ्य वृद्धि में सहायक होते हैं। क्योंकि आहार में उपस्थित बहुत से पोषक तत्व दूध में सीधे उत्सर्जित होते हैं। उदाहरणतया जो स्तर कैंसर कम करने, मांसल वृद्धि एवं उत्तम हृदय वृद्धि तथा इन्सुलिन कम करने में महत्वपूर्ण भूमिका के कारण दूध में इसकी आवश्यक मात्रा को आहार में सूरजमुखी तेल द्वारा बढ़ाई जा सकती है।

इस तरह भविष्य में पशुपालन क्षेत्र में प्रौद्योगिकी आधारित उत्पादन में अतुल संभावनाएं हैं। ग्रामीण क्षेत्र में पशुपालक और नवयुवक स्वरोजगार गारंटी योजना के तहत इन तकनीकियों को लघु व्यापार का माध्यम बना सकते हैं। इसके लिए वित्तीय सुविधा ग्रामीण सहकारी बैंक,नाबार्ड एवम् केन्द्र सरकार की योजनाओं द्वारा प्रदान की जाती है।

❀❀❀❀

दुधारू ऊँटनी तथा टोरडियों का गर्मी के प्रकोप से करें बचाव

चम्पक भकत, वरिष्ठ वैज्ञानिक, **नितीन वसन्तराव पाटिल,** निदेशक एवं
नेमीचन्द बारासा, वरिष्ठ तकनीकी अधिकारी
राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र, बीकानेर

बदलते परिवेश में ग्रीन हाउस गैसों से प्राकृतिक असंतुलन स्पष्टतः व तीव्र रूप में परिलक्षित होने लगा है। इससे लगातार गर्मी बढ़ रही है तथा मरुभूमि में भी आर्द्रता की मात्रा बढ़ी है। इन ग्रीन हाउस गैसों के दुष्प्रभाव ने तापमान आर्द्रता–अनुक्रमणिका को भी प्रभावित किया है। परिणामस्वरूप अन्य पशुओं के अलावा ऊँट प्रजाति में वातावरण का अधिक दबाव उत्पन्न हो गया है तथा उसकी शारीरिक वृद्धि, स्वास्थ्य, दुग्ध उत्पादन आदि प्रभावित हुए हैं।

गर्मी के मौसम में दुधारू ऊँटनी तथा इसके टोरडियों का प्रबंधन अत्यंत कुशलता के साथ करना चाहिए। इससे ऊँटनी तथा टोरडियों के स्वास्थ्य के साथ उसकी उत्पादकता भी प्रभावित होती है। दुधारू ऊँटनी तथा टोरडियों के प्रबंधन हेतु सबसे उत्तम पशु का चयन, छायादार एवं खुले आवास, दुधारू ऊँटनी के हरे चारा तथा दाने में वसा की मात्रा एवं चारे दाने का प्रबन्ध करना चाहिए। पशु को पीने के लिए पर्याप्त पानी उपलब्ध करवाना चाहिए। ऊँटनी का दूध सामान्य तौर पर प्रातःकाल तथा सायंःकाल के ठन्डे वातावरण में निकालना चाहिए।

ऊँट डेयरी पशु के रूप में

ऊँटनी का दूध उष्ट्र–पालकों और उनके परिवारों के लिए प्रोटीन का एक प्रमुख स्रोत है। हमारे पुराणों, महाभारत, रामायण, उपनिषद, वेद एवं ग्रन्थों में दूध एवं दुग्ध पदार्थों की पहचान वर्जित है। दुधारू ऊँटनियों का चयन, रखरखाव व इनकी आहार प्रणाली पर विशेष ध्यान दिया जाता है। सामान्यतः ऊँटनी का दुग्धकाल 9–12 महीने तक का होता है। वसा, शर्करा, प्रोटीन, विटामिन्स और खनिज लवण आदि सभी तत्व जो शारीरिक विकास में उपयोगी हैं, वे सभी तत्व दूध में उपस्थित होते हैं। दुग्धकाल और दूध के गुण, ऊँटनी को खिलाए जाने वाले चारे और चरागाहों की परिस्थिति पर निर्भर करता हैं। गाँव में प्रचलन के अनुसार ऊँटनी का दूध कई रोगों हेतु काम में लिया जाता है। केन्द्र में ऊँटनी के दूध पर किए गए शोध कार्य से यह परिणाम सामने आये हैं कि यह दूध मधुमेह और तपेदिक रोग के उपचार के लिए लाभप्रद हैं।

गर्मी के प्रकोप से प्रभावित ऊँट के कुछ लक्षण

गर्मी में ऊँट की शारीरिक वृद्धि घट जाती है। पशु का शारीरिक भार तथा दैनिक औसतन भार प्राप्ति कम होती है। वह चारा खाना कम कर देता है तथा पानी भी कम मात्रा में ग्रहण करता है। टोरडिए की जीवमिति कम हो जाती है। अधिकतर पशुओं में गर्मी में दूध उत्पादन कुछ हद तक कम हो जाता है। इसका मुख्य कारण हमारा पशु प्रबंधन तथा मरुभूमि में हरे चारे के अनुपलब्धता है। भीषण गर्मी से प्रभावित ऊँट में कुछ लक्षण स्पष्टतः परिलक्षित होते हैं जैसे – ऊँट का सुस्त दिखना, श्वसन दर एवं नाड़ी गति का बढ़ना, पशुओं को अधिक पसीना आना एवं पोल ग्रंथि से हारमोन का निष्कासन दिखाई देना, ऊँट द्वारा चारा–दाना खाना कम कर देना तथा रेटीकुलो–रुमन की दर के घटने से खाना पचाने की क्षमता का कम होना आदि।

यदि हम गर्मी के समय में भी टोरडिए की अधिक शारीरिक वृद्धि तथा दैनिक औसतन भार प्राप्ति की गति तथा अधिक दूध उत्पादन प्राप्त करना चाहते हैं तो नीचे वर्णित आसान से उपायों के साथ विशेष देखभाल की आवश्यकता होती है। इन उपायों एवं प्रबंधन को हम निम्नलिखित प्रकार से विभाजित भी कर सकते है :–

टोरडिए एवं दुधारू ऊँटनी की देखभाल

अर्ध गहन पद्धति द्वारा ऊँट के परिपालन हेतु उसकी चराई 2 पारियों में 6 घंटा प्रतिदिन (प्रातःकाल एवं सायंःकाल के समय) की जानी चाहिए। इस हेतु प्रातःकाल 4 घंटा (6.00 से 10.00 बजे तक) एवं सायंःकाल के समय 2 घंटे (6.00 से 8.00 बजे तक) भेजा जाना चाहिए। चराई उपरांत पशुओं को ठंडे छायादार वृक्षों के नीचे विश्राम करवाना चाहिए। चरागाह से लौटने के तुरंत बाद उन्हें चारा एवं दाना उपलब्ध करवाया जाना चाहिए।

पशु का चयन

दुधारू ऊँटनी का चयन करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि जो पशु दूध उत्पादन हेतु काम में लिए जा रहे हैं, वे वहां के वातावरण में अपने को आसानी से अनुकूलित कर सकते हैं अथवा नहीं। यदि नहीं हो तो ऊँट पालक के पास इसके लिए उचित प्रबंधन के साधन होने आवश्यक है। ऐसी स्थिति में ऊँट का चयन करते समय गर्मी सहन करने वाले पशु का ही चयन किया जाना चाहिए।

ऊँट हेतु उचित वातावरण का प्रबंधन

टोरडिए एवं दुधारू ऊँटनी के लिए उचित वातावरण का प्रबन्धन इस प्रकार से किया जाना चाहिए कि पशु के रहने के स्थान का तापमान उसके अनुकूल किया जाए साथ ही स्वच्छता का पूरा–पूरा ध्यान रखना चाहिए। पशु को सुबह एवं सायंःकाल खुला परिवेश प्राप्त हो तथा उस पर सूरज की किरणें सीधी नहीं पड़े एवं उसका लू, गर्म हवा आदि के प्रकोप से बचाव किया जाए। पशु को चारा व दाना सुबह जल्दी तथा सायंकाल के समय देना ठीक रहता है।

ऊँट का उचित खान–पान

पशु को भरपूर पानी पिलाए : गर्मी के मौसम में टोरडिए एवं दुधारू ऊँटनी के लिए पीने का पानी प्रथम आवश्यकता के रूप में आता है। गर्मी में उसकी पानी पीने की क्षमता 50 प्रतिशत तक बढ़ जाती है। पशु को एक दिन में कम से कम 2 बार पीने का पानी अवश्य ही उपलब्ध करवाना चाहिए। इस हेतु ऊँट को पानी की खेली के पास छोड़ देना चाहिए ताकि वह अपनी स्वेच्छानुसार पानी ग्रहण कर सके। पशु के पीने योग्य पानी की व्यवस्था पेड़ों के नीचे अथवा किसी ठंडी जगह की जानी चाहिए।

चारे का ख्याल रखें: गर्मी के समय में पशु के लिए उचित खान–पान अत्यंत आवश्यक होता है। उसे दिया जाने वाला सूखा चारा (50:50) मिश्रित कर दिया जाए। ऊँट को दिया जाने वाला आहार अधिक वसा युक्त तथा कम रेशेदार हो ताकि पशु इसे सरलतापूर्वक पचा सके।

पशुओं को आहार के साथ खनिज मिश्रण भी दिया जा सकता है। पशुओं के आहार में दाने/पैलेट की मात्रा अधिक एवं रेशे की मात्रा कम होनी चाहिए। पशुओं के दाने में पर्याप्त खनिज तत्वों की मात्रा सम्मिलित की जाएं। पशु को आहार में वसा की अधिक मात्रा दिए जाने के पीछे मूल कारण वसा में ऊर्जा के अच्छे स्रोत का पाया जाना है। वसा में कार्बोहाइड्रेट की अपेक्षा 2–2.5 गुणा अधिक ऊर्जा होती है जो कि इसे पचाने के लिए भी कम शारीरिक ऊर्जा लगती है। आमतौर पर गर्मी के मौसम में टोरडिए एवं दुधारू ऊँटनी का रक्त संचरण, पाचन तंत्र एवं आंतों की तरफ कम एवं उनकी त्वचा की तरफ ज्यादा हो जाता है।

खाद्य पूरकता

खाद्य पूरकता हेतु निम्नलिखित पर ध्यान दिया जाना चाहिए :–

ऊँट का आवास प्रबन्धनः टोरडिया एवं ऊँटनी के उचित आवास प्रबन्धन हेतु खुला एवं छायादार स्थान दोनों का होना अति आवश्यक है। टोरडिया एवं दुधारू ऊँटनी के आवास का प्रबंधन इस प्रकार करना चाहिए कि पशु एक आरामदायक स्थिति में रह सके। अतः कोशिश यह करनी चाहिए कि पशु के रहने के स्थान का तापमान 35–39^0 से.

के आसपास हो क्योंकि यह तापमान टोरडिए एवं दुधारू ऊँटनी की सुविधाजनक स्थिति हेतु आवश्यक है। आवास का लंबा हिस्सा दक्षिण एवं उत्तर दिशा में होना चाहिए। आवास का मुख पूर्व एवं पीछे का पश्चिम दिशा की तरफ होना चाहिए। आवास की छत झोपड़ीनुमा, दो तरफा ढलान वाली एवं आकार आयताकार होना अच्छा माना गया है। आवास का लंबा हिस्सा दक्षिण की तरफ खुला होने से गर्मियों में सूरज की किरणें आवास के अंदर बिल्कुल नहीं आती परन्तु सर्दियों में सूरज दक्षयान होने के कारण से पूरे दिन सूरज की किरणें एवं प्रकाश आवास के अंदर आते हैं। आवास का उत्तर हिस्सा सर्दियों में बोरी अथवा प्लास्टिक से ढक देना चाहिए जिससे उत्तर से आने वाली ठंडी हवा को आवास में आने से रोका जा सके।

इस बात का ध्यान रखा जाए कि गर्मियों में आवास के अंदर तापमान आर्द्रता अनुक्रमणिका 79 से नीचे हो ताकि पशुओं में वातावरणीय दबाव उत्पन्न न हो। इससे पशु अधिक मात्रा में आहार चारा खाता है तथा इसे पचा पाने में भी सक्षम होता है। यह देखा गया है कि इससे पशुओं में शारीरिक वृद्धि, दुग्ध उत्पादन क्षमता में बढ़ोतरी होती है।

पशु के आराम की सुविधा को ध्यान में रखते हुए उसका आवास कच्चे फर्श का रखा जाए एवं इसकी छत खींप एवं घास–फूस आदि से तैयार की जाए जो कि स्थानीय क्षेत्र विशिष्ट कृषि सामग्री सस्ते में उपलब्ध हो सके। ऊपर से आने वाली गर्मी व ठण्ड का बचाव के लिय छत खींप अथवा घास–फूस से बनी होनी चाहिए। आवास पर्याप्त रूप में खुला होने पर हवा का संचार पूर्ण रूप से होता है जिसके कारण आवास में नमी नहीं रहती है। इसके चारों तरफ पर्याप्त मात्रा में खुली जगह होनी चाहिए जिससे पशु अपनी इच्छानुसार व मौसम के अनुरूप विचरण कर सके।

पशु पालक इसका भी ध्यान रखें कि प्रत्येक पशु को लगभग 50–100 वर्ग फीट की जगह उपलब्ध करवाई जानी चाहिए। पशु के आवास की छत बनावट 14–16 फीट ऊँचाई (किनारों पर) एवं छत के मध्य की ऊँचाई 16–18 फीट हो। साथ ही पशु–स्थल/आवास में आहार चारा एवं दाना का उचित प्रबंधन सुनिश्चित किया जाए। पीने के पानी की व्यवस्था ऊँट आवास के बाहर खुले हिस्से में होनी चाहिए जिससे किसी भी प्रकार से आवास में गीलापन व नमी नहीं रहे। चारे व दाने की खेली का आकार लगभग 90–120 सेंटीमीटर की ऊँचाई पर होने के कारण पशु चारे व दाने को आराम से खाता है तथा चारा व्यर्थ नहीं जाता।

मरुभूमि में पूर्व–पश्चिम दिशा वाला आवास, उत्तर–दक्षिण दिशा वाले आवास से अधिक आरामदायक होता है। पूर्व–पश्चिम दिशा वाले पूर्व–पश्चिम गर्मियों में ठन्डे व सर्दियों में गरम रहते हैं। इसका कारण इस आवास में गर्मियों में धूप बिल्कुल अंदर नही आती है जबकि सर्दियों में धूप आवास के अंदर एक लम्बे समय तक आती है। इस प्रकार आवास के अंदर हवा दक्षिण–पश्चिम दिशा की तरफ से चलती है जो आवास को हवादार व ठंडा बनाने में सहायता करती है। गर्मी के मौसम में इस प्रकार आवास के अंदर का तापमान बाहरी तापमान की अपेक्षा 3 से 5^{0}सेल्सियस कम पाया गया।

तापघात में उपचार

तापघात से प्रभावित ऊँट को छायादार जगह रखा जाना चाहिए। इससे प्रभावित ऊँट को किसी भी प्रकार का शारीरिक कष्ट नहीं दिया जाना उचित होगा क्योंकि इससे उत्पादन प्रभावित होगा तथा पशु को स्वास्थ्य की दृष्टि से और अधिक नुकसान पहुँच सकता है। पशु को अधिक नहीं चलाया जाए तथा उसे पीने हेतु ठंडा पानी और छाया/छप्पर (शेड) दिया जाए। पशु के पूरे शरीर पर पानी का छिड़काव करना चाहिए। यदि छिड़काव हेतु पर्याप्त पानी उपलब्ध नहीं हो तो पशुपालक, पशु के पूरे शरीर को गीले कपड़े से ढक दें। तापघात की अत्यधिक तीव्रता में द्रव थैरेपी (इलेक्ट्रोलाइट्स युक्त) दी जाए। यदि समय रहते ये सभी उपचार किए जाए तो अधिक कारगर साबित होंगे तथा पशु को स्वास्थ्य लाभ मिलेगा एवं पशु पालक होने वाली अनचाही आर्थिक हानि से बच सकता है।

चयन : ऊँटों को उच्च तापमान व गर्मी में इनकी अनुकूलनता के आधार पर चयनित करना चाहिए। बी.सी.ए. विधि के अनुसार 51 से कम सूचकांक मान वाले उष्ट्र उत्तम अनुकूलनीय 52 से 70 सूचकांक मान वाले चयनित जबकि 71 से अधिक सूचकांक मान वाले ऊँट बहुत कम अनुकूलनीय होते हैं।

मूंगफली के चारे की ग्वार या मोठ के चारे के साथ (50:50) मिलाकर ऊँटों की चराई कराई गई। पूरक आहार के रूप में 10 प्रतिशत अपशिष्ट प्रोटीन व 65 प्रतिशत टी. डी.एस. युक्त आहार बट्टिकाएँ खिलाई गई।

चरागाह में टोरडियों द्वारा पसंद की गई वनस्पतियाँ एवम् व्यावहारिक तरीकों से प्राप्त आंकड़ों का आकलन करने पर पाया गया कि घास व झाड़ियों को पसंद करने के वरीयता क्रम में सर्वप्रथम फोग तत्पश्चात् पाला, मुराली धामनी, केर, बुई और खींप थे। पेड़ों को पसंद करने की वरीयता क्रम खेजड़ी, जाल, अरडू, सीसम एवं नीम था।

निष्कर्षतः पशुपालक ऊँट के आवास स्थानीय स्तर पर उपलब्ध सामग्री का उपयोग कर आसानी से बना सकते हैं और अपने ऊँटों को उन्नत आवास में पालन–पोषण कर उनको मौसम की प्रचण्डता से बचाकर अधिक शारीरिक भार वृद्धि तथा अधिक उत्पादन ले सकते हैं। वातावरण की विषमता की वजह से होने वाली टोरडियों की मृत्यु दर को भी कम कर सकते हैं। यह कहा जा सकता है कि उपर्युक्त वैज्ञानिक विधि के आधार पर यदि टोरडिए एवं दुधारू ऊँटनी का रखरखाव किया जाए तो यह न केवल पशु अपितु ऊँट पालक जो कि मरुस्थल तथा अर्ध मरुस्थल में रहते हैं, के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध होगा तथा उनके लिए वैकल्पिक आय का साधन बनेगा।

ऑटिज्म बनाम ऊँटनी का दूध

राघवेन्द्र सिंह, प्रधान वैज्ञानिक, **देवेन्द्र कुमार,** वैज्ञानिक, **नंदकिशोर चौहान,** तकनीकी अधिकारी
जितेन्द्र कुमार, वरिष्ठ तकनीकी सहायक एवं **राकेश कुमार पूनियाँ,** तकनीकी सहायक
राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र, बीकानेर

ऑटिज्म स्पैक्ट्रम विकार, वृहद तंत्रिकीय–विकास विकारों का एक भाग है जिसको व्यापक विकासीय विकार के नाम से भी जाना जाता है। जिसके अंतर्गत ऑटिज्म, अस्पर्गर सिंड्रोम, रेट्स विकार एवं चाइल्ड डिसइंटग्रेटीव विकार आदि को सम्मिलित किया जाता है। गत कुछ वर्षों में ऑटिज्म स्पैक्ट्रम विकार में आश्चर्यचकित वृद्धि हुई है और फोम्बोने के अनुसार इस रोग के व्यापक फैलाव के लिये नैदानिक तकनीकों के विकास व जन–जागरूकता में वृद्धि को ही पूर्ण रूप से जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता है। नवीनतम शोध प्रतिवेदनों के अनुसार ऑटिज्म स्पैक्ट्रम विकार प्रति हजार पर एक आदमी को प्रभावित करता है जबकि यह पुरुषों को स्त्रियों की अपेक्षा 4 गुना अधिक प्रभावित करता है। इस वास्तविकता के साथ विश्वभर में इस रोग पर व्यापक अनुसंधान जारी है। ऑटिज्म व इसके स्पैक्ट्रम विकारों के क्षेत्रीय फैलाव की सटीक जानकारी अभी तक नहीं है। विगत कुछ वर्षों में प्रतिरक्षा तन्त्र व केन्द्रीय तंत्रिका तन्त्र के मध्य के मजबूत सम्बन्धों की तरफ वैज्ञानिकों का रुझान बढ़ने से स्नायु–प्रतिरक्षा विज्ञान के क्षेत्र में विचारणीय वृद्धि हुई है। अब यह व्यापक रूप से स्वीकार किया जा चुका है कि पर्यावरणीय घटक प्रतिरक्षा तन्त्र को खतरे में डाल सकते हैं। बहुत सारे वैज्ञानिकों की एक बहु–दिशात्मक वैज्ञानिक सोच के साथ किये शोधों से यह निष्कर्ष निकला कि ऑटिज्म, पर्यावरणीय, तंत्रिकीय, प्रतिरक्षीय एवं आनुवांशिकीय घटकों का एक जटिल संयोजन है।

ऊँटनी के दूध के वैसे तो बहुत फायदे हैं परन्तु खासकर यह ऑटिज्म से ग्रसित बच्चों के लिये बहुत ही लाभदायक है। विश्व के कई हिस्सों में यह अनेक बीमारियों के इलाज हेतु उपयोग में लाया जाता है और अब इसे ऑटिज्म के इलाज के रूप में भी काम में लिया जा रहा है। ऊँटनी का दूध एलर्जी नहीं करता है अतः चिकित्सालयों में समय पूर्व जन्मे बच्चों को भी यही दूध दिया जाता है। ऑटिज्म से ग्रसित बच्चों के अभिभावकों ने बताया कि इस दूध को पिलाने से इन बच्चों में बेहतर नींद, प्रेरक नियोजनों में वृद्धि, स्थानिक जागरूकता, आँखों के सम्पर्क में वृद्धि, भाषा सुधार तथा जठरांत्र क्रियाविधि में वृद्धि जैसे विभिन्न उन्नत लक्षण देखे गए।

इजरायली उष्ट्र विशेषज्ञ डॉ. यागिल ने ऑटिज्म के उपचार हेतु ऊँटनी के दूध के प्रयोग का सुझाव दिया साथ ही एक अन्य वैज्ञानिक डॉ. अमनोन गोनिने ने जलन/सूजन को ऑटिज्म का ही एक घटक माना। डॉ. अमनोन ने बताया कि इस सूजन को कम करने में ऊँटनी का दूध बहुत ही लाभदायक है। ऊँटनी के दूध फार्म से जुड़े ईडेन ने भी डॉ. गोनिने के मत से सहमति दर्शाई है। उन्होंने बताया कि ऑटिज्म की शुरुवाती अवस्था के साथ–साथ असावधान–अतिक्रियाशील विकार से ग्रसित बच्चों को ऊँटनी का दूध पिलाने से उनमे बेहतर परिणाम प्राप्त हुए यद्यपि कुछ अभिभावकों के अनुसार ऑटिज्म की गम्भीर अवस्था में भी इस दूध से काफी सुधार होता है।

मानव विकास की अन्तर्राष्ट्रीय पत्रिका के वर्ष 2005 के संस्करण में गाय के दूध की बजाय ऊँटनी का दूध पीने से होने वाले प्रभावों पर एक अध्ययन प्रकाशित हुआ जिसमें अनुसंधानकर्ताओं ने खोजा कि ऑटिज्म से ग्रसित 4 वर्षीय बालिका को 40 दिन व एक 15 वर्षीय बालक को 30 दिन तक ऊँटनी का दूध पिलाने से रोग के लक्षणों से निजात मिल गई। एक अन्य अध्ययन के अनुसार अनेक 21 वर्षीय रोगियों को 2 सप्ताह तक ऊँटनी का दूध पिलाने से उनमें स्वयं को कष्ट देने का अवगुण खत्म हो गया।

मानव विकास पर प्रकाशित अन्तर्राष्ट्रीय पत्रिका के एक शोध पत्र में ऑटिज्म से ग्रसित बच्चों एवं वयस्कों को ऊँटनी का दूध पिलाने से उनमे होने वाले आश्चर्यजनक सुधारों के विभिन्न प्रकरणों पर चर्चा की गईं। इस शोध पत्र के लेखकों के अनुसार 10 वर्ष से छोटी आयु के बच्चों में इस दूध का प्रभाव असाधारण जबकि 15 वर्ष से अधिक आयु के बच्चों में यह आश्चर्यजनक था, परन्तु अगर इन बच्चों को ऊँटनी का दूध देना बंद कर दिया जाये तो उनमे रोग के लक्षण पुनः प्रदर्शित होने लगते हैं। यह उनके माता–पिता को उन्हें लम्बे समय तक ऊँटनी का दूध पिलाने हेतु प्रेरित करता है। डॉ. हिंकले द्वारा ओरलेंडो, फ्लोरिडा में दूध के अंतर–प्रदेशीय आदान–प्रदान हेतु एक प्रस्ताव खाद्य एवं औषध प्रशासन की समिति के सामने रखा गया था। इस प्रस्ताव में ऊँटनी के दूध को डेयरी नियमों के अंतर्गत लाने की बात भी की गई थी। इस प्रस्ताव के पारित होने के बाद डॉ. हिंकले ने कहा कि अब ऊँटनी के दूध के परीक्षण के दरवाजे खुलेंगे जिससे यह खाद्य एवं औषध प्रशासन के मानकों को पूरा कर पाएगा व सयुंक्त राज्य अमेरिका में उष्ट्र डेयरियों की स्थापना में मदद मिलेगी। हालाँकि ऊँटनी का दूध लाभदायक है परन्तु यह ध्यान रखना भी आवश्यक है कि इसके प्रयोग से ऑटिज्म के उपचार की प्रमाणिकता के वैज्ञानिक साक्ष्य अभी अपर्याप्त है। अनुसंधानकर्ता सावधान होने के साथ–साथ इसके गुणों के प्रति आशावादी भी है। अतः उपयोगकर्ता को अपने व अपने ऑटिज्म से ग्रसित बच्चों पर ऊँटनी के दूध के प्रभाव के अध्ययन के अनुसार ही इसे काम में लिया जाना चाहिए।

दुनिया भर में शायद ही ऐसी विकसित साहित्यिक भाषा हो जो सरलता में और अभिव्यक्ति की क्षमता में हिन्दी की बराबरी कर सके।

–फादर कामिल बुल्के

पहली पड़वा गाजै, दिन बहत्तरी बाजै।

–यदि आषाढ़ कृष्णा प्रतिपदा के दिन बहुत जोर से बादल गरजे तो 72 दिनों तक वर्षा नहीं होती।

–उजास ग्रन्थ माळा–20 से साभार

उष्ट्र दुग्ध की जैविक गतिविधियाँ

देवेन्द्र कुमार, वैज्ञानिक, **राघवेन्द्र सिंह,** प्रधान वैज्ञानिक, **राकेश कुमार पूनियाँ,** तकनीकी सहायक
एवं **जितेन्द्र कुमार,** वरिष्ठ तकनीकी सहायक
राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र, बीकानेर

पारंपरिक एवं वैज्ञानिक तौर पर दूध को आहार प्रोटीन का एक प्रमुख स्त्रोत माना जाता है क्योंकि इसमें उपस्थित कैसीन एवं मस्तु प्रोटीन्स का जैविक मूल्य अन्य प्रकार के प्रोटीन से ज्यादा होता है। इसके अलावा ऊँटनी के दूध में विभिन्न प्रकार के प्रतिरक्षक प्रोटीन एवं विटामिन 'सी' की अत्यधिक उपस्थिति इसकी जैविक गतिविधि (बायोलॉजिकल एक्टिविटी) क्षमता को बढ़ाती है। दूध में उपस्थित सभी रासायनिक घटक न केवल पोषण प्रदान करते हैं बल्कि शरीर को स्वस्थ रखने एवं रोग प्रतिरोधी क्षमता बढ़ाने में भी मदद करते हैं।

ऊँटनी के दूध में जल की मात्रा लगभग 89.5–91.5 प्रतिशत पाई जाती है जो कि अन्य दुधारू पशुओं के दूध से अधिक है। वसा की मात्रा 2.6–3.2 प्रतिशत तक पाई जाती है। दुग्ध वसा ऊर्जा का एक महत्वपूर्ण स्रोत है। दुग्ध वसा में आवश्यक वसीय अम्ल पाये जाते हैं। वसीय अम्ल सामान्य वृद्धि, पाचन तथा अवशोषण, अस्थि कैल्शियम आदि कार्यों में सहायता करते हैं।

दूध में लैक्टोज लगभग 3.8–4.8 प्रतिशत तक पाया जाता है एवं यह ऊर्जा का एक अच्छा स्रोत है। लैक्टोज दूध में विलयन के रूप में उपस्थित रहता है जिसके कारण यह आसानी से पाचन योग्य है।

प्रोटीन की मात्रा 2.11–3.5 प्रतिशत तक पाई गई है। दूध में पाये जाने वाले प्रोटीन्स को मुख्यतः दो भागों – केसीन (75–80 प्रतिशत) एवं मस्तु प्रोटीन्स (20–25 प्रतिशत) मे विभाजित किया जाता हैं जिनमें केसीन सबसे प्रमुख प्रोटीन है। ऊँटनी के दूध में 21 प्रतिशत अल्फा–केसीन, 65 प्रतिशत वीटा–केसीन और 5 प्रतिशत कापा–केसीन पाया जाता है। अल्फा–केसीन की कम मात्रा पाए जाने के कारण ऊँटनी का दूध ज्यादा सुपाच्य होता है एवं इस दूध से एलर्जी भी नहीं होती है। मस्तु प्रोटीन्स मे अल्फा–लैक्टएलब्यूमिन की अत्यधिक मात्रा (350 मि.ग्रा. प्रतिशत) पाई जाती है एवं वीटा–लेक्टोग्लोब्युलिन अनुपस्थित होता है। वीटा–लेक्टोग्लोब्युलिन अनुपस्थित एवं अल्फा–लैक्टएलब्यूमिन की प्रचुरता ऊँटनी के दूध को अन्य दूध से अलग करती है एवं इस दूध से एलर्जी नहीं होने का एक कारण यह भी है। ऊँटनी के दूध में कई प्रकार के रक्षात्मक प्रोटीन्स जैसे लाइसोजाईम, लैक्टोफेरिन, लैक्टोपरऑक्सीडेज एवं पैप्टीडोग्लाइकान पहचान प्रोटीन पाए जाते हैं। रक्षात्मक प्रोटीन दूध की गुणवत्ता को लम्बे समय तक बनाए रखने में भी सहायक होती है।

लाइसोजाइम, लैक्टोफेरिन, लैक्टोपरऑक्सीडेज एवं पैप्टीडोग्लाइकान पहचान प्रोटीन की मात्रा क्रमशः0.65 मि.ग्रा.प्रतिशत, 2.5 मि.ग्रा. प्रति मिलीलीटर, 2.23 यूनिट प्रति मिलिलीटर एवं 10.7 मि.ग्रा. प्रतिशत पाई गई है। ऊँटनी के दूध में मस्तु प्रोटीन्स की मात्रा गाय के दूध से लगभग दुगुनी होती है।

ऊँटनी के दूध में कैल्शियम, फॉस्फोरस एवं मैगनीशियम की मात्रा क्रमशः94.06–97.32 मि.ग्रा.प्रतिशत,

41.68–47.14 मि.ग्रा.प्रतिशत व 11.82–13.58 मि.ग्रा. प्रतिशत तक पाई जाती है। इसके दूध में लोहा, जस्ता एवं ताँबे की मात्रा 0.88–1.12 मि.ग्रा. प्रतिशत, 1.19–2.02 मि.ग्रा. प्रतिशत व 0.40–0.48 मि.ग्रा. प्रतिशत के लगभग पाई जाती है। ऊँटनी के दूध में लोहा, जस्ता एवं ताँबे की मात्रा गाय के दूध की तुलना में काफी अधिक है। ऊँटनी के दूध में विटामिन 'ए', 'बी' एवं विटामिन 'ई' की मात्रा क्रमशः 10.1–30.0 माइक्रोग्राम प्रतिशत, 13.2–26.0 माइक्रोग्राम प्रतिशत व 19.9–45.5 माइक्रोग्राम प्रतिशत तक पाई जाती है। विटामिन 'सी' की मात्रा 4.84–5.26 मि.ग्रा.प्रतिशत तक होती है। ऊँटनी के दूध में विटामिन 'सी' की अधिक मात्रा दूध को लम्बे समय तक रखने में सहायक है। विटामिन की उपस्थिति से दूध के पोषक मान में काफी वृद्धि होती है।

ऊँटनी के दूध में उपस्थित मूल जैव–सक्रिय प्रोटीन

1. इम्मुनोग्लोबुलिन

इम्मुनोग्लोबुलिन जिसे रोग प्रतिकारक भी कहा जाता है, यह मानव एवं पशुओं के रक्त द्रव्य एवं शरीर द्रव में पाया जाता है। यह कीटाणु एवं विषाणु जैसे प्रतीजनों से शरीर को रोगप्रतिकारक क्षमता प्रदान करता है। दूध में इसकी मात्रा बहुत से कारणों जैसे पशु की प्रजाति, उसका स्वास्थ्य एवं दूध स्त्राव की अवस्था इत्यादि पर निर्भर करती है। ऊँटनी के दूध में इम्मुनोग्लोबुलिन जी की मात्रा लगभग 1.64 मि.ग्रा. प्रति मि.ली. तक पाई जाती है जबकि गाय, भैंस, बकरी, भेंड़ एवं मनुष्य के दूध में इसकी मात्रा क्रमशः 0.67,0.63,0.70,0.55 एवं 0.86 मि.ग्रा. प्रति मि.ली. तक पाई है।

2. लैक्टोफेरिन

लैक्टोफेरिन एक ग्लाइकोप्रोटीन है जिसे लैक्टोट्रान्सफेरिन भी कहा जाता है। शरीर में इसकी आवश्यकता लोहे के भण्डारण एवं परिवहन में होती है। यह शरीर के स्त्राव में संमार्जक का कार्य भी करता है। ऊँटनी के दूध में लैक्टोफेरिन की मात्रा (0.22 मि.ग्रा. प्रति मि.ली.) अन्य पशुओं की तुलना में काफी ज्यादा पाई गई है।

ऊँटनी के दूध में जैव–सक्रिय पेप्टाइड का उत्पादन

सूक्ष्मजीवीय किण्वन : औद्योगिक रूप से प्रयुक्त होने वाले डेयरी स्टार्टर कल्चर अत्यधिक प्रोटीन अपघटनीय प्रकृति के होते हैं। किण्वित डेयरी उत्पादों में मौजूद जैव सक्रिय पेप्टाइड्स को स्टार्टर या अर्स्टाटर जीवाणुओं के माध्यम से बनाया जाता है। लैक्टिक एसिड जीवाणु के प्रोटीन अपघटनीय तन्त्र को भली–भाँति समझा जा चुका है। इस तन्त्र में एक कोशिका भित्ति युक्त प्रोटीनेज तथा विभिन्न अन्तरकोशिकीय पेप्टाइडेस (एन्डोपेप्टाइडेस, अमीनोपेप्टाइडेस, ट्राइपेप्टाइडेस व डाईपेप्टाइडेस) मौजूद होते हैं।

लैक्टोबेसीलस रेमनोसस जीवाणु से किण्वित ऊँटनी के दूध में आक्सीकरण रोधी व एन्जियोटेन्सीन कन्वर्टिंग एन्जाइम को संदमित करने का गुण, गाय के किण्वित दूध से ज्यादा होता है। इस प्रकार के निष्कर्षों के बाद लैक्टिक एसिड बैक्टीरिया के उपयोग से ऊँटनी के दूध से विभिन्न नए खाद्य उत्पादों का विकास हो पाएगा।

दूध में उपस्थित विभिन्न दुग्ध प्रोटीनों से जैव सक्रिय पेप्टाइडस को मुख्यतया निम्नलिखित 3 तरीकों से उत्पादित कर सकते हैं–

(अ) पाचक एन्जाइमों की सहायता से अपघटन कर

(ब) स्टार्टर (आरम्भक) संवर्धन द्वारा दूध को किण्वित कर

(स) सूक्ष्म जीवों एवम् पादपों से व्युत्पित एन्जाइमों से प्रोटीन अपघटन द्वारा

एन्जाइमीय अपघटन : सम्पूर्ण प्रोटीन अणु से जैव सक्रिय पेप्टाइडस उत्पादित करने की यह विधि सर्वाधिक प्रचलित है। विभिन्न जठरान्त्रीय एन्जाइमों यथा पेप्सीन, ट्रीपसीन की सहायता से कुछ साल जैव सक्रिय पेप्टाइडस का उत्पादन किया जा चुका है। उदाहरणतः एन्जियोटेन्सीन कन्वर्टिंग एन्जाइम की क्रिया को सन्दभित करने वाले पेप्टाइडस का उत्पादन सामान्यतः ट्रिप्सीन की सहायता से किया जा चुका है। इन एन्जाइमों के अलावा विभिन्न पाचक एन्जाइमों व प्रोटीन को अपघटित करने वाले विभिन्न एन्जाइमों (जैसे काइमोट्रिप्सीन, पैन्क्राइटिक पेप्सीन, थर्मोलाइसीन) के अलग–अलग संयोजन तथा जीवाणु व फंफूद से प्राप्त होने वाले एन्जाइमों की सहायता से भी अनेक प्रकार के जैव सक्रिय पेप्टाइडस बनाए जा चुके हैं।

उष्ट्र दुग्ध में मौजूद केसीन व बीटा–केराटीन को पेप्सीन या प्रोटीन अपघटित करने वाले तीन एन्जाइमों के मिश्रण द्वारा अपघटित करने पर प्राप्त होने वाले पेप्टाइडस में एन्जियोटेन्सीन कन्वर्टिंग एन्जाइम की क्रिया को संदमित करने वाले गुणधर्म मौजूद होते हैं। इन दोनो प्रोटीनों को अगर काइमोट्रिप्सीन से अपघटित किया जावे तो प्राप्त पेप्टाइडस आक्सीकरण रोधी क्रिया प्रदर्शित करते हैं।

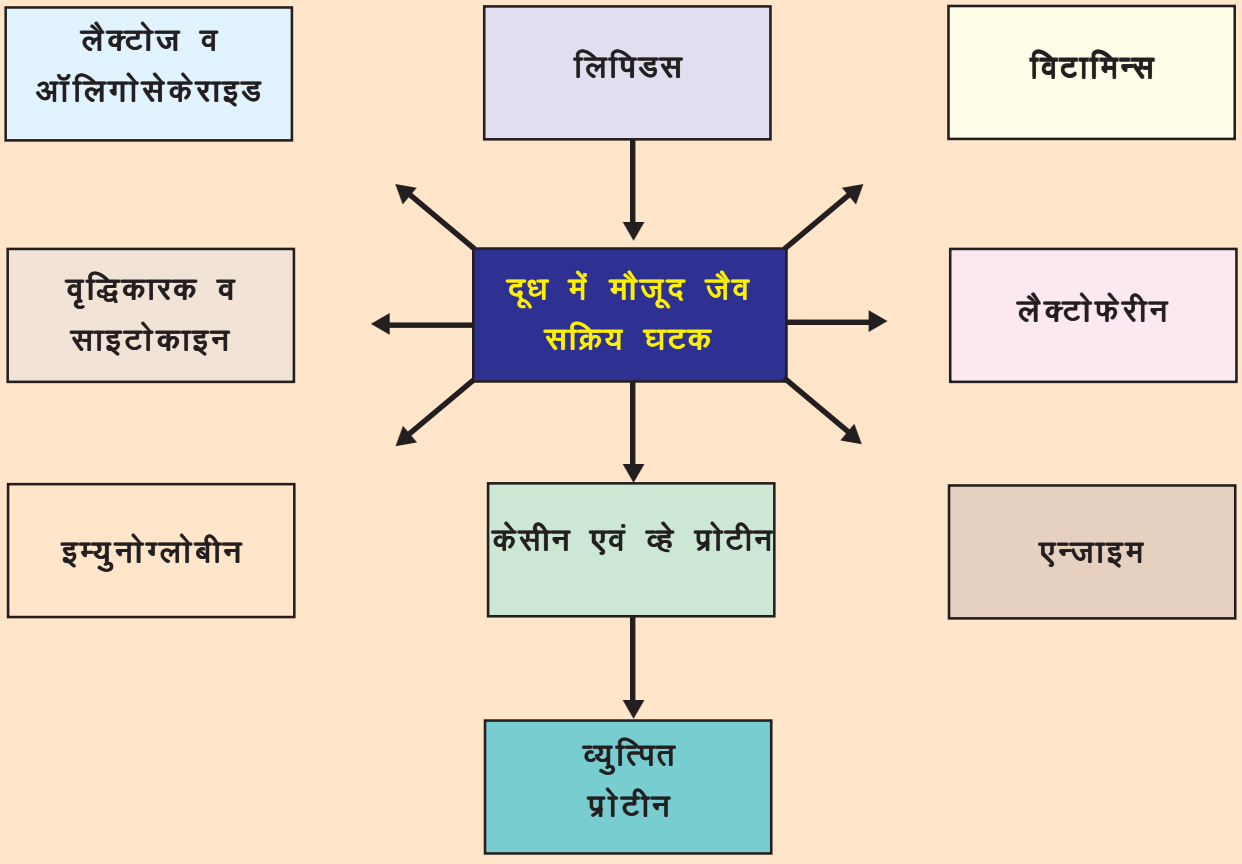

ऊँटों में खाज–खुजली रोग का प्रबंधन

संजय कुमार, वैज्ञानिक एवं **एस.के. घोरुई,** प्रधान वैज्ञानिक
राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र, बीकानेर

ऊँट आर्थिक रूप से एक महत्वपूर्ण पशु है जो रेगिस्तान की विषम और कठोर परिस्थितियों में निर्वाह करने में सक्षम है। रेगिस्तान में प्रचलित इस जानवर के लिए गर्म और शुष्क कृषि जलवायु काफी अनुकूल है। रेगिस्तानी क्षेत्र में लाखों लोगों की आजीविका ऊँटों जो कि सही मायने में स्थायी कृषि संसाधन है, के अच्छे स्वास्थ्य और उत्पादकता पर निर्भर करती है। ऊँट विभिन्न प्रकार के परजीवी रोगों से ग्रस्त होता है जो ऊँटों के खराब स्वास्थ्य का प्रमुख कारण है। खाज–खुजली (सारकोप्टीकोसिस) ऊँटों के सबसे आम परजीवी त्वचा रोगों में से एक है जो 'सारकोपटिस स्काबिएई माइट' के कारण होता है। यह बेहद संक्रामक और पशुओं को दुर्बल करने वाला त्वचा रोग है। यह ऊँट पालने वाले लोगों को होने वाले नुकसान के मामले में ट्रीपैनोसोमीऐसिस के बाद दूसरे स्थान पर वर्गीकृत है। राजस्थान के शुष्क और अर्ध शुष्क क्षेत्रों में घरेलू पशुओं को तीन प्रकार की खाज (सारकोप्टिक, सोरोप्टिक और डेमोडेक्टिक) का सामना करना पड़ता है जिसमें सारकोप्टिक खाज/खुजली सबसे महत्वपूर्ण है। त्वचा में बिल खोदने वाला यह माइट त्वचा के नीचे के ऊतकों और मेजबान पशुओं के खून को पीकर भारी नुकसान पहुंचाता है।

रोग को फैलाने वाले कारक

सामान्यतः युवा, तनावग्रस्त और दुर्बल वयस्क और तिबरसा रोग से पीड़ित ऊँटों में सारकोप्टिक खाज/खुजली के प्रकोप की संभावना अधिक रहती है। इस तरह के जानवरों में अक्सर खाज का पुराना (क्रोनिक) और सामान्यकृत रूप पाया जाता है। स्वस्थ और अच्छी तरह से पोषित जानवर मुश्किल से ही इस रोग से ग्रस्त हो पाता है जिसमें हल्के रूप में स्थानीकृत और केंद्रित घाव मध्यम रुग्णता के साथ होता है। इस रोग के होने में अक्सर जानवरों के खराब हालात, खराब प्रबंधन और कुपोषण जुड़ा होता है। आवारा संक्रमित ऊँट जब आम जगहों पर झुंड के साथ मिलता है तो वह एक स्वच्छ और स्वस्थ झुंड में खाज/खुजली के संक्रमण का कार्य करता है। संक्रमण को प्रभावित करने वाले ये अनुकूल कारण और खराब मौसम रोग को बढ़ाते हैं और नाटकीय रूप से झुंड में उच्च रुग्णता पैदा करते हैं।

रोग का संचरण

ऊँटों की खाज–खुजली अत्यधिक संक्रामक रोग होने के कारण संक्रमित मेजबान के साथ निकट शारीरिक संपर्क, माइट प्रभावित परिवेश और ऊँट अनुचर के द्वारा फैलता है। यह रोग ठंडे और शुष्क मौसम में सबसे अधिक प्रचलित है। गर्मियों के महीनों में यह मामूली रूप से होता है और धीरे–धीरे फैलता है।

चिकित्सीय निष्कर्ष

अक्सर इस बीमारी की शुरुआत पशुओं की गर्दन, छाती, कंधे का क्षेत्र, पहलू, जांघ के भीतरी मध्यवर्ती क्षेत्र, जांघ और पेट के बीच के भाग में शुरुआती स्थानीय खालित्य

घावों के साथ अचानक से हो जाती है। अनुपचारित पशुओं में रोग धीरे–धीरे शरीर के अन्य भागों जैसे पेट, पैर और पीठ में फैल जाता है और रोग का सामान्यीकृत रूप ग्रहण कर लेता है। रोग के तीव्र कोर्स से ठीक हुए पशु रोगवाहक के रूप में कार्य करते हैं।

रोग के नैदानिक संकेत संक्रमण के 15 से 30 दिनों के बीच दिखाई देते हैं। माइट्स की गतिविधियाँ मेजबान पशु के शरीर में भारी जलन पैदा करती है जिसके कारण पशु चरना बंद कर देता है और अपने शरीर को पेड़, दीवार या यहां तक कि दूसरे ऊँट से रगड़ता है। मेजबान पशु में रोग की प्रतिक्रियाएं माइट्स द्वारा चमड़े में बिल खोदने के कारण (यांत्रिक क्षति) और एलर्जी प्रतिक्रियाएं माइट द्वारा उत्सर्जन (लार, मल) की वजह से होती है। ऊँटों में खुजली का गंभीर रूप ज्यादातर सामान्यकृत स्वभाव का होता है और शरीर की पूरी सतह पर फैला होता है। अनुपचारित ऊँट दुर्बल हो जाते हैं और यह जानलेवा साबित हो सकता है। प्रभावित पशुओं की हालत तेजी से ढीली हो जाती है। रोग के तीव्र कोर्स से जो पशु जीवित बच जाते हैं वे प्रतिरक्षा वाहक बनकर रोग के चिरकालिक (क्रोनिक) रूप से ग्रस्त हो जाते हैं जिसका लक्षण चमड़े का अत्यधिक केराटीनाईज्ड होना, संयोजी ऊतकों का प्रसार, चमड़े का मोटा, झुर्रीदार और त्वचा–विदारण होना है। त्वचा के मोटे घाव झुर्रीदार सलवटों में परिवर्तित हो जाते हैं और अक्सर खडिया की तरह पपड़ी के आवरण बनाते हैं। खुजली और तीव्र खाज जारी रहती है और यह रोग के प्रारंभिक चरण से ज्यादा स्पष्ट होता है।

सारकोप्टिक खाज–खुजली प्राकृतिक हालात के तहत शायद ही कभी मेजबान पशु में लंबे समय के लिए बना रहता है। ये आदमी में आसानी से प्रसारित होते हैं, खासकर सामाजिक रूप से हाशिए पर खड़े ऊँट मालिकों में जिनकी हथेलियों पर और उंगलियों के बीच की त्वचा की परतों पर खुजली वाले घाव विकसित होते हैं।

चिकित्सीय प्रबंधन

यह रोग आत्म–सीमित होता है लेकिन कई बार गंभीर रूप से प्रभावित ऊँट में चिकित्सीय प्रबंधन स्वस्थ पशुओं में इस रोग के प्रसार को रोकने के लिए और रोग से उत्पादन हानि को कम करने के लिए अक्सर जरूरी होता है। कीटनाशक औषधि का सामयिक इस्तेमाल अत्यधिक प्रभावी है लेकिन इसके लिये अधिक परिश्रम की आवश्यकता होती है क्योंकि प्रभावित क्षेत्र में कीटनाशक औषधि के घोल को अच्छी तरीके से लगाना पड़ता है। कीटनाशक औषधि का सामयिक इस्तेमाल साप्ताहिक अंतराल पर करने से खाज के घावों का पूर्ण उपचार हो जाता है। ऊँटों के शरीर पर कीटनाशक औषधि जैसे डियाजीनोन, अमितराज, डेल्टामेथ्रिन और फेनवालीरेट के घोल का साप्ताहिक अंतराल पर दो या तीन बार छिड़काव अत्यधिक प्रभावी होता है। ऊँटों में माइट्स के इलाज में चमड़े के नीचे एवरमेक्टिन का इंजेक्शन देने से उत्कृष्ट परिणाम मिलता है।

रोग–नियंत्रण

1. रोग के शुरूआती घावों के विकसित होने पर रोगग्रस्त जानवर को झुंड से तुरन्त अलग कर देना चाहिए।
2. प्रबंधन के तरीकों में सुधार, समृद्ध अनुकूलतम पोषण, स्वच्छता और अच्छी सफाई व्यवस्था खाज–खुजली के सफल उपचार के लिए आवश्यक शर्तें हैं।
3. अत्यधिक भीड़–भाड़, स्वस्थ पशुओं से प्रभावित पशुओं का आपस में मिलना, दूषित साधनों के साथ संपर्क और सवारी करने के लिये पशु पर कपड़े और साज–सामान डालने से परहेज किया जाना चाहिए।

4. रोगग्रस्त पशुओं का इलाज किया जाना चाहिए और केवल एक ही व्यक्ति द्वारा संभाला जाना चाहिए जो स्वस्थ पशुओं के रख–रखाव से दूर हो।

5. संक्रमित परिसर को साफ किया जाना चाहिए और कीटनाशक औषधि के छिड़काव से विसंक्रमित किया जाना चाहिए।

6. रोगग्रस्त ऊँटों के उपयोग में आने वाले सामान जैसे बर्तन, संवारने का ब्रश, काठी और कंबल को दूसरे पशुओं पर उपयोग से पहले कीटनाशक औषधि के घोल के छिड़काव द्वारा विसंक्रमित किया जाना चाहिए।

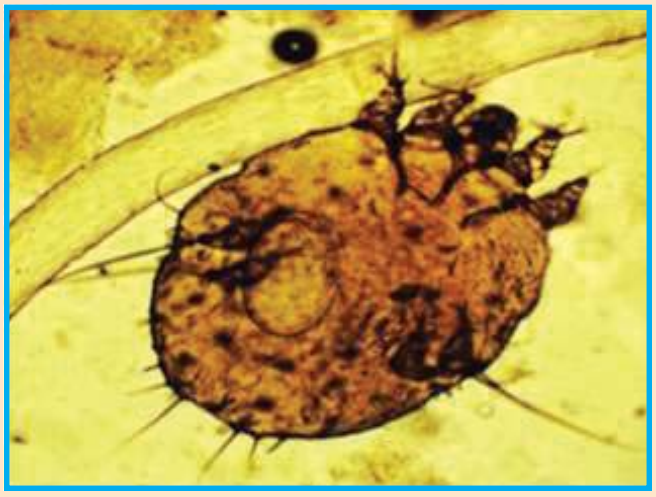

ऊँटों में खाज–खुजली पैदा करने वाला सार्कोप्टिस स्काबिएई माइट

खाज–खुजली से रोगग्रस्त ऊँट

पाखीआळौ पैली चिमकै।
–पीठ पर घाव वाला पशु (ऊँट आदि) कौवे को देखते ही चौंक उठता है। भले ही वह उसके चौंच न मारे।

–उजास ग्रन्थ माळा–20 से साभार

हिन्दी की अंतर्राष्ट्रीय भूमिका एक स्वप्न नहीं है, नए विश्व मानव की एक माँग है और आने वाली भविष्य की एक जाज्वल्यमान वास्तविकता है। हिन्दी भाषी जन स्वाति की प्रतीक्षा न करें। वे अपने तप के ताप से स्वयं को बादल के रूप में रूपांतरित करें। धरती को हिन्दी के पावस की प्रतीक्षा है।

–विद्यानिवास मिश्र

ऊँटों के उत्पादन एवं स्वास्थ्य सुधार में जैव–प्रौद्योगिकी का अनुप्रयोग

डी. सुचित्रा सेना, वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं **राकेश कुमार पूनियाँ,** तकनीकी सहायक
राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र, बीकानेर

एंटीबॉडी एवं एंटीजन के आणविक निदान और विभिन्न रोगों का औषधियों एवं टीकों के द्वारा नियन्त्रण में जैव–प्रौद्योगिकी का महत्वपूर्ण स्थान है। आधुनिक जैव–प्रौद्योगिकी हमें बीमारियों के निदान हेतु सस्ते, संवेदनशील एवं विशिष्ट अभिकर्मक और सस्ती, प्रभावी, सुरक्षित औषधि बनाने में समर्थ बनाती है। इसमे प्रयुक्त तकनीकियाँ रोगों के विशिष्ट निदान, उनके प्रभावी उपचार, नियन्त्रण तथा रोकथाम के साथ–साथ पशुओं में आनुवांशिकीय विकारों को पहचानने व उन्हें दूर करने में सहायक सिद्ध होती है। इन विधियों में मोनोक्लोनल एंटीबॉडी, न्यूक्लिक एसिड प्रोब, डीएनए फिंगरप्रिंटिंग एवं पी.सी.आर. प्रमुख हैं। जैव–प्रौद्योगिकी के तकनीकीय अनुप्रयोग एक ही तरह के रोग लक्षण तथा घाव उत्पन करने वाले रोगाणुओं को पृथक करने और उनके निदान से जुड़ी विभिन्न् जटिलताओं को सुलझाने हेतु नए आयाम उपलब्ध करवाते हैं। जैव–प्रौद्योगिकी में पशुओं के स्वास्थ्य, उत्पादन तथा उनके उत्पाद जैसे विभिन्न क्षेत्रों में सुधार हेतु योगदान देने की क्षमता है। रोगाणुओं के जीनोम आधारित नैदानिक तकनीकों के विकास में आणविक जैव–प्रौद्योगिकी का प्रमुख योगदान है। मोनोक्लोनल एंटीबॉडी युक्त पी.सी.आर., वेस्टर्न ब्लोटिंग एवं क्लोन किये गए एंटीजन का उपयोग जीवाणुओं, परजीवियों, मायकोप्लाज्मा, क्लेमाइडल तथा विषाणु जनित संक्रामक बीमारियों के निदान हेतु किया जाता है।

संक्रामक रोग ऊँटो के उत्पादन को प्रभावित करने वाला प्रमुख कारक है। पूर्व में अनुसंधानकर्ताओं ने उष्ट्र उत्पादन पर सर्रा तथा ब्रुसेलोसिस के विपरीत प्रभाव का गहन अध्ययन किया है। रोगाणु की पहचान एवं पृथक्करण, उष्ट्र रोगों के संक्रामक प्रादुर्भाव को नियन्त्रण करने का प्रमुख आधार है। रोगाणु की उसके जीवाणु व विषाणु प्रतिरोधी गुण तथा उपभेदों के आधार पर लाक्षणिक पहचान करना रोग को नियंत्रित करने की दूसरी महत्वपूर्ण कड़ी है। रोगाणु की जीवाणुवीय–संवर्धन और विषाणु विलगन के आधार पर पहचान अनेक उद्देश्यों हेतु आवश्यक है परन्तु यह एक मेहनतकश व समय–परक कार्य है। जैव–प्रौद्योगिकी के तकनीकीय अनुप्रयोग से रोगाणुओं के विभिन्न उपभेदों एवं उनके वंशावली क्रम का अध्ययन आवश्यक है क्योंकि एक उपभेद के विरुद्ध किया गया टीकाकरण दूसरे उपभेद पर पूर्ण रूप से प्रभावी नहीं होता है। यह विशेषकर उत्परिवर्तनीय रोगाणुओं (जैसे इन्फ्लुएन्जा विषाणु) के लिये बिल्कुल उचित है। जैव प्रौद्योगिकी विधियों द्वारा रोगाणु की समय पर पहचान एवं उचित औषधियों के उपयोग से उनका नियन्त्रण, उष्ट्र स्वास्थ्य तथा उत्पादन को सुधारने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है। रोगाणु के महत्वपूर्ण जीन–अनुक्रमण का विश्लेषण, बीमारी के आणविक और स्थानिक उद्भव के अध्ययन में सहायता प्रदान करता है। अभी तक अन्य पशुधन प्रजातियों की अपेक्षा उष्ट्र में बहुत कम संक्रामक रोगों का

अध्ययन किया गया है। नीचे तालिका में उष्ट्र में होने विभिन्न् रोगों के निदान हेतु काम में ली जाने वाली जैवप्रौद्योगिकीय विधियों को क्रमबद्ध किया गया है।

रोग	संक्रामक कारक	निदान (आणविक पहलू)
	विषाणु जनित रोग	
कैमल पॉक्स	ऑर्थोपॉक्स विषाणु	• अगार जैल अवक्षेपण परीक्षण • कॉम्प्लीमेंट फिक्सेशन परीक्षण • पीसीआर • आर.टी.–पीसीआर • इम्यूनोहिस्टोकेमेस्ट्री • इलेक्ट्रोन सूक्ष्मदर्शी
कंटाजिअस एक्थिमा	स्यूडोकाउपॉक्स विषाणु	• पीसीआर • इलेक्ट्रोन सूक्ष्मदर्शी
पेपीलोमास	पेपीलोमास विषाणु	• इम्यूनोहिस्टोकेमेस्ट्री • इलेक्ट्रोन सूक्ष्मदर्शी
ब्लू टंग	ब्लू टंग विषाणु	• कोशिका संवर्धन • इम्यूनोफ्लुओरोसेन्स • एलिजा परीक्षण • इम्यूनोस्पोट परीक्षण • सीरम उदासिनिकरण परीक्षण • पीसीआर • अगार जैल इम्यूनोडिफ्यूजन • कॉम्प्लीमेंट फिक्सेशन परीक्षण
पेस्टी–डी–पेटीटस रुमिनेंट्स (पीपीआर)	पेस्टी–डी–पेटीटस विषाणु	• अगार जैल इम्यूनोडिफ्यूजन • आर.टी.–पीसीआर • कोशिका संवर्धन में विषाणु विलगन • कम्पेटेटीव–एलिजा परीक्षण • सेंडविच– एलिजा परीक्षण
बोवाईन वाइरल डायरिया	बोवाईन वाइरल डायरिया विषाणु	• विषाणु उदासीनिकरण परीक्षण • एलिजा परीक्षण • कोशिका संवर्धन में विषाणु विलगन • पीसीआर

रोग	संक्रामक कारक	निदान (आणविक पहलू)
	प्रोटोजोआ जनित रोग	
सर्रा	ट्रीपेनोसोमा इवांसी	• एलिजा परीक्षण • इम्यूनोफ्लुओरोसेन्ट एंटीबॉडी परीक्षण • कॉम्प्लीमेंट फिक्सेशन परीक्षण • अग्लूटीनेसन परीक्षण • सूराटेक्स लेटेक्स अग्लूटीनेसन परीक्षण • पीसीआर • डीएनए प्रोब
	जीवाणु जनित रोग	
ब्रुसेलोसिस	ब्रुसेला अबोर्टीस/ब्रुसेला मैलीटेन्सिस	• स्लाइड/प्लेट अग्लूटीनेसन परीक्षण • रोस–बेंगाल प्लेट परीक्षण • सीरम अग्लूटीनेसन परीक्षण • कॉम्प्लीमेंट फिक्सेशन परीक्षण • एलिजा (प्रत्यक्ष/अप्रत्यक्ष) परीक्षण • पीसीआर • बफर्ड ब्रुसेला प्रतिजन परीक्षण • फ्लुओरोसेन्स पोलेराइजेशन् परीक्षण
तपेदिक	माइकोबेक्टीरियम बोविस	• पीसीआर • जीनप्रोब टी.बी. संकुल डीएनए प्रोब • लिम्फोसाइट प्रोलिफिरेसन परीक्षण • गामा इंटरफिरोन परीक्षण • एलिजा परीक्षण • उपभेद भिन्नता हेतु आनुवंशिक फिंगरप्रिंटिंग
पासचिरोलोसिस	पसचिरोलोसिस मल्टोसीडा प्रभेद–बी	• रेपिड स्लाइड एवं अप्रत्यक्ष अग्लूटीनेसन परीक्षण • अगार जैल इम्यूनोडिफ्यूजन • काउंटर–इम्यूनोइलेक्ट्रोफोरेसिस • डीएनए फिंगरप्रिंटिंग • पीसीआर

रोग	संक्रामक कारक	निदान (आणविक पहलू)
पैराटयूबरक्लोसिस	माइकोबेक्टीरियम अवियमउपभेद–पैराटयूबरकुसिस	• एलिजा परीक्षण • अगार जैल इम्यूनोडिफ्यूजन • कॉम्प्लीमेंट फिक्सेशन परीक्षण • पीसीआर • गामा इंटरफिरोन परीक्षण
क्यु–फीवर	कोक्षीएला बरनेटी	• इम्यूनोहिस्टोलॉजी • एलिजा परीक्षण • कॉम्प्लीमेंट फिक्सेशन परीक्षण • पीसीआर

अन्य पालतू पशुओं के प्रमुख रोगकारक जैसे एनाप्लाज्मा, टोक्सोप्लाज्मा, इन्फ्लुएंजा, पैरा–इन्फ्लुएंजा, अफ्रीकन होर्स सिक्नेस, रिफ्ट वेली–फीवर, क्लोस्ट्रिडियल संक्रमण, एंथ्रेक्स, साल्मोनेलोसिस, कोलिबेसिलोसिस, लेप्टोस्पिरोसिस, लिस्टीरिया, ड्रमेंटोफिलोसिस, एवं क्लेमाईडीया इत्यादि जिन्हें ऊँट के संदर्भ में कम जाना जाता है, के विरुद्ध भी एंटीबॉडीज की पहचान की गई। इस प्रकार अगर जैवप्रौद्योगिकी में निहित तकनीकों का विवेकपूर्वक तरीकों से इस्तेमाल किया जाए तो न केवल ऊँट बल्कि अन्य पशुधन प्रजातियों को रोगमुक्त रखकर उनके स्वास्थ्य के साथ–साथ उनके उत्पादन में और भी अधिक आशातीत सुधार किये जा सकते हैं।

ऊँटनी के नवजात बच्चों में कोलोस्ट्रम एवं दूध का महत्व

गोरख मल, प्रधान वैज्ञानिक एवं **बी. सिंह,** वरिष्ठ वैज्ञानिक
भारतीय पशु–चिकित्सा अनुसन्धान संस्थान, क्षेत्रीय केन्द्र, पालमपुर, हिमाचल प्रदेश

ऊँटनी में लम्बा गर्भकाल होने के कारण इस प्रजाति में प्रजनन दर की गति धीमी है, इसलिये एक सांडनी से दो वर्ष में एक ही बच्चे की प्राप्ति होती है। उपलब्ध आंकड़ों से देखा गया है कि ऊँटनी के बच्चों में मृत्युदर 10 से 20 प्रतिशत तक हो सकती है। कम से कम मृत्यु दर के साथ स्वस्थ टोरडियों का पालन एक सफल उष्ट्र डेयरी कार्यक्रम में महत्वपूर्ण है। इन सब बातों को देखते हुए यह अति आवश्यक हो जाता है कि नवजात बच्चों के रख–रखाव का समुचित प्रबन्धन करें जिससे उन्हें अकाल मृत्यु से बचाकर, उष्ट्र पालन को और अधिक लाभकारी बनाया जा सके। एक अच्छा ऊँट पालक तब तक संतुष्ट नहीं होता है जब तक मृत्युदर 5 प्रतिशत से कम न हो जाये। ब्याँत के पश्चात कुछ दिनों तक ऊँटनी और नवजात बच्चे का ध्यान रखना परम आवश्यक है। ऊँटनी के आहार एवं ऊर्जा आपूर्ति का पूरा ध्यान रखना चाहिए। साधारणतया ऊँटनी के बच्चों का जन्म सर्द ऋतु में होता है। नवजात बच्चों को ठण्ड के प्रकोप से बचाने के उपाय करना नितांत आवश्यक है। कमजोर बच्चों को ठण्ड से बचाने के लिए चारदीवारी के अन्दर रखना चाहिए, जहाँ ठंडी हवा का प्रभाव कम हो। नवजात टोरडा/टोरडी में स्वास्थ्य समस्याओं को कम करने के लिए कोलोस्ट्रम/खीस पिलाना एक प्रमुख प्रबंधन है।

नवजात बच्चों का हाजमा इतना नाजुक होता है कि वह सिर्फ माँ से प्राप्त कोलोस्ट्रम (खीस) को ही सहजता से पचा सकता है। कोलोस्ट्रम पिलाने से ऊँटनी के नवजात बच्चों को पानी की प्राप्ति भी आसानी से हो जाती है, क्योंकि कोलोस्ट्रम में जल की मात्रा 75.95–90.13 प्रतिशत तक पाई गई है। कोलोस्ट्रम में कुल ठोस की मात्रा ऊँटनी के दूध से लगभग दोगुनी, कुल प्रोटीन्स की मात्रा चौगुनी होती है। कोलोस्ट्रम में वसा की मात्रा बहुत ही कम एवं सामान्य दूध में लगभग 2.60–3.20 प्रतिशत तक पाई जाती है। कोलोस्ट्रम से दूध बनने की प्रक्रिया के दौरान वसा की मात्रा काफी ज्यादा एवं प्रोटीन्स की मात्रा काफी कम हो जाती है। लैक्टोज की मात्रा कोलोस्ट्रम एवं दूध में लगभग एक समान होती है। कोलोस्ट्रम में कुल खनिज पदार्थ 1.44–2.80 प्रतिशत एवं दूध में 0.82–0.85 प्रतिशत तक पाए जाते हैं। कोलोस्ट्रम में इम्यूनोग्लोब्युलिनस का उच्च स्तर ऊँटनी के नवजात बच्चों को विभिन्न प्रकार के संक्रमणों से लड़ने के लिए सक्षम बनाता है। नवजात बच्चों में विभिन्न रोगों से लड़ने में सक्षम प्रतिरक्षा प्रणाली पूरी तरह से विकसित नहीं होती है, इसलिये विभिन्न प्रकार के संक्रमणों का खतरा लगातार बना रहता है। कोलोस्ट्रम में उपस्थित इम्यूनोग्लोब्युलिनस विभिन्न प्रकार के संक्रमणों से सुरक्षा

प्रदान करती हैं। कोलोस्ट्रम में इम्यूनोग्लोब्युलिनस का स्तर आरम्भ में सबसे अधिक 17.16–18.28 मिलीग्राम/मिलीलीटर होता है एवं 12 घंटे के अन्तराल में इसका स्तर 4–5 प्रतिशत एवं 24 घंटों के बाद 12–14 प्रतिशत तक कम हो जाता है। 24–72 घंटों के अन्तराल पर कोलोस्ट्रम में इम्यूनोग्लोब्युलिनस की मात्रा 11.75–15.95 मिलीग्राम/मिलीलीटर तक पाई गई है। इसके बाद कोलोस्ट्रम में इम्यूनोग्लोब्युलिनस का स्तर लगातार कम होता जाता है। ऊँटनी के दूध में इम्यूनोग्लोब्युलिनस का स्तर एक सप्ताह, एक महीने, दो महीने एवं तीन महीने पर क्रमशः 10.15–11.19, 6.68–7.86, 4.80–5.78 और 3.40–4.38 मिलीग्राम/मिलीलीटर तक पाया जाता है। अतः नवजात बच्चों के लिए पहला कोलोस्ट्रम बहुत महत्वपूर्ण होता है। पहला कोलोस्ट्रम जन्म के 2–4 घंटे के भीतर एवं दूसरा 12 घंटे के भीतर नवजात बच्चों को अवश्य पिलाना चाहिए। आमतौर पर जन्म के 1–2 घंटे बाद नवजात बच्चा अपने आप दूध पीने लग जाता है। कोलोस्ट्रम ऊर्जा, प्रोटीन्स, विटामिन्स और खनिज तत्वों का एक उचित स्रोत है। कोलोस्ट्रम में पोषक तत्वों के साथ–साथ रोग–निरोधक एन्टीबॉडीज होती हैं, जो नवजात बच्चे की रोग–प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाती है। ऊँटनी से प्राप्त कोलोस्ट्रम एवं दूध की सामान्य सरंचना तालिका 1 में दर्शाई गई है :

कोलोस्ट्रम की उपयोगिता : बच्चे के जन्म के साथ ही मुलायम कपड़े से नाक को साफ कर देना चाहिए ताकि नवजात बच्चे को साँस लेने में कोई कठिनाई न हो। शरीर पर लगे लिसलिसे पदार्थ को भी कपड़े से साफ करना चाहिए, जिससे रक्त का प्रवाह ठीक हो सके और नवजात बच्चे में स्फूर्ति आ सके। जन्म के बाद नवजात बच्चों को कोलोस्ट्रम पिलाना अत्यन्त आवश्यक है। ऊँटनी से प्राप्त कोलोस्ट्रम में प्रोटीन की मात्रा साधारण दूध में पाई जाने वाली प्रोटीन्स की मात्रा से लगभग 4 गुना अधिक होती है, जो ऊर्जा का प्रमुख स्त्रोत है। कोलोस्ट्रम प्रोटीन में उपस्थित इम्यूनोग्लोब्युलिनस नवजात बच्चे के रक्त में समायोजित होकर उनमें रोग–प्रतिरोधक क्षमता उत्पन्न करते हैं। इम्यूनोग्लोब्युलिनस के रक्त में समायोजन की दर धीरे–धीरे कम होती जाती है। ऊँटनी के दूध में इम्यूनोग्लोब्युलिन, अपेक्षाकृत छोटे आकार और वजन के होते हैं जो कि मेजबान सेल विनियामक कोशिकाओं के साथ अच्छा सम्प्रेषण करने में अग्रणी भूमिका निभा सकते हैं। इसलिये जन्म के समय बच्चों में रोग–प्रतिरोधक क्षमता का विकास करने के लिए कोलोस्ट्रम पिलाना अति आवश्यक है।

कोलोस्ट्रम की मात्रा एवं उचित समय : कोलोस्ट्रम की मात्रा नवजात बच्चों के वजन के अनुसार निर्धारित करनी चाहिए। यह मात्रा शरीर भार के लगभग दसवें भाग

तालिका 1. ऊँटनी से प्राप्त कोलोस्ट्रम एवं दूध की तुलनात्मक सरंचना

संघटक (प्रतिशत में)	कोलोस्ट्रम	दूध
जल	75.95–90.13	88.55–90.15
कुल ठोस	19.87–25.05	9.85–11.45
वसा	0.1–0.4	2.60–3.20
कुल प्रोटीन	15.79–19.52	3.73–3.89
लैक्टोज	3.98–5.13	3.52–4.36
कुल खनिज	1.44–2.80	0.82–0.85

के बराबर होनी चाहिए। जिसे 24 घंटे में 3 से 4 बार में नवजात बच्चों को पिलाया जा सकता है। कोलोस्ट्रम की मात्रा नवजात बच्चों के मल को देखकर भी निर्धारित की जा सकती है। अगर मल पतला आ रहा हो तो कोलोस्ट्रम की मात्रा कम कर देनी चाहिए। बच्चे को माँ का पूरा कोलोस्ट्रम नहीं पीने दें एवं पाचन शक्ति के अनुसार एक या दो थनों का ही कोलोस्ट्रम बच्चे को पीने दें। प्रथम बार कोलोस्ट्रम, बच्चे के जन्म के बाद जितना जल्दी सम्भव हो सके, पिला देना चाहिए क्योंकि जैसे–जैसे समय व्यतीत होता जाता है, कोलोस्ट्रम की गुणवता कम होती जाती है।

कोलोस्ट्रम का वैकल्पिक उपाय : कभी–कभी ऊँटनी का थनों के किसी रोग से ग्रसित होने या अन्य कारणों से कोलोस्ट्रम उपलब्ध नहीं होता है। इस दशा में कोलोस्ट्रम की वैकल्पिक व्यवस्था करना आवश्यक है, जिससे नवजात बच्चे की आहारीय ऊर्जा की पूर्ति की जा सके। अगर किसी कारणवश ऊँटनी से नवजात को कोलोस्ट्रम प्राप्त न हो तो, इसके स्थान पर किसी और ऊँटनी से प्राप्त कोलोस्ट्रम या किण्वित कोलोस्ट्रम दिया जा सकता है, लेकिन किण्वित कोलोस्ट्रम तैयार करने के लिए अच्छी गुणवता वाले कोलोस्ट्रम का ही प्रयोग करना चाहिए और किण्वित कोलोस्ट्रम को प्लास्टिक डिब्बों में भरकर रखना चाहिए, जिससे किण्वित कोलोस्ट्रम की गुणवता बनी रहे। किण्वित कोलोस्ट्रम को नवजात बच्चों को पिलाने से पहले इसकी जाँच अवश्य कर लेनी चाहिए। किण्वित कोलोस्ट्रम को एक महीने के भीतर प्रयोग कर लेना चाहिए। किण्वित कोलोस्ट्रम में प्रोटीन एवं लैक्टोज की मात्रा आमतौर पर साधारण कोलोस्ट्रम से कम होती है जिसके कारण ऊँटनी के नवजात बच्चों की शारीरिक वृद्धि पर असर पड़ सकता है।

दूध पिलाना : बच्चों को प्रतिदिन कम से कम सुबह–शाम दो बार दूध पिलाना चाहिए। बच्चों को रोजाना थोड़ी देर के लिए ऊँटनी के साथ घुमाना चाहिए ताकि बच्चा घास खाना सीख जाये एवं सेहतमन्द भी रहे। लगभग तीन माह के बाद ऊँटनी का बच्चा चरने लग जाता है। इस दौरान उसको ऊँटनी का दूध अवश्य पिलाना चाहिए ताकि बच्चे का शारीरिक विकास हो सके। इसलिये नवजात बच्चों को माँ का दूध पर्याप्त मात्रा में देना बहुत ही आवश्यक है।

ऊँटनी के नवजात बच्चों को कोलोस्ट्रम एवं दूध पिलाकर, मातृहीन बच्चों को दूसरी ऊँटनी का दूध पिलाकर नवजात बच्चों में मृत्युदर को कम किया जा सकता है।

- बातड़ल्यां घर ऊजड़ै बातड़ल्यां घर होय।

– बातों से घर उजड़ता है, बातों से घर बनता है।

- बैठ्या मजूर मांदौ पड़ै।

– बैठा हुआ मजदूर बीमार हो जाता है। कामगार को काम चाहिए जिससे धन व स्वास्थ्य दोनों मिलते हैं।

–उजास ग्रन्थ माळा–20 से साभार

नागरी लिपि से बढ़कर वैज्ञानिक लिपि मैंने दुनिया में कोई दूसरी नहीं पाई।

–आचार्य विनोबा भावे

हायडाटीडोसिस : ऊँटों व मनुष्यों में होने वाला एक परजीवी रोग

शिरीष नारनवरे, श्याम सिंह दहिया, वैज्ञानिक, **जी. नागराजन,** वैज्ञानिक व.वे. एवं
एफ.सी. टुटेजा, वरिष्ठ वैज्ञानिक
राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र, बीकानेर

हायडाटीडोसिस विश्व के सभी देशों में पाया जाने वाला परजीवी जनित रोग है। यह सभी मवेशियों जैसे गाय, भैंस, भेड़, बकरी, ऊँट व इसके अलावा मनुष्यों में पाया जाता है, जिसमें मवेशियों व मनुष्यों के शरीर के विभिन्न आंतरिक अंगों में छोटे–बड़े सिस्ट बनते हैं। यह बीमारी कुत्तों की आँतों में पाए जाने वाले एक फीता कृमि परजीवी इकायनोकोकस ग्रेनुलोसस के लार्वल स्टेज द्वारा मवेशियों व मनुष्यों में स्थानान्तरित होती है। यह एक अत्यंत खतरनाक बीमारी है क्योंकि इसके कारण ऊँट की कार्यक्षमता, उत्पादन तो प्रभावित होता ही है, लेकिन ज्यादा गंभीर स्थिति में रोगग्रस्त ऊँट अथवा मनुष्य की मृत्यु भी हो सकती है।

रोग का प्रसार

- इस रोग का प्रसार कुत्तों के मल में उपस्थित इकायनोकोकस ग्रेनुलोसस के अण्डों से संक्रमित खाने–पीने की वस्तुओं द्वारा ऊँटों व मनुष्यों में होता है।
- जो ऊँट ऐसे चरागाहों में चरते हैं जहाँ कुत्ते बहुतायत में हैं, उनमें यह बीमारी होने की ज्यादा संभावना रहती है।
- यदि ऊँट पालक के पास पालतू कुत्ता है तथा वह हमेशा पशुओं के साथ ही रहता है तो भी इस रोग के संक्रमण का खतरा हो सकता है।
- मृत पशु के ऊतकों में यदि हायडाटीड सिस्ट है और उसे कुत्ते खा लें तो कुत्तों के पेट में ये परजीवी वयस्क रूप में आ जाते हैं और अंडे देकर मल द्वारा प्रसार करते हैं।

इकायनोकोकस ग्रेनुलोसस परजीवी का जीविका चक्र (चित्र क्र. 1)

- कुत्तों के मल से संक्रमित खाने–पीने की वस्तुओं द्वारा इकायनोकोकस ग्रेनुलोसस के अंडे मवेशियों के पेट में चले जाते हैं। यह मवेशी इस परजीवी के लिए इंटरमीजीएट (मध्यवर्ती) होस्ट होते हैं।
- ये अंडे मवेशियों की आंतों से निकलकर यकृत, फेफड़ों व अन्य ऊतकों जैसे मस्तिष्क व मांसपेशियों में जाते हैं व लगभग 5 महीनों के उपरांत उस स्थान पर सफेद आवरण वाले हायडाटीड सिस्ट बन जाते है (चित्र क्र. 2)।
- यह सिस्ट सामान्यतः 5 से 10 से.मी. जितने बडे होते हैं व उसके अंदर पानी जैसा द्रव भरा रहता है।

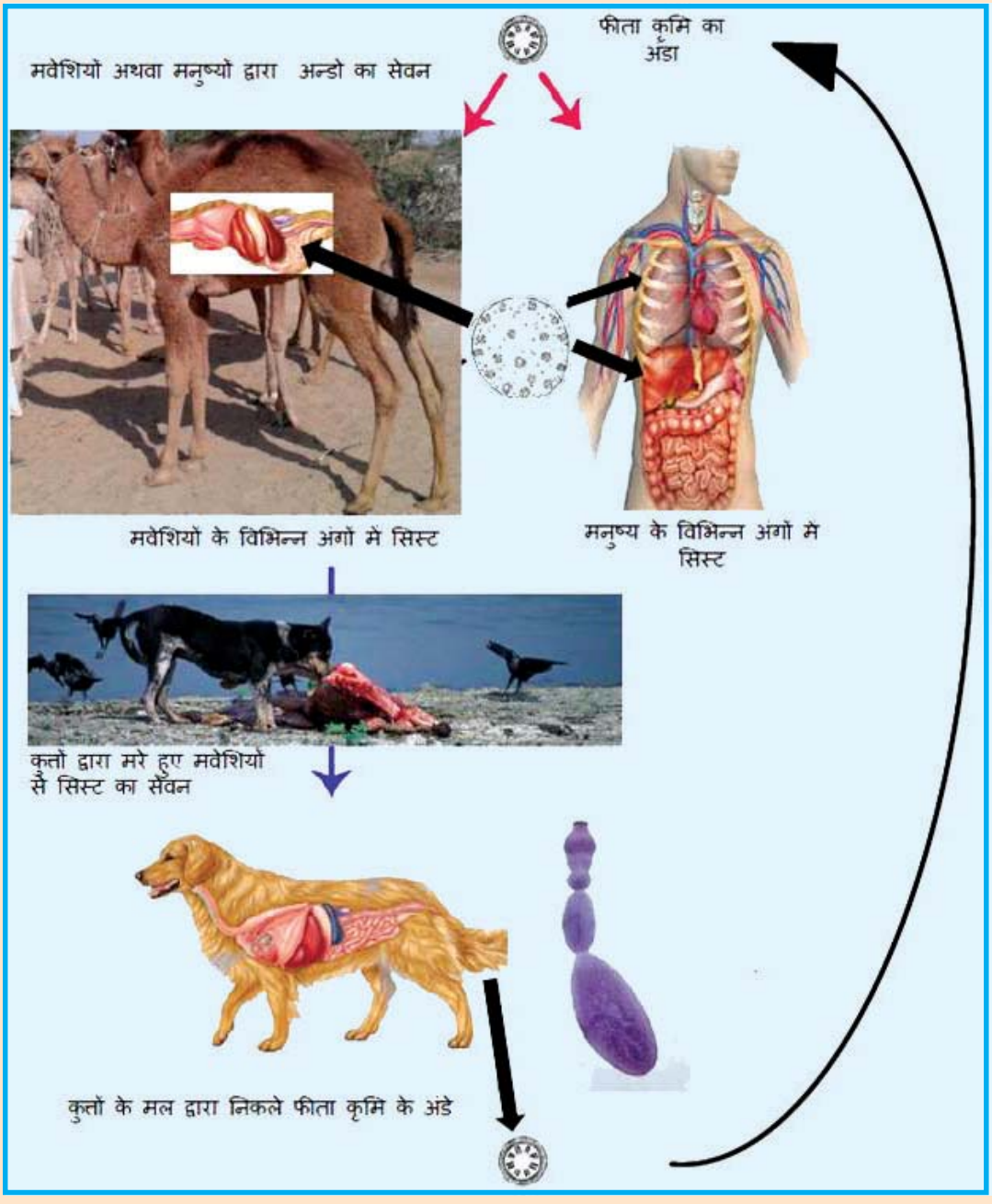

चित्र क्र. 1. इकायनोकोकस ग्रेनुलोसस परजीवी का जीवन चक्र

कभी–कभी ये सिस्ट आकार में 50 से.मी. जितने भी हो सकते हैं।

- इन सिस्ट के अंदर जर्मिनल लेयर होती है (चित्र क्र. 3) जिसमें ब्रूड कैप्सूल होते हैं जिनमें इस परजीवी के लार्वा के प्रोटोस्कोलायसेस होते हैं (चित्र क्र. 4)।

चित्र क्र.2. ऊँट के शव परीक्षण में यकृत में पाए गए सफेद आवरण वाले सिस्ट

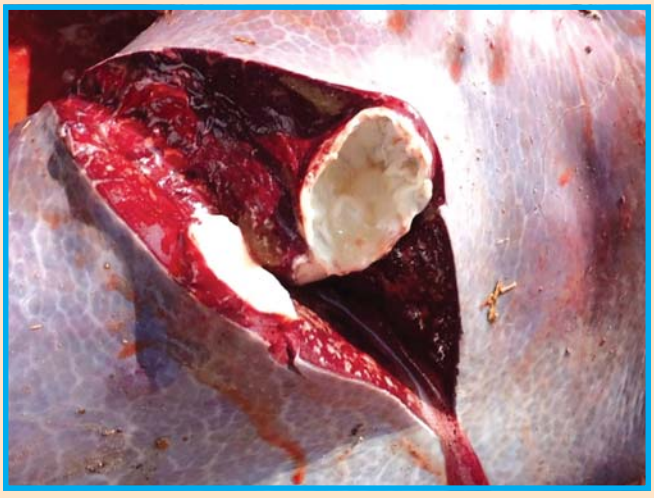

चित्र क्र. 3. ऊँट के फेफड़े में सिस्ट के अंदर भरा पानी व जर्मिनल लेयर

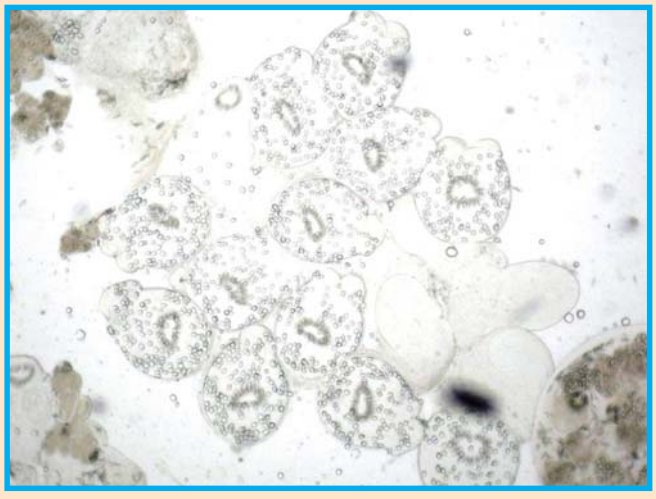

चित्र क्र. 4. ब्रूड कैप्सूल के अंदर इकायनोकोकस ग्रेनुलोसिस लार्वा के प्रोटीस्कोलायसेस

- जब यह ब्रूड कैप्सूल जर्मिनल लेयर से अलग होते हैं व सिस्ट के अंदर पानी में तैरते हैं तो इन्हें हायडाटीड सैंड कहा जाता है।
- इनका जीवन चक्र तब पूरा होता है जब कोई कुत्ता मरे हुए पशु से इन हायडाटीड सैंड को खा लेता है। जिसके बाद यह कुत्ते के पेट में जाकर वयस्क रूप में तैयार हो जाते है।
- यह वयस्क परजीवी अंडे देते हैं जो कुत्तों के मल द्वारा बाहर निकलते हैं।

बाह्य लक्षण

- सामान्यतः ऊँटों में इस रोग के बाह्य लक्षण दिखाई नहीं देते या बहुत कम प्रमाण में दिखाई देते हैं।

- इसके लक्षण जो आतंरिक अंग प्रभावित है, उसके अनुसार दिखाई देते हैं।
- फेफड़ों में सिस्ट होने पर श्वास में तकलीफ, खाँसी जैसे लक्षण दिखाई देते हैं। यकृत में सिस्ट होने पर पीलिया, पेट दर्द, पेट फुलना व दस्त जैसे लक्षण दिखाई देते हैं। मस्तिष्क में सिस्ट होने पर अंधापन व लकवे जैसे लक्षण दिखाई दे सकते है।
- इन सिस्ट के शरीर के अंदर फटने पर कभी–कभी रोग ग्रस्त जानवर में एनाफायलेक्टिक शॉक व एलेर्जिक रिएक्शन जैसे लक्षण दिखाई दे सकते हैं।

आंतरिक लक्षण

निम्बू के आकार से लेकर टेनिस की गेंद के आकार जितने सिस्ट शरीर के विभिन्न आतंरिक अंगों जैसेः यकृत, फेफड़े, दिल, गुर्दे, मस्तिष्क, तिल्ली इत्यादि में दिखाई पड़ते हैं। इन सिस्ट की वजह से इसके साथ वाले ऊतकों का ह्रास होता है। रोगग्रस्त ऊतकों में कड़ापन आ जाता है जिससे उन ऊतकों की कार्यक्षमता प्रभावित होती है।

सूक्ष्म आंतरिक लक्षण

सिस्ट के आसपास सूजन व विभिन्न कोशिकाओं का जमाव दिखाई देता है। इन कोशिकाओं में इओसिनोफिल, जायंट सेल व फायब्रस कनेक्टिव टिशु प्रमुख रूप से होते हैं।

निदान

इस रोग का निदान एक्स–रे तकनीक द्वारा किया जा सकता है। शव परिक्षण में विभिन्न ऊतकों में सिस्ट पाए जा सकते हैं।

उपचार

यदि बीमार पशु के ऊतकों में सिस्ट होने का पता चलता है तो शल्य क्रिया द्वारा सिस्ट को निकाला जा सकता है।

एनथेल्मिन्टिक दवाइयाँ जैसे फेनबेन्डाजोल, अलबेन्डाजोल इत्यादि लंबे समय के लिए दिए जाने चाहिए।

बचाव

अपने पशुओं को कुत्तों के मल से दूर रखने का प्रयास करें। पशुओं का चारा व पानी कुत्तों के मल से संक्रमित न हो, इसका ख्याल रखें। पशुओं को ऐसी जगह पर चराने न ले जाएं जहाँ पर कुत्तों की संख्या ज्यादा हो। अपने पशुओं को समय–समय पर (3 से 4 महीने में एक बार) बचावात्मक एनथेल्मिन्टीक दवाइयों द्वारा डीवर्मींग करें। मृत पशुओं को जमीन में गहराई से दफन करें या जला दें जिससे कुत्ते व अन्य पशु इन्हें बाहर न निकाल पाए व इनके ऊतकों को खाकर इस रोग का पुनः प्रसार न कर पाएं।

हिन्दी को हम अपनी जबान के लिए हमलोए–अव्वल (मूलतत्व) और उमुल्लिसान (भाषा की जननी) कह सकते हैं।

–प्रो.मौलवी वहीदुद्दीन साहब 'सलीम'

पिछले एक दशक के दौरान बीकानेर और राजस्थान में प्रदेश जनसँख्या, पशुधन और कृषि की गतिशीलता

ए. के. नागपाल, एस. सी. मेहता, प्रधान वैज्ञानिक, **राम कुमार,** फार्म प्रबन्धक
एवं **रामदयाल रैगर,** वरिष्ठ तकनीकी अधिकारी
राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र, बीकानेर

भारत के उत्तर–पश्चिम में 23 से 30 डिग्री उत्तर अक्षांश और 69 से 78 डिग्री पूर्व देशांतर के मध्य स्थित राजस्थान प्रदेश, देश का सबसे बड़ा राज्य है और यह उष्णकटिबंधीय जलवायु की स्थितियों की विशेषताएँ लिए हुए है। अरावली पर्वत की लंबी श्रंखलाएं राजस्थान को जलवायु के अनुसार पूर्वी अर्ध शुष्क और पश्चिमी शुष्क दो भागों में विभाजित करती हैं। राजस्थान प्रदेश अपने अस्तित्व में मार्च 1949 में आया। इसका क्षेत्रफल 342239 वर्ग किलोमीटर भारत के उत्तर पश्चिम के 10.4 प्रतिशत क्षेत्र में स्थित है। यह राजाओं की भूमि के रूप में भी जाना जाता है। राजस्थान की शान, शूरवीर महाराणा प्रताप की गाथा आज भी लोगों के दिलों पर अंकित है और इन्हें सम्पूर्ण भारतवर्ष में बड़े सम्मान और श्रद्धा के साथ याद किया जाता है। राजस्थान की सीमाओं के पश्चिम में पाकिस्तान, दक्षिण पश्चिम में गुजरात, दक्षिण पूर्व में मध्य प्रदेश, उत्तर पूर्व में उत्तर प्रदेश, हरियाणा और ठीक उत्तर में पंजाब सटे हुए हैं। राजस्थान अपने ग्रेट इंडियन डेजर्ट थार मरुस्थल, अरावली पर्वत श्रंखला, एक मात्र हिल स्टेशन माउन्ट आबू, झीलों की नगरी उदयपुर, बीकानेर के चूहों वाले मंदिर की देवी करणी माता, सालासर में स्थित बालाजी मंदिर, जैसलमेर के बाबा रामदेव मंदिर, जैनियों के पवित्र तीर्थ दिलवाड़ा मंदिर, केवलादेव राष्ट्रीय उद्यान, राष्ट्रीय बाघ अभयारण्य रणथंभौर और सरिस्का बाघ संरक्षण के लिए विश्व विख्यात है। साथ ही बीकानेर अपने एतिहासिक दुर्गों, स्मारकों, हवेलियों के लिए भी खूब प्रसिद्ध है, जिन्हें देखने के लिए देश–विदेश से प्रति वर्ष लाखों सैलानी यहाँ आते हैं। राजस्थान की अर्थव्यवस्था मुख्यतः कृषि एवं पशुपालन पर आधारित है। राजस्थान अपने खनिज पदार्थों, जिप्सम और मकराना के संगमरमर के लिए भी पूरे देश में जाना जाता है। बाड़मेर में मिले कच्चे तेल से राजस्थान की अर्थव्यवस्था को एक नई पहचान मिली है और उम्मीद है कि आने वाले समय में यह देश का सबसे बड़ा तेल उत्पादक प्रदेश बनेगा।

राजस्थान प्रदेश के उत्तर–पश्चिम में स्थित पतंग के आकार लिए बीकानेर एक बहुत ही शांति–प्रिय, अलमस्त और अदभुत विश्व प्रसिद्ध दर्शनीय शहर है। यह 'बीकाणा' (उर्दू) और 'केमलसिटी' के नाम से भी जाना जाता है। भौगौलिक दृष्टि से बीकानेर 73 डिग्री पूवी अक्षांश, 28.01 डिग्री देशांतर पर और समुद्र तल से 243 मीटर ऊँचाई पर स्थित है। बीकानेर के उत्तर में गंगानगर, हनुमानगढ़ पूर्व में चुरू, पूर्व दक्षिण में नागौर पश्चिम में पाकिस्तान, पश्चिम दक्षिण में जैसलमेर तथा दक्षिण में जोधपुर से घिरा हुआ है। क्षेत्रफल के अनुसार बीकानेर (27244 वर्ग कि.मी.) का राजस्थान प्रदेश में जैसलमेर (38401 वर्ग कि.मी.) और बाड़मेर (28387 व.कि.मी.) के बाद तीसरा स्थान है और धौलपुर (3033 व. कि.मी.) का अंतिम स्थान है। जनसँख्या घनत्व/वर्ग

किलोमीटर के अनुसार जयपुर (598) का पहला और बीकानेर का 32 वां स्थान (78) और अंत में जैसलमेर (17) का है।

बीकानेर की स्थापना तथा इसके नामकरण के बारे में कहानी प्रचलित है कि इस शहर को राव बीका ने 1485 में नेरा नाम के व्यक्ति से जमीन खरीद कर स्थापित किया था। नेरा ने राव बीका को जमीन इस शर्त पर दी थी कि इस शहर के साथ उसका नाम जोड़ा जाएगा। इसलिए इसका नाम बीकानेर पड़ा। इतने वर्षों बाद भी अक्षय तृतीया के दिन यहाँ के निवासी बड़े गौरव और जोश के साथ बीकानेर का स्थापना दिवस पतंग उड़ा कर मनाते हैं। यहाँ के निवासी बड़े उद्यमी हैं, इन्होंने अपने बीकानेरी भुजिया के ब्रांड से देश–विदेश में खूब प्रसिद्धि अर्जित की है। शायद ही हिंदुस्तान का कोई शहर हो जहाँ बीकानेर का भुजिया, पापड़ न मिलते हो। यहाँ की भाषा मारवाड़ी है और कपिल मुनि के कोलायत मेले, बिश्नोई समाज के मुकाम मेले, देशनोक के चूहों के मंदिर वाले करणी माता का भव्य मंदिर होने के कारण प्रसिद्ध है जहाँ देश के विभिन्न हिस्सों, विदेश से लोग आशीर्वाद लेने पहुँचते हैं। यहाँ का अंतर्राष्ट्रीय ऊँट उत्सव, देश विदेश में खूब मशहूर है और देशी तथा विदेशी सैलानी इसका बहुत लुत्फ उठाते हैं। दूर से देखने पर बीकानेर बहुत भव्य और विशाल दिखाई देता है। इस शहर के चारों तरफ 4.5 मील लम्बी पत्थर की मोटी दीवारी है जिसमें पांच गेट क्रमशः कोटगेट, जस्सूसर गेट, नत्थूसर गेट, शीतला गेट और गोगागेट हैं, ये अपने अंदर बहुत पुरानी भव्य, उत्कृष्ट शिल्पकला वाली लाल पत्थर से बनी इमारतें समाए हैं, जो पर्यटकों को बहुत लुभाते हैं।

जलवायु

बीकानेर की जलवायु अधिकतर शुष्क है, गर्मियों में बहुत अधिक गर्मी तथा सर्दियों में ठंड पड़ती है। मई जून के महीनों में यहाँ गर्म हवाएं (लू) चलती हैं और रेत के टीले एक जगह से दूसरी जगह बनते–बिगड़ते रहते हैं। गर्मियों में यहाँ पशु, पक्षियों तथा मनुष्यों की तापघात से मृत्यु तक हो जाती है। सर्दियों में अधिक ठण्ड (पाले) से पेड़–पौधे नष्ट हो जाते हैं। जलवायु रूप देखने से पता चलता है कि सन 1999 में बीकानेर का न्यूनतम तापमान 2.3 और अधिकतम 45.5 और औसत 27.7 डिग्री सेल्सियस, सापेक्ष आर्द्रता 43 प्रतिशत रही और सन 2009 में न्यूनतम, अधिकतम, औसत तापमान बढ़कर 4.6, 47.9 और 28.1 डिग्री सेल्सियस थे। सापेक्ष आर्द्रता घटकर 40 प्रतिशत रही। ग्रीष्म ऋतु में पश्चिमी राजस्थान का चुरू, प्रदेश में ही नहीं बल्कि पूरे देश में सबसे अधिक तापमान दिखाता है। यहाँ का तापमान 48 डिग्री सेल्सियस को भी पार करता है। यहाँ के वाशिंदे इस झुलसती गर्मी को सहन कर अपनी दिनचर्या को बनाये रखते हैं जो अपने आप में आश्चर्यजनक है।

बीकानेर की धरती रेतीली होने से इसे मरुनगरी नाम से भी जाना जाता है। रेतीला होने से यहाँ कुओं का बहुत अधिक महत्व रहा है। जहाँ भी कुआँ खोदने पर पानी मिला, वहाँ बस्ती बस गई जैसे लूणकरणसर, कोडमदेसर नौरंगदेसर। यहाँ के कुंए 300 मीटर से अधिक गहरे हैं।

सामान्यता बीकानेर में 24.30 सेन्टीमीटर और राजस्थान में 57.51 सेन्टीमीटर वर्षा होती है (तालिका 1)। राजस्थान के बांसवाडा में सबसे अधिक वर्षा (95.03 सेन्टीमीटर) तथा जैसलमेर सबसे कम वर्षा (18.55 सेन्टीमीटर) वाले स्थान हैं। जैसलमेर को छोड़ कर प्रदेश के अन्य नगरों की तुलना में बीकानेर में कम वर्षा होती है। यदि बीकानेर और राजस्थान के 1999 से 2009 वर्षा रिकॉर्ड को देखें तो पता चलता है कि सन 2002 में अन्य वर्षों की अपेक्षा, बीकानेर (6.63 सेन्टीमीटर) और राजस्थान (26.71 सेन्टीमीटर) में सबसे

तालिका–1. पिछले दशक में बीकानेर और राजस्थान में वर्षा की गतिशीलता

बीकानेर											
सामान्य	1999	2000	2001	2002	2003	2004	2005	2006	2007	2008	2009
24.30	26.38	31.13	29.40	6.63	29.95	15.79	29.68	19.27	28.33	34.73	20.87
राजस्थान											
57.51	50.65	41.64	57.43	26.71	60.47	55.45	56.53	70.87	55.93	60.48	42.26

स्रोतः सांख्यिकी और आर्थिक विभाग, राजस्थान सरकार

कम वर्षा हुई जो प्रदेश में अकाल का कारण बने। बीकानेर में सबसे अधिक वर्षा 2008 में और राजस्थान में सन 2006 में हुई जिससे कई स्थानों पर अच्छी फसल के साथ बाढ़ का दंश भी लगा।

जनसँख्या

2001 में बीकानेर की 16.7 लाख जनसँख्या, राजस्थान प्रदेश की कुल आबादी का 2.96 प्रतिशत हिस्सा थी जो 2011 में 3.45 प्रतिशत बढ़कर 23.7 लाख हो गई। पिछले दशक में जनसँख्या वृद्धि के मामले में बीकानेर ने अपने प्रदेश की 21.24 औसत वृद्धि प्रतिशत को 41.42 प्रतिशत दर से मात दी। शहर की 35.07 प्रतिशत जनसँख्या वृद्धि दर के मुकाबले ग्रामीण वृद्धि दर (44.92 प्रतिशत) अधिक रही जिसका सीधा असर खाद्य सामग्री और घरों हेतु जमीन की मांग पर हुआ। बीकानेर में जहाँ ग्रामीण जनसँख्या 64–66 प्रतिशत के बीच रही वहीं राजस्थान प्रदेश में ग्रामीण आबादी 75–76 प्रतिशत के बीच थी। घनत्व/किलोमीटर के आधार पर बीकानेर की जनसँख्या 6 से 78 हुई जो कि प्रदेश के मुकाबले एक तिहाई रही पर वृद्धि दर में खास फर्क नहीं था। शिक्षा के क्षेत्र में बीकानेर ने प्रगति दिखाई और वृद्धि दर 57.54 से 65.92 प्रतिशत हुई जबकि प्रदेश में 9.88 प्रतिशत शिक्षा की गिरावट रही है (तालिका 2)।

परिवहन

किसी शहर/प्रदेश की विकास गति को ट्रेक्टर, ट्रक और मोटर वाहन वृद्धि दर से भी नापा जा सकता है जो वहाँ की आर्थिक तथा व्यावसायिक गतिविधियों को दर्शाता है। 1999–00 से 2009–10 के दौरान सड़क निर्माण क्षेत्र में बीकानेर में प्रदेश के मुकाबले पिछड़ा (तालिका 3)। प्रदेश की 118.03 प्रतिशत सड़क निर्माण वृद्धि के मुकाबले सिर्फ 42.72 प्रतिशत वृद्धि ही हुई। ट्रेक्टर (156 प्रतिशत) और ट्रक की संख्या (141 प्रतिशत) में प्रदेश के क्रमशः 81 और 121 प्रतिशत के मुकाबले जोरदार वृद्धि दर्ज की गई हालांकि मोटर गाडियों के मामले में प्रदेश (164 प्रतिशत) के मुकाबले बीकानेर (136 प्रतिशत) पिछड़ा।

पर्यटन

आजकल पर्यटन ने एक व्यवसाय का बहुत बड़ा रूप ले लिया है और एक उद्योग का दर्जा प्राप्त कर लिया है। हर शहर तथा प्रदेश का अपना पर्यटन/ऐतिहासिक महत्व है। दशक 1999–00 के और 2009 के बीच जहाँ भारतीय पर्यटकों की 8.4 प्रतिशत वृद्धि थी वहाँ विदेशी सैलानियों ने 169.4 प्रतिशत की वृद्धि दर से बीकानेर के प्रति अपना उत्साह दिखाया जबकि भारतीयों ने प्रदेश के अन्य स्थानों में ज्यादा रूचि दिखाई (तालिका 4)।

तालिका–2. बीकानेर और राजस्थान प्रदेश की जनसँख्या का तुलनात्मक आंकडा

	बीकानेर			राजस्थान		
	2001	2011	प्रतिशत बदलाव	2001	2011	प्रतिशत बदलाव
जनसंख्या						
ग्रामीण (कुल)	1079235	1564009	44.92	43292813	51540236	19.05
ग्रामीण (प्रतिशत)	64.46	66.05	1.59	76.49	75.11	–1.38
शहरी (कुल)	595036	803736	35.07	13214375	17080776	29.26
शहरी (प्रतिशत)	35.54	33.95	–1.59	23.51	24.89	1.38
योग	1674271	2367745	41.42	56597188	68621012	21.24
घनत्व/वर्ग किलोमीटर	61	78	23.81	165	201	21.82
शिक्षा दर (प्रतिशत)	57.54	65.92	14.56	61.03	57.06	9.88

तालिका–3. बीकानेर और राजस्थान प्रदेश के परिवहन का तुलनात्मक आंकडा

	बीकानेर			राजस्थान		
	1999.00	2009.10	प्रतिशत बदलाव	1999.00	2009.10	प्रतिशत बदलाव
सड़कों की लम्बाई कि.मी.	3624	5172	42.72	86473	188534	118.03
ट्रेक्टर	6050	15483	155.92	334317	605539	81.13
ट्रक	6846	16467	140.53	131035	289925	121.26
मोटर वाहन	97266	229199	135.64	2711526	7165752	164.27

तालिका–4. बीकानेर और राजस्थान प्रदेश में आए सैलानियों के तुलनात्मक आंकड़े

सैलानी	बीकानेर			राजस्थान		
	1999	2009	प्रतिशत बदलाव	1999	2009	प्रतिशत बदलाव
भारतीय	225678	244547	8.36	6675528	25558691	278.70
विदेशी	22215	59857	169.44	562685	1073414	90.77

तालिका 2,3,4 स्रोतः सांख्यिकी और आर्थिक विभाग, राजस्थान सरकार

सिंचाई

बढ़ती जनसँख्या को खाद्य आपूर्ति के लिए अधिक खेती करने की आवश्यकता हुई। बीकानेर ने भी इसमें अपने योगदान को बढ़ाया। जहाँ 1999–00 से 2008–09 के मध्य बीकानेर में खेती की सिंचाई कुओं और नलकूपों से 4.52 गुना बढ़ी, वहीं प्रदेश में 17.9 प्रतिशत ही वृद्धि हुई। प्रदेश की 11.3 प्रतिशत वृद्धि के मुकाबले बीकानेर ने कुल सिंचाई की 40.93 प्रतिशत वृद्धि दर्ज की (तालिका 5)। सन 1999–00 में बीकानेर में कुल सिंचाई का 90.6 प्रतिशत नहर पानी से किया जो 2008–09 में घटकर 63.6 प्रतिशत रह गया। इसका कारण कुंओं और नलकूपों की संख्या बढ़ना था। यही रुझान राजस्थान प्रदेश में रहा। यहाँ की मिट्टी रेतीली होने के कारण कम उपजाऊ है। नत्रजन, पोटाश फोस्फोरस तथा कार्बन के स्तर सामान्य से काफी कम हैं। पानी की कमी से यहाँ खेती वर्षा पर निर्भर है जिसे बारानी खेती से जाना जाता है। अधिकतर जमीन टीलों के कारण ऊँची–नीची हैं। विकास के साथ किसानों ने स्प्रिंकलर सिंचाई साधन अपनाने शुरू कर दिए हैं।

पशुधन

1997 से 2007 दशक के दौरान बीकानेर (1.27 प्रतिशत) और प्रदेश (3.87 प्रतिशत) के घरेलू रूमंथी पशुओं में मामूली बढ़ोतरी हुई। बीकानेर में सबसे अधिक वृद्धि अश्वों (494.54 प्रतिशत) , इसके बाद बकरियों (38.82 प्रतिशत), भैंसों (22.29 प्रतिशत) और गायों (19.66 प्रतिशत) में हुई (तालिका 6)। ऊँटो, गधे तथा खच्चरों की संख्या में गिरावट क्रमशः 18.21, 16.41 और 16.36 प्रतिशत थी। राजस्थान प्रदेश में बकरियों ने बीकानेर के मुकाबले कम वृद्धि (26.70

तालिका–5. पिछले दशक के दौरान बीकानेर और राजस्थान में सिंचाई स्वरूप की गतिशीलता

हैक्टेयर	बीकानेर			राजस्थान		
	1999–00	2008–09	प्रतिशत बदलाव	1999–00	2008–09	प्रतिशत बदलाव
नहर	159012 (90.6%)	156806 (63.4%)	–1.39	1619151 (28.9%)	1583116 (25.3%)	.2.23
कुंओं और नलकूपों	16396 (9.3%)	90608 (36.6%)	452.62	3866868 (68.9%)	4558657 (73.0%)	17.89
तालाब	.	4		78420	30565	–61.02
अन्य	154	0		47435	72710	53.28
कुल (शुद्ध)	175562 (100%)	247418 (100%)	40.93	5611874 (100%)	6245048 (100%)	11.28
रासायनिक खाद का उपयोग मेट्रिक टन						
नत्रजन	15913	15461	–2.84	591847	709533	–19.88
फोस्फोरस	2353	6000	154.99	190072	319022	67.84
पौटेशियम	103	23	–77.67	5518	23470	325.34
कुल	18369	21484	16.96	787437	1052025	33.60

स्रोतः सांख्यिकी और आर्थिक विभाग, राजस्थान सरकार

तालिका–6. पिछले दशक के दौरान बीकानेर और राजस्थान में पशुधन स्वरूप की गतिशीलता

	बीकानेर			राजस्थान		
	1997	2007	प्रतिशत बदलाव	1997	2007	प्रतिशत बदलाव
गायें	560806	671078	+19.66	12141402	12119512	-0.18
भैंसें	107344	131272	+22.29	9770490	11091974	+13.53
भेड़	1143875	799728	+30.09	14584819	11189855	-23.28
बकरी	655252	909622	+38.82	16971078	21502996	+26.70
घोड़े एवं टट्टू	183	1088	+494.54	24106	25438	+5.53
खच्चर	55	46	-16.36	3202	886	-72.33
गधे	11604	9700	-16.41	185604	102130	-44.97
ऊँट	60659	49615	-18.21	669443	421836	-36.99
कुल रूमंथी पशु	2539778	2572149	+1.27	54350144	56454627	+3.87
घनत्व/वर्ग किलोमीटर	93.22	94.41	+1.27	158.81	164.96	3.87
खरगोश	391	43	-89.00	18682	9301	-50.21
सूअर	1685	801	-52.46	304920	208556	-31.60
कुत्ते	59707	51288	-14.10	1674366	1246036	-25.58
कुल गैर रूमंथी पशु	61783	52132	-15.62	1997968	1463893	-26.73
मुर्गी	22793	19637	-13.85	4406404	4946025	+12.25
उत्पादन						
दूध (000, टन)	335	299	-10.75	7260	9490	-30.72
ऊन (लाख कि.ग्रा.)	18.4	4.3	-76.63	188.8	126.77	-32.85
वेटेरनरी सुविधाएँ						
पोलीक्लिनिक हॉस्पिटल, डिस्पेंसरी, सब सेंटर	70	110	+57.14	3431	3584	+4.46
ए आई सेंटर	53	90	+69.81	2311	3015	+30.46

स्रोत : सांख्यिकी और आर्थिक विभाग, राजस्थान सरकार

प्रतिशत) दर्ज की। भैसों की संख्या में 13.53 प्रतिशत वृद्धि हुई, पर पूरे प्रदेश में अश्वों की संख्या में सिर्फ 5.53 प्रतिशत ही वृद्धि हुई। खच्चरों, गधों, ऊँटों, भेड़ों और गायों में क्रमशः 72.3, 45.0, 37.0, 23.3 और 0.18 प्रतिशत की गिरावट दिखाई। खच्चरों, गधों, ऊँटो की संख्या में गिरावट दर्शाती हैं कि इनका उपयोग कम हो गया हैं। बीकानेर में अश्वों, खच्चरों, बकरियों की संख्या (38.8 प्रतिशत) में वृद्धि, प्रदेश (26.7 प्रतिशत) के मुकाबले में ज्यादा थी। बीकानेर में भी भैंसों की संख्या ने वृद्धि दर दर्ज की। बीकानेर में जहाँ गायों की वृद्धि दर 19.7 प्रतिशत थी, राजस्थान में गिरावट शून्य से नीचे (–0.18 प्रतिशत) चली गयी। बीकानेर में भैंसों की वृद्धि दर (22.3 प्रतिशत) प्रदेश (13.5 प्रतिशत) के मुकाबले अधिक रही। घोड़ों तथा खच्चरों की संख्या में 4.95 गुना का इजाफा हुआ जबकि प्रदेश (5.5 प्रतिशत) में इनकी संख्या में मामूली बढ़ोतरी हुई। खरगोश, सूअर और कुतों की सख्या में बीकानेर और प्रदेश में कमी आई। बीकानेर में खरगोश (89.0 प्रतिशत), सूअर (52.5 प्रतिशत) की संख्या में कमी, प्रदेश के मुकाबले अधिक (50.2 तथा 31.6 प्रतिशत) थी। पूरे प्रदेश में कुतों की संख्या में 25.6 प्रतिशत गिरावट थी जबकि बीकानेर में 14.1 प्रतिशत गिरावट थी। प्रदेश (26.7 प्रतिशत) की तुलना में बीकानेर में गैर–रूमंथी (गैर–जुगाली) पशुओं की सख्या में कम गिरावट (15.6 प्रतिशत) रही जबकि रूमंथी पशुओं में बढ़ोतरी देखी गयी। बीकानेर में मुर्गियों की सख्या में 13.9 प्रतिशत की कमी हुई पर प्रदेश में मुर्गियों 12.3 प्रतिशत बढ़ी। बीकानेर में दुग्ध उत्पादन 10.8 प्रतिशत कम हुआ जबकि प्रदेश में 30.7 प्रतिशत दूध उत्पादन की वृद्धि हुई। ऊन उत्पादन में भारी कमी हुई। बीकानेर में ऊन उत्पादन में 76.6 प्रतिशत और प्रदेश में 23.9 प्रतिशत की गिरावट देखी गई जिसका कारण भेड़ों की संख्या में कमी हो सकता है।

भूमि उपयोग

बीकानेर में कुल भूमि का 6.65 प्रतिशत कृषि के अतिरिक्त अन्य कार्यों और प्रदेश में –0.93 प्रतिशत गया हालांकि ऊसर भूमि में कमी आई। बीकानेर में स्थाई चरागाह और चराई भूमि 9.9 प्रतिशत अधिक हुई जबकि प्रदेश में 14.2 प्रतिशत चली गयी। बीकानेर में स्थाई चरागाह और चराई भूमि 9.9 प्रतिशत अधिक हुई जबकि प्रदेश में इसकी 0.90 प्रतिशत गिरावट हुई। विविध पेड़–फसलों के अंदर भूमि 32 गुना बढ़ी और प्रदेश में भी इसका 28.4 प्रतिशत अधिक प्रयोग में लाया गया। बीकानेर में कृषि योग्य बंजर भूमि (18.1 प्रतिशत) और प्रदेश में 13.1 प्रतिशत कम हुई यानी कि बंजर भूमि का उपयोग बीकानेर में अधिक हुआ। बीकानेर में खाली, बंजर ऊसर भूमि में गिरावट 25.6 प्रतिशत थी जो कि प्रदेश में 28.7 प्रतिशत गिरावट से थोड़ी कम थी। इसका एक चौथाई खाली भूमि का अन्य कार्यों में उपयोग किया गया। बीकानेर में शुद्ध बिजाई क्षेत्रफल 50.1 प्रतिशत की रफ्तार से बढ़ा जो कि प्रदेश में 13.2 प्रतिशत वृद्धि की तुलना में काफी ज्यादा था। बीकानेर ने कुल फसली क्षेत्र की 54.9 प्रतिशत वृद्धि के साथ प्रदेश की 18.1 प्रतिशत वृद्धि पर बाजी मारी और इसके साथ एक बार से अधिक बोए गए क्षेत्र में भी प्रदेश की 38.2 प्रतिशत वृद्धि को 104.9 प्रतिशत वृद्धि के साथ अधिक सफलता प्राप्त की। बीकानेर में हरे चारे का उत्पादन परदेश की तुलना में अधिक था।

कृषि क्षेत्र और उत्पादन

कृषि क्षेत्र और उत्पादन की दृष्टि से देखें तो पता चलता है कि 1999–00 से 2008–09 के बीच अनाज फसलों का क्षेत्रफल बीकानेर में 2.0 लाख हैक्टेयर से 57.7 प्रतिशत

बढ़कर 3.20 लाख हैक्टेयर हुआ जबकि प्रदेश में अनाज कृषि क्षेत्र 84.8 लाख हैक्टेयर से सिर्फ 12.8 प्रतिशत बढकर 95.7 लाख हैक्टयेर हुआ (तालिका 7)। अनाज कृषि उत्पादन में 1.0 लाख टन से दुगना से बढ़कर 3.0 लाख टन हो गया जबकि प्रदेश में 97.7 लाख टन से 51.8 प्रतिशत बढ़कर 148.7 लाख टन हुआ। कृषि क्षेत्र और उत्पादन में बढ़ोतरी में, बाजरा और गेहूं का योगदान रहा। बीकानेर में बाजरा का क्षेत्र और उत्पादन बढ़ा पर गेहूं का क्षेत्र घटने के उपरांत भी पैदावार बढ़ी। मक्की का योगदान बीकानेर में बहुत कम पर प्रदेश में योगदान तीसरे नंबर पर था जो 9.67 लाख टन से 89 प्रतिशत बढ़कर 18.3 लाख टन हो गया जबकि इसके क्षेत्र में सिर्फ 12.8 प्रतिशत की वृद्धि हुई। ज्वार और जौ के कृषि क्षेत्र में बीकानेर और प्रदेश में विस्तार के साथ उत्पादन में भी वृद्धि हुई। बीकानेर में धान का क्षेत्र कम था पर प्रदेश में इसका क्षेत्र 33 प्रतिशत घटा, पर उत्पादन 8.5 गुना बढ़ा। छोटे बाजरे का बीकानेर में उत्पादन नहीं था पर प्रदेश में इसके थोड़े से क्षेत्र तथा उत्पादन में वृद्धि पाई गई। चने के बारे में बीकानेर का बहुत बड़ा नाम है। इसका क्षेत्र 119 प्रतिशत बढ़ने से, उत्पादन बढ़कर दुगना (2.06) हो गया। बीकानेर में अरहर और दूसरी रबी दालों का क्षेत्र और उत्पादन बहुत ही कम रहा जबकि प्रदेश में अरहर 25 प्रतिशत और उत्पादन 5 प्रतिशत घटा और दूसरी रबी दालों का क्षेत्र 52.3 प्रतिशत घटने के साथ उत्पादन भी 65.5 प्रतिशत तक घट गया। खरीफ की दालों ने बीकानेर और प्रदेश में क्षेत्र तथा उत्पादन में वृद्धि दिखाई। बीकानेर ने 70.3 प्रतिशत क्षेत्र में बढ़ोतरी के साथ 7.3 गुना उत्पादन में भी वृद्धि दिखाई जबकि प्रदेश में 66. 7 प्रतिशत क्षेत्र की बढ़ोतरी के साथ 5.8 गुना उत्पादन वृद्धि हुई। चने, अरहर, दूसरी रबी तथा खरीफ की फसलों और उत्पादन में बीकानेर ने बाजी मारी। बीकानेर ने अपने 86. 2 प्रतिशत क्षेत्र और 2.70 गुना उत्पादन के साथ राजस्थान के 48.1 प्रतिशत क्षेत्र तथा 1.05 गुना वृद्धि के ऊपर विजय प्राप्त की। तेलबीज क्षेत्र और उत्पादन में बीकानेर ने प्रदेश की अपेक्षा बेहतर प्रदर्शन किया। बीकानेर में तेलबीज का क्षेत्र 72.5 बढ़ने के साथ उत्पादन भी 131.3 प्रतिशत बढ़ा जबकि प्रदेश में इसका क्षेत्र और 28.3 प्रतिशत और उत्पादन 52.7 प्रतिशत ही बढ़ा। बीकानेर में सबसे अधिक बढ़ोतरी मूंगफली के कारण हुई। बीकनेर में मूंगफली का क्षेत्र 2.49 गुना और उत्पादन 2.65 गुना बढ़ा जबकि प्रदेश में इसका क्षेत्र 18.0 प्रतिशत तथा उत्पादन 103.7 प्रतिशत ही बढ़ा। सरसों के मामले में बीकानेर प्रदेश से पिछड़ा, सरसों का क्षेत्र 21.5 और उत्पादन सिर्फ 7.9 प्रतिशत ही बढ़ा। प्रदेश ने यहाँ 9.7 प्रतिशत क्षेत्र में वृद्धि के साथ 40.9 प्रतिशत की उत्पादन में वृद्धि दिखाई। बीकानेर में अलसी का क्षेत्र और उत्पादन कम था प्रदेश में अलसी के क्षेत्र और उत्पादन में 68.7 प्रतिशत और 31.5 प्रतिशत क्रमशः की गिरावट दर्ज की गयी। गन्ना क्षेत्र और उत्पादन बीकानेर और प्रदेश में घटा। बीकानेर में गन्ना क्षेत्र और उत्पादन 92.3 और 89.2 प्रतिशत क्रमशः घटे जबकि प्रदेश में इसका क्षेत्र 66.1 प्रतिशत और उत्पादन 50.7 प्रतिशत तक घटे। बीकानेर में सब्जी और फल का कुल क्षेत्र 156.2 प्रतिशत और उत्पादन 71.4 प्रतिशत बढ़ा और प्रदेश में क्षेत्र 43.4 प्रतिशत और उत्पादन 109.0 प्रतिशत बढ़ा। बीकानेर ने कुल खाद्य अनाज क्षेत्र उत्पादन में प्रदेश की तुलना में अधिक प्रगति दिखाई। बीकानेर में कुल खाद्य फसल क्षेत्र में 73.2 प्रतिशत की बढ़ोतरी के साथ 226.1 प्रतिशत उत्पादन बढ़ा जबकि प्रदेश में कुल खाद्य फसल का क्षेत्र मात्र 20.8 प्रतिशत ही बढ़ा और उत्पादन में 56.2 प्रतिशत की वृद्धि हुई।

सारांश

पिछले दशक में, बीकानेर और राजस्थान की जनसँख्या में 41.42 और 21.24 प्रतिशत की वृद्धि हुई, जिसकी तुलना

तालिका–7. बीकानेर और राजस्थान प्रदेश में 1999–2000 से 2008–09 के बीच कृषि क्षेत्र और उत्पादन की गतिशीलता

फसल	बीकानेर						राजस्थान					
	क्षेत्रफल हैक्टेयर			उत्पादन			क्षेत्रफल हैक्टेयर			उत्पादन		
	1990–00	2008–09	प्रतिशत बदलाव	1990–00	2008–09	प्रतिशत बदलाव	1990–00	2008–09	प्रतिशत बदलाव	1990–00	2008–09	प्रतिशत बदलाव
बाजरा	**131853**	**256896**	**94.84**	**.**	**155778**		**3945217**	**5206162**	**31.96**	**1300764**	**4293938**	**230.11**
ज्वार	513	1640	219.69	160	947	491.88	555954	576744	3.74	173226	333003	92.24
मक्का	3	7	133.33	3	12	300.00	933578	1053878	12.89	968657	1831110	89.04
गेहूं	70628	58932	-16.56	99701	141123	41.55	2650187	2294858	-13.41	6731932	7287074	8.25
जौ	360	3143	773.06	727	5991	724.07	180861	286950	58.66	365249	878382	140.49
चावल	32	179	459.38	40	323	707.50	200210	133414	-33.36	25258	241082	854.48
छोटा धान	0	0		0	0		14132	15844	12.11	826	3005	263.80
योग	203389	320797	57.73	100631	304174	202.27	8480139	9567854	12.83	9793252	14867594	51.81
चना	78371	171781	119.19	48738	149390	206.52	975347	1259428	29.13	677876	981138	44.74
अन्य रबी दालें	5	14	180.0	2	14	600.00	59974	28617	-52.28	81359	28022	-65.56
तुर/अरहर	0	0	0	0	2		25783	19343	-24.98	15701	14482	-5.22
अन्य खरीफ दालें	162903	277411	70.29	6328	52404	728.13	1417759	2363860	66.73	117673	802218	581.73
योग	241279	449206	86.18	55068	203610	269.74	2478863	3671248	48.10	892609	1826257	104.60
तिल	11132	4095	-63.21	0	82		212356	521210	145.44	15650	152461	874.19
राई/सरसों	34730	42257	21.67	32577	35144	7.88	2495054	2737998	9.74	2459380	3465930	40.93
अलसी	5	26	420.00	3	26	766.67	8057	2526	-68.65	5226	3582	-31.46
मूंगफली	18083	63143	249.18	30179	110337	265.61	274691	324209	18.03	265237	540300	103.70
कुल तेल बीज	64741	111659	72.47	63213	146184	131.26	3635354	4664301	28.30	3405798	5200635	52.70
कुल खाद्य फसलें	444668	770003	73.16	155699	507784	226.13	10959002	13239102	20.81	10685861	16693851	56.22
गन्ना	42	3	-92.86	1715	178	-89.62	19270	6526	-66.13	786833	387814	-50.71
कुल फल एवं सब्जी	153	392	156.21	7	12	71.43	99148	142150	43.37	222462	464881	108.97
कपास (लिंट)	35878	794	-97.79	7774	272	-96.50	583176	302687	-48.10	167319	123424	-26.23
सूखा चारा				299750	1345334	348.82				13977328	29220327	109.06
चापड़, दाल चूनी, तेल खल				64892	116438	79.43				3400386	4364046	28.34

स्रोत : सांख्यिकी और आर्थिक विभाग, राजस्थान सरकार

में सिंचाई का क्षेत्र 40.93 और 11.28 प्रतिशत बढ़ा। बीकानेर में दुग्ध, कुल अनाज, दालों, तेल उत्पाद, कुल खाद्यान फल सब्जी –10.75, 202.27, 269.74, 131.26, 71.43, 226.13 प्रतिशत क्रमशः और राजस्थान में 30.72, 51.81, 104.60, 52.70, 108.97, 56.22 प्रतिशत क्रमशः बढ़े, जिनसे बढ़ती जनसँख्या को आपूर्ति हुई। पशुधन उत्पादन और कृषि उत्पाद बढ़ने में पानी की कमी बहुत बड़ा कारण है जो इस बात को बार–बार इंगित करता है कि हमें पर्वतों के जल की नदियों को आपस में नहरों द्वारा जोड़ना और वर्षा के जल को सरंक्षण करने की अति आवश्यकता है ताकि आने वाले समय में सिंचाई से कृषि उत्पादन को बढ़ाया जा सके और प्राकृतिक आपदाओं जैसे अकाल और बाढ़ से प्रति वर्ष होने वाली अरबों रूपए की सम्पत्ति एवं जनहानि से बचा जा सके। इसके अलावा भूमि की उर्वरा बढ़ाने के लिए रसायनिक खादों और कीटनाशकों की बजाय, उन्नत बीज, पशु की नस्लों, जैविक खाद और कीटनाशक का उपयोग करना होगा ताकि खाद्यानों, दूध, मांस उत्पादों में रसायनिक खादों और कीटनाशकों के अवशेषों से होने वाली कैंसर जैसी गंभीर बीमारियों से बचा जा सके। कृषि फसल अवशेषों को यूरिया उपचार और उनके सम्पूर्ण आहार के ब्लाक और गट्टे बनाकर पशुधन को सन्तुलित आहार देने से दुग्ध उत्पादन को बढ़ाया जा सकता है।

साभार– श्री रौनक, छायाकार, बीकानेर

- 'पाकट' उस ऊँट को कहते हैं जो काफी बूढ़ा हो जाता है। उस ऊँट के सम्बन्ध में जब लोग बात करते हैं तो कहा जाता है कि फलाँ ऊँट 'पाकट' है अर्थात् उम्र से परिपक्व है।

–मरु संस्कृति कोश से साभार

दोस्तों तुम कभी हिन्दी के मुखालिफ न बनो।
बाद मरने के खुलेगा कि यह थी काम की बात।।

–अकबर इलाहाबादी

नवजात टोरडियों के सर्वांगीण विकास हेतु खीस हैं जरूरी

काशीनाथ, पशु चिकित्सा अधिकारी, **यू.के.बिस्सा,** वरिष्ठ वैज्ञानिक, **राधाकृष्ण वर्मा,**
वरिष्ठ तकनीकी सहायक एवं **एन.वी. पाटिल,** निदेशक
राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र, बीकानेर

सफल डेयरी कार्यक्रम के लिए बछड़ों अथवा टोरडियों का स्वास्थ्य अच्छा होना चाहिए एवं उनकी मृत्यु दर न्यूनत्तम होनी चाहिए। नवजात टोरडियों का स्वास्थ्य खींस (कोलस्ट्रम) को उचित समयान्तराल से पिलाने पर आधारित रहता है। नवजात टोरडियों में प्रतिरोधक क्षमता का अभाव होता है और 'खीस' पीने से ही प्रतिरोधक क्षमता माता से बच्चे में पहुंचती है। यदि समय पर खीस बच्चे को नही पिलाया गया तो उनमें प्रतिरोधक क्षमता का अभाव हो जाता है और उनमें दस्त लगना, श्वसन तन्त्र की बीमारियाँ और अन्य बीमारियों के होने का खतरा बढ़ जाता है जिससे कि मृत्यु दर में बढ़ोतरी की सम्भावना बढ़ जाती है। अतः प्रसव उपरान्त समयान्तराल से बच्चे को खीस पिलाकर उनकी प्रतिरोधक क्षमता बढ़ायी जा सकती है जिससे इनका स्वास्थ्य तो अच्छा रहता ही है साथ ही मृत्यु की सम्भावना भी कम हो जाती है।

खीस के गुणधर्म

खीस में उच्च ऊर्जा प्रोटीन, विटामिन (विशेषकर विटामिन 'ए', 'डी', 'ई' एवं बी 12) एवं खनिज लवण की प्रचुरता होती है।

तालिका–1. खीस का दूध से तुलनात्मक अध्ययन

क्र.सं.	खीस–प्रथम दिन	खीस–तीसरे दिन	दूध
कुल ठोस %	21	13	12.9
वसा %	6.3	4.3	4.0
कुल प्रोटीन %	11.4	4.1	4.0
लैक्टोज %	3.3	4.7	5.0
कुल खनिज %	1.03	0.81	0.74
इम्युनोग्लोब्युलिन %	5.1	1.0	0.09
विटामिन ए,यूजी/100 मि.ली.	240	74	34
विटामिन ई, यूजी/ग्रा. वसा	80	31	15
विटामिन बी 12 यूजी/100 मि.ली.	4.9	2.4	0.6

खीस में पाये जाने वाले प्रोटीन एवं पेप्टाइड की जैविक क्रिया बहुत अधिक होती है। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि खीस में इम्यूनोग्लोबिन्स की मात्रा ज्यादा होती है जो कि बछड़ों में पेसिव प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाती है जिसके कारण बछड़ा बहुत–सी बीमारियों से लड़ने में समर्थ हो जाता है। प्रसव उपरान्त सबसे पहले दूध (खीस) में इम्यूनोग्लोबिन की मात्रा सबसे ज्यादा होती है और दूसरी बार निकाले गये खीस में इसकी मात्रा घटकर 50 से 70 प्रतिशत रह जाती है। तीसरी बार निकाले गये खीस में यह मात्रा घटकर 30 से 50 प्रतिशत तक ही रह जाती है और चौथी बार निकाले गये खीस में इसकी मात्रा न के बराबर रह जाती है। अतः अधिकतम पेसिव प्रतिरोधक क्षमता के स्थानान्तरण को माता से बच्चे में सुनिश्चित करने के लिए पैदा होने के 4 से 6 घण्टे के अन्दर प्रथम खीस पिलाना चाहिए और 12 से 15 घण्टे में दूसरी खीस पिलानी चाहिए।

इम्यूग्लोब्युलिन का अवशोषण अति विशिष्ट कोशिकाओं के द्वारा पिनो साइटोसिस क्रिया द्वारा छोटी आंत के निचले हिस्से में होता है। पैदा होने के 24 घण्टे के बाद ये अतिविशिष्ट कोशिकाएं आधारीय केन्द्रिकाओं में बदल जाती है। इस प्रक्रिया को गट–क्लोजर (आन्त्रीयबन्द) कहते हैं। यह क्रिया पैदा होने के 12 घण्टे के बाद शुरु हो जाती है। यदि गट क्लोजर (आन्त्रीयबन्द) हो गयी तब इम्यूनोग्लोब्युलिन का अवशोषण नही होता है।

उच्च पोषकीय गुणों के अलावा खीस क्षेत्रीय आन्त्र सतह में सुरक्षात्मक क्रिया भी करता है। अध्ययन में यह पता चला है कि जिन बछड़ों को खींस नही पिलाया गया उनकी आन्त्र में ई–कोलाई जीवाणु का अवशोषण आसानी से हो जाता है जो कि तीव्र दस्त एवं अन्य बीमारियों का कारक होता है।

खीस बछड़ों/टोरडियों के लिए खनिज लवणों का भी एक अच्छा स्रोत है। इसमें कैल्शियम, पौटेशियम, मैग्नीशियम, जिंक, सोडियम एवं फॉस्फोरस की अनुकूलतम मात्रा होती है, लेकिन आयरन, कॉपर, मैग्नीज की मात्रा कम होती है। बछड़ों के यकृत में आयरन का भण्डार कम होता है जिसके कारण एनीमिया और वृद्धि दर में कमी की सम्भावना रहती है। अतः यह अध्ययन में पाया गया है कि अधिक वृद्धि दर के लिए उन्हें आयरन की खुराक पिलानी चाहिए। बछड़ों के यकृत में कॉपर एवं मैंग्नीज का भण्डार अनुकूलतम होता है। अतः इन दोनों खनिजों की खुराक देना आवश्यक नहीं है।

अतः प्रसव पश्चात् के शुरुआती दिनों के दौरान खीस पिलाने से टोरडियों की मृत्युदर में कमी की सम्भावना सुनिश्चित होती है। इसका कारण यह है कि खीस में मौजूद इम्यूनोग्लोब्यूलिन का अधिक मात्रा में अवशोषण होता है। 24 घण्टों के दौरान का इम्यूनोग्लोब्यूलिन स्तर टोरडियों की भावी वृद्धि में एवं अच्छे स्वास्थ्य का प्रतीक व मानक होता है। टोरडिए जीवित रहे, इस सन्दर्भ में खीस (कोलस्ट्रम) प्रबंधन मुख्य भूमिका निभाता है।

❀❀❀❀

डेयरी फार्मिंग में कार्बन फुट–प्रिंट नियंत्रण

अश्विनी कुमार रॉय, वरिष्ठ वैज्ञानिक, डेयरी पशु शरीर क्रिया विज्ञान विभाग
राष्ट्रीय डेयरी अनुसंधान संस्थान करनाल (हरियाणा)

संसार भर में कृषि सम्बन्धी गतिविधियों के कारण लगभग 16 प्रतिशत ग्रीन हाउस गैस उत्सर्जन होता है। इसका 10 प्रतिशत उत्सर्जन केवल डेयरी पशुओं के कारण होता है। मानवीय कारणों से होने वाले समस्त मीथेन उत्सर्जन का एक चौथाई भाग पशुओं से होता है जो वैश्विक ताप वृद्धि का एक बड़ा कारक बताया जाता है। अंतर्राष्ट्रीय खाद्य एवं कृषि संगठन के अनुमान के अनुसार यदि रोमन्थी पशुओं की संख्या इसी प्रकार बढ़ती रही तो वर्ष 2030 तक मीथेन का उत्पादन 60 प्रतिशत तक बढ़ जाएगा। वैश्विक मीथेन गैस उत्सर्जन का लगभग एक तिहाई भाग विकासशील देशों के रोमन्थी पशुओं के कारण होता है। इस बढ़ते हुए प्रदूषण के कारण पर्यावरणविद् अक्सर ग्रीन हाउस गैस उत्सर्जन कम करने की बात करते हैं।

ग्रीन हाउस गैसें जैसे कार्बनडाइऑक्साइड, मीथेन, नाइट्रस ऑक्साइड तथा जल वाष्प सौर ऊर्जा को अवशोषित कर लेते हैं तथा वैश्विक तापवृद्धि का कारण बनते हैं। इन गैसों के उत्सर्जन से कार्बन 'फुटप्रिंट' अथवा इसका आकार बढ़ता है जो हमारे पर्यावरण पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है। मीथेन, कार्बनडाइऑक्साइड गैस की तुलना में 21 गुणा अधिक सौर ऊष्मा अवशोषित कर सकती है जबकि नाइट्रस ऑक्साइड 310 गुणा गर्मी अवशोषित कर सकती है। अतः इससे स्पष्ट है कि मीथेन का सूचकांक 21 तथा नाइट्रस ऑक्साइड का वैश्विक ताप वृद्धि सूचकांक 310 है। ऊष्मा अवशोषित करने वाली ये गैसें ग्रीन हाउस की उन कांच की खिड़कियों की तरह हैं जो पृथ्वी को अधिक तापमान से बचाती हैं। इन गैसों का अधिकांश उत्सर्जन खनिज तेलों के जलने से भी होता है। पशुओं के रुमेन से निकलने वाली मीथेन तथा मल–मूत्र से उत्पन्न नाइट्रस ऑक्साइड मुख्यतः डेयरी फार्मों में ग्रीन हाउस गैस उत्सर्जन के लिए उत्तरदायी हैं। एक गाय लगभग 150–400 लीटर तक मीथेन पैदा कर सकती है। इन गैसों के अत्याधिक उत्सर्जन से पृथ्वी पर कार्बन फुटप्रिंट बढ़ने लगता है जिसे डेयरी फार्म में उचित प्रबंधन प्रणाली द्वारा नियंत्रित कर सकते हैं। इसके लिए डेयरी किसानों को सभी क्षेत्रों जैसे चारा एवं दुग्ध उत्पादन में अपनी डेयरी की कार्य कुशलता बढ़ाने की आवश्यकता होगी। मीथेन गैस भी ऊर्जा का ही एक रूप है। इसे गंवाने का सीधा अर्थ है कि उत्पादन में हानि।

यदि आहार पचनीयता एवं ऊर्जा व प्रोटीन में संतुलन बना रहे तो इस गैस की क्षति को काफी कम किया जा सकता है। पशुओं को बेहतर गुणवत्ता का घास खिलाने से मीथेन की पैदावार तो अधिक होती है परन्तु प्रति लीटर दुग्ध उत्पादन हेतु इस गैस का उत्सर्जन कम हो जाता है। यदि पोषण में प्रोटीन की मात्रा कुछ कम व कार्बोहाइड्रेट अधिक दिया जाए तो रुमेन में मीथेन पैदा करने वाले बैक्टीरिया कम पनपते हैं तथा दूध की पैदावार भी बढ़ जाती है।

खेतों में नाइट्रोजन का मुख्य स्रोत पशुओं का मल–मूत्र, रासायनिक खाद एवं गले–सड़े वनस्पति के अवशेष हैं, जिन्हें फलीदार पौधों की जड़ों में पाए जाने वाले नाइट्रोजनीकरण बैक्टीरिया नाइट्रेट में बदल देते हैं ताकि

पौधों को नाइट्रोजन की पर्याप्त मात्रा मिलती रहे। यदि भूमिगत नाइट्रोजन का नाइट्रेट के रूप में स्थिरीकरण न हो तो यह नाइट्रस ऑक्साइड व नाइट्रोजन बन कर वायुमंडल में चली जाती है तथा वैश्विक ताप–वृद्धि का कारण बनती है। डेयरी फार्मों में नाइट्रस ऑक्साइड का मुख्य स्रोत पशुओं का मलमूत्र है,परन्तु रासायनिक खाद व फलीदार फसलों से भी इसका अधिक उत्सर्जन होता है। इससे स्पष्ट है कि हमें भूमिगत नाइट्रोजन को अनावश्यक बढ़ने से रोकना होगा। मिट्टी में नाइट्रोजन–युक्त खाद मिलाने से पहले यह अवश्य सोचें कि खाद का मूल्य कितना है तथा इससे पैदा होने वाली फसल अपना खर्च निकाल कर किसान को उचित लाभ दे सकती है अथवा नहीं। नाइट्रोजन खाद मिट्टी में तभी मिलाएं जब उसमें कुछ बोया गया है तथा उग भी रहा है ताकि पौधे इस नाइट्रोजन को उत्पादकता में परिवर्तित कर सकें।

पशुओं को गीली मिट्टी में अधिक समय तक न रखें क्योंकि ऐसा करने से इसमें पशुओं का मलमूत्र अधिक मात्रा में जमा हो जाता है। कीचड़ में ऑक्सीजन की कमी के कारण अधिक मात्रा में नाइट्रस ऑक्साइड बनती है तथा यह गैस वायुमंडल में जाकर तापवृद्धि का कारण बनती है। खेतों में यथा–सम्भव नाइट्रोजन युक्त खाद का उचित उपयोग करना चाहिए ताकि इसकी अनावश्यक बर्बादी को रोका जा सके। गर्मियों के मौसम में अगर खेतों में पानी भरा हो तो इससे भी नाइट्रोजन की क्षति अधिक होती है। इसी प्रकार वर्षा से पूर्व भी नाइट्रोजन–युक्त खाद के प्रयोग से बचना चाहिए। यह भी सुनिश्चित करना चाहिए कि खाद नाइट्रेट के रूप में न हो बल्कि यूरिया अथवा डाइ–अमोनियम फास्फेट के रूप में होनी चाहिए ताकि नाइट्रोजन की क्षति को यथा सम्भव नियंत्रित किया जा सके।

हमारे देश में दूध न देने के कारण आवारा पशुओं की संख्या बहुत अधिक हैं तथा ये पशु चारे के सीमित संसाधनों पर ही निर्भर होते हैं। यदि चारे को केवल दुग्ध उत्पादन करने वाले पशुओं को खिलाया जाए तो प्रति पशु पैदावार बढ़ेगी तथा चारे के कारण बनने वाली ग्रीन हाउस गैसों में भी कमी आएगी। ये आवारा पशु कृषि भूमि पर भी अनावश्यक दबाव बनाते हैं जिससे खेती की पैदावार पर भी बुरा प्रभाव पड़ता है। यदि कृषि एवं डेयरी का व्यवसाय संगठित क्षेत्र में हो तो संसाधनों का युक्ति–संगत उपयोग किया जा सकता है। ऐसा करने से बिजली व पानी की जो बचत होगी, उससे हम न केवल अतिरिक्त घरों में रोशनी कर पाएंगे बल्कि दूर–दराज स्थित घरों में पीने का पानी भी उपलब्ध करवा सकते हैं। डेयरी पशु पालन के क्षेत्र में उन्नत प्रौद्योगिकी अपना कर कार्बन फुट–प्रिंट को काफी हद तक नियंत्रित किया जा सकता है।

काश! ऐसा होता कि बायो–तकनीकी द्वारा विकसित पशु हमारे पर्यावरण को प्रदूषित होने से बचा पाएं अथवा हम ऐसी फसलें उगाने लगें जिनसे इन गैसों का उत्सर्जन न्यूनतम हो। यदि प्रति पशु दूध की पैदावार बढ़ाई जाए तो इस उत्सर्जन को सीमित अवश्य किया जा सकता है। पशुओं से होने वाले गैस उत्सर्जन के अतिरिक्त गोबर खाद से भी नाइट्रोजन व कार्बनडाइऑक्साइड गैसों का उत्सर्जन होता है। जैसे दूध की पैदावार बढ़ रही है वैसे ही इसकी माँग भी बढ़ती जा रही है। प्रति पशु दूध की पैदावार बढ़ाने के लिए हमें कम संख्या में पशुओं की आवश्यकता होगी तथा इनकी चारा आवश्यकता भी कम होगी। हालांकि वर्तमान में ग्रीन हाउस गैसों का उत्सर्जन कम करने हेतु कोई कानून हमारे देश में लागू नहीं हैं फिर भी भविष्य में ऐसी सोच अवश्य विकसित हो सकती है। कई देशों में उन्नत

डेयरी प्रबंधन प्रणाली अपना कर कार्बन फुटप्रिंट घटाने पर उचित प्रोत्साहन राशि भी प्रदान की जाती है।

आजकल कुछ ऐसे पदार्थों पर भी अनुसंधान हो रहा है, जिन्हें भविष्य में पशुओं की खुराक में मिला कर देने से ग्रीन हाउस गैसों का उत्सर्जन कम किया जा सकेगा। मोनेंसिन तथा वर्जीनियामाइसिन कुछ ऐसे एंटी–बायोटिक हैं जिन्हें पशुओं की खुराक में मिलाकर देने से मीथेन उत्पन्न करने वाले बैक्टीरिया कम होते हैं। हालांकि कुछ समय बाद इन बैक्टीरिया की संख्या फिर से बढ़ने लगती है। अतः इस दिशा में अभी बहुत कुछ किया जाना बाकी है। यदि पशुओं के आहार की पाचकता बेहतर हो तो मीथेन उत्सर्जन कम होता है। पशुओं को विभिन्न प्रकार के आहार एवं संपूरक खिलाकर अध्ययन करना होगा कि मीथेनोजन द्वारा मीथेन के उत्पादन को किस प्रकार नियंत्रित किया जा सकता है अथवा इन्हें प्रभावहीन करने के कौन–कौन से तरीके दीर्घावधि में लाभकारी हो सकते हैं। पशुओं में कम रेशा–युक्त आहार की तुलना में अधिक मात्रा में रेशा–युक्त आहार देरी से पचता है तथा अधिक मीथेन गैस पैदा करने में सक्षम होता है। मीथेन गैस उत्सर्जन कम करने के किए यह आवश्यक है कि चारा रुमेन से निकल कर यथाशीघ्र अमाशय तथा छोटी आंत की ओर बढ़ जाएं। प्रजनन द्वारा ऐसे पशु विकसित किए जा सकते हैं जो अधिक दूध उत्पादन कर सकें ताकि प्रति लीटर दूध की तुलना में कम मीथेन का उत्सर्जन हो। डेयरी फार्म में छप्पर एवं छाया हेतु हरे–भरे वृक्ष भी लगाने चाहिए जो ग्रीन हाउस गैसों को अवशोषित करके हमें बेहतर पर्यावरण प्रदान करते हैं।

बोलियाँ लहरों की तरह है। भाषा के साथ उनका शान्तिपूर्ण सह अस्तित्व बना रहता है।

–डॉ.राम विलास शर्मा

लिफोलाइजेशन विधि द्वारा दूध पाउडर का उत्पादन

राकेश कुमार पूनियाँ, तकनीकी सहायक, **राघवेन्द्र सिंह,** प्रधान वैज्ञानिक,
देवेन्द्र कुमार, वैज्ञानिक एवं **जितेन्द्र कुमार,** वरिष्ठ तकनीकी सहायक
राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र, बीकानेर

लिफोलाइजेशन एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें खाद्य पदार्थ या अन्य प्रयोग में लाई गई वस्तु से पानी का निष्कर्षण किया जाता है। यह विधि भौतिकी के एक साधारण सिद्धांत जिसे उर्ध्वपातन कहा जाता है, पर आधारित है। किसी पदार्थ का ठोस अवस्था से बिना द्रव अवस्था में बदले सीधे गैस अवस्था में परिवर्तन उर्ध्वपातन कहलाता है। इस विधि में प्रयुक्त उपकरण को फ्रीज ड्राइंग मशीन कहते हैं जिनकी सरंचना निम्नलिखित प्रकार से होती है :–

उपकरणीय संरचना : फ्रीज ड्राइंग मशीन प्रमुख रुप से तीन भागों में बंटी होती है जिसमें से पहला एक बड़ा सिलेण्डरनुमा वायु रोधी कक्ष होता है जिसमें जमे हुए पदार्थ को थामे रखने के लिए उचित आकार की मजबूत प्लेटें होती है। वायुरोधी कक्ष इतना मजबूत होता है कि यह उर्ध्वपातन प्रक्रिया के दौरान उत्पन हुए निर्वात के दबाव को सहन कर सकें। उपकरण का दूसरा प्रमुख भाग निर्वात पैदा करने वाला पम्प होता है जो कि मशीन द्वारा वायुरोधी कक्ष से जुड़ा रहता है जो उर्ध्वपातन प्रक्रिया के दौरान निर्वात उत्पन्न करता है। तीसरा भाग संघनित्र होता है जो कि निर्वात कक्ष में विलायक से बनी वाष्प को वापस ठोस अवस्था में परिवर्तित कर लिफोलाइजेशन प्रक्रिया को पूर्ण करता है। फ्रीज ड्राइंग के मुख्यतः 5 चरण होते हैं जो निम्नानुसार है :–

1. पूर्व उपचारित करना
2. जमाना
3. सुखाना (उर्ध्वपातन)
4. संघनन
5. भण्डारण

(1) पूर्व उपचार : इस चरण में जिस पदार्थ को लिफोलाइज करना है उसको सान्द्रित, संगठन में परिवर्तन, उच्च उष्मा दाब को कम कर व सतह क्षेत्र को बढ़ा कर उपचारित कर सकते हैं। हालांकि ये सभी उपचार लिफोलाइज करने वाले पदार्थ पर भी निर्भर करते हैं। कई पदार्थों में इन सभी उपचारों की आवश्यकता होती है जबकि कई में इनमें से कुछ पूर्व उपचारों की जरुरत होती है। दूध को लिफोलाइज कर पाउडर का निर्माण करने के लिए उसे अच्छी तरह से छानकर, उसकी क्रीम निकालकर उसका सतही क्षेत्र बढ़ाने के लिए उचित प्रकार की प्लेट में उड़ेलते हैं।

(2) जमाना : पूर्व उपचारित करने के तुरन्त बाद लिफोलाइज्ड करने वाले पदार्थ को उसके उपयुक्त तापमान पर शीतलक में जमा देते हैं जिससे कि उसमें मौजूद पानी बर्फ में रुपान्तरित हो जाए व लिफोलाइजेशन प्रक्रिया में उर्ध्वपातन से उससे पानी का निष्कर्षण किया जा सकें। दूध को जमाने के लिए उसे उचित आकार की प्लेट में डालकर –20

डिग्री सेन्टीग्रेड पर जमाते हैं जिससे पानी की बर्फ बनने के साथ–साथ दूध में मौजूद जैविक गुण भी बने रह सकें।

(3) **सुखाना (ड्राइंग) :** फ्रीज ड्राइंग विधि में काम लेने वाले जमे हुए पदार्थ को सुखाने के लिए निर्वात कक्ष में रखते हैं जहां निर्वात पम्प द्वारा उत्पन्न हुए निर्वात में उर्ध्वातन द्वारा जमें हुए पानी को सीधे गैस में बदल दिया जाता है। ड्राइंग (सुखाना) प्रक्रिया को भी दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। प्राथमिक व द्वितीयक ड्राइंग। प्राथमिक ड्राइंग में निर्वात कक्ष के नीचे लगे संघनित्र का तापमान –50 डिग्री सेन्टीग्रेड रहता है व इस ड्राइंग प्रक्रिया में प्रयुक्त पदार्थ में से 95 प्रतिशत पानी का निष्कर्षण कर लिया जाता है जबकि द्वितीयक ड्राइंग में संघनित्र का तापमान शून्य डिग्री सेन्टीग्रेड तक बढ़ा देते हैं जिससे पदार्थ में मौजूद और अधिक पानी का निष्कर्षण हो जाता है।

(4) **संघनन :** ड्राइंग प्रक्रिया के दौरान उर्ध्वपातित हुए पानी की वाष्प को निर्वात कक्ष के नीचे लगे संघनित्र में मौजूद प्लेटों द्वारा संघनित कर ठोस अवस्था में परिवर्तित कर दिया जाता है।

संघनित्र का तापमान– यह मुख्यतया 50 डिग्री सेन्टीग्रेड होता है। हालांकि यह प्रक्रिया में ड्राइंग होने वाले पदार्थ को तो नहीं जमाती परन्तु बर्फ के उर्ध्वपातित होने से बनी वाष्प को निर्वात पम्प में जाने से रोककर उसकी क्षमता को बढ़ाने के साथ–साथ उसे क्षतिग्रस्त होने से भी बचाता है।

(5) **भण्डारण :** इस प्रकार सूखे हुए पदार्थ को सफाईपरक तरीके से निर्वात कक्ष से निकालकर नमी से बचाव हेतु उचित मात्रा में संग्रहण कर लिया जाता है।

दुग्ध की फ्रीज ड्राइंग विधि : दूध एक गुणकारी पेय पदार्थ है। जो हमारे पोषण का एक अभिन्न व महत्वपूर्ण हिस्सा है। हालांकि साधारणतया दूध को निकालने के तुरन्त बाद ही काम में लिया जाता है परन्तु यदि इसे तुरन्त काम में नही लिया जाए तो कुछ विधियों द्वारा इसे प्रक्रमणित कर इसके स्वःजीवन को बढ़ाया जा सकता है जिससे इसे लम्बे समय तक काम में लिया जा सके। इनमें से एक विधि फ्रीज ड्राइंग भी है जिसके द्वारा दूध को पाउडर में रुपान्तरित कर उसे लम्बे समय तक उपयोग योग्य बनाया जा सकता है। जमाने के तुरन्त बाद जमे हुए दूध को निर्वात कक्ष में सुखाकर संग्रहित कर लिया जाता है। इस प्रकार दूध के पाउडर को उचित विधि से संग्रहित कर काफी लम्बे समय तक काम में लिया जा सकता है।

लिफोलाइजेशन के लाभ

1. यह प्रक्रिया लिफोलाइज हुए पदार्थ (खाद्य) की गुणवत्ता को बरकरार रखती है क्योंकि उर्ध्वपातन विधि के दौरान उस पदार्थ का तापमान उसके जमाव बिन्दु से नीचे रहता है।
2. यह विधि उन खाद्य पदार्थों की ड्राइंग के लिए उपयोगी है जिनको अगर स्प्रे ड्रायर से सुखाया जाए तो वे उत्पाद आसानी से प्रभावित हो जाते हैं।
3. इस विधि में बने उत्पादों को बिना प्रशीतन की सहायता से संग्रहण किया जा सकता है।
4. लिफोलाइजेशन प्रक्रिया पदार्थों के वजन को काफी हद तक कम कर देती है जिससे उसके परिवहन में सुविधा रहती है।
5. लिफोलाइजेशन के बाद बने उत्पादों को आसानी से पुनः जलयोजित किया जा सकता है।

ऊँटों में वरुथी संक्रमण एवं प्रबंधन

अजय कुमार, स्नातकोत्तर छात्र एवं **वीर सिंह,** विभागाध्यक्ष, कीट विज्ञान
कृषि महाविद्यालय, स्वामी केशवानंद राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय, बीकानेर

ऊँट एक बहुउपयोगी पशु है जो मुख्यता मरुस्थलीय क्षेत्रों में खेती–बाड़ी तथा भार ढोने के लिए पाला जाता है। भारत वर्ष में लगभग ऊँटों की संख्या 5 लाख है जिसका गणनानुसार विश्व में नौवा स्थान है। हमारे देश में मुख्यतः राजस्थान में ऊँटों की संख्या बहुतायत में हैं। परजीवियों के संक्रमण से पशु के स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव पड़ता है जिससे उसकी कार्यक्षमता एवं दुग्ध उत्पादन क्षमता पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।

परजीवी अपने मेजबान (होस्ट) से अपना सम्पूर्ण पोषण प्राप्त करते हैं। परजीवियों को उनकी आदतों के आधार पर दो भागों में बांटा गया है–

1. जो शरीर के ऊपर रहते हैं और अपने यजमान को नुकसान पहुंचाते हैं, इन्हें बाह्य परजीवी कहते हैं जैसे– जुएं, चीचड़ इत्यादि।
2. दूसरे वे शरीर के भीतरी भागों (पेट, आंते, कलेजा व खून) में पहुंचकर नुकसान पहुंचाते हैं जैसे–चपटे कीट, पटाटे, पतड़ियाँ (राउड वार्म) इत्यादि।

शरीर के बाहर रहने वाले परजीवी सभी जानवरों को हानि पहुंचाते हैं परंतु इसके अलावा बहुत से कीटाणुओं (बैक्टीरिया) को एक से दूसरे जानवर में पहुंचाकर खतरनाक रोग भी पैदा करते हैं। जैसे काली मक्खी सर्रा का कारण बन जाती है।

इन्हीं में एक किस्म वरुथी (सारकोपटिस कैमेलाई) की है जो ऊँटों में खुजली (मेन्ज) पैदा करती है।

वरुथी (सारकोप्टिस कैमेलाई)

इसके संक्रमण को खुजली पॉव (राजस्थानी), लागोल (फ्रेंच), दुजार (अराबीक), मार (सिन्धी), मेन्ज (अंग्रेजी) आदि विभिन्न नामों से जाना जाता है।

इस ऐराक्निड का संक्रमण ऊँटों में अक्सर होता है, खासतौर पर उनमें जो टोलों (झुण्डों) में रखे जाते हैं क्योंकि उनके शरीर की साफ–सफाई नहीं होती, पसीना, गर्द वगैराह इकट्ठा होकर बालों को जमा देते हैं, उसके नीचे में ऐराक्निड पहुंचकर चमड़ी में घुस जाते हैं और मादा वहीं अण्डे देने लग जाती है। ये ज्यादात्तर पहले काछों (ग्रोइंस) में बीमारी शुरू करती हैं, बाद में पेट, उदर, पिछली जांघों तथा पूरे शरीर पर फैल जाती हैं। मादा द्वारा दिए हुए अण्डे हेच होने के बाद अपरिपक्व कीट बनकर चमड़ी से पोषण प्राप्त करने लगते हैं। उससे चमड़ी सख्त हो जाती है, बाल उड़ जाते हैं और जानवर शरीर खुजाता रहता है। जब यह शरीर पर ज्यादा फैल जाती है तो ऊँट की चमड़ी सख्त व काली–सी हो जाती है।

ये परजीवी बढ़ते रहते हैं और रोगी ऊँट के साथ में रहने वाले ऊँटों के शरीर में भी फैल जाते हैं और रोग पैदा करते हैं। कमजोर व दुबले ऊँट इस रोग के जल्दी शिकार हो जाते हैं। प्रायः ऐसा देखा गया है कि जिन ऊँटों के खुजली थीं, उनमें 80 प्रतिशत में सर्रा भी था।

वरुथी (सारकोप्टिस कैमेलाई) का जीवन चक्र

मादा वरुथी 20 से 25 अण्डे अपने जीवन काल में देती है। यह अण्डाकार और पारदर्शी होते हैं। ये अण्डे पशु

के शरीर पर 1 से 7 दिन में परिपक्व हो जाते हैं जो मौसम पर निर्भर करता है। अण्डे हेच होने के 7 दिन में पूर्ण रूप से वरूथी बनकर ऊँटों के शरीर से अपना पोषण लेना शुरू कर देते हैं। ये वरुथियाँ अण्डा, इनके तुण्ड (रोष्ट्रम) मजबूत व जबड़े छोटे व पांव मोटे होते हैं। इनका चुषक (सकर) कुछ लम्बा होता है। चमड़ी में प्रवेश करने के 15 से 20 दिन में बीमारी के लक्षण पैदा कर देती हैं।

वरुथी का प्रबंधन

अगर कुछ बातों का विशेष ध्यान रखा जाए तो ऊँटों को इसके संक्रमण से बचाया जा सकता है जैसे– ऊँट के शरीर को साफ रखें, समय–समय पर बालों को काटते रहना चाहिए तथा संक्रमित पशु से दूर रखें।

यदि फिर भी इस परजीवी का प्रकोप हो जाए तो इलाज शुरू करने से पहले ऊँट के बाल काटकर उसे साबुन व पानी से रगड़कर नहलाना चाहिए। जब वह पूर्ण रूप से सूख जाए, तब दवा का छिड़काव करना चाहिए इससे शीघ्र ही बीमारी ठीक हो जाएगी।

(1) गन्धक (सल्फेट) व तेल को 1:4 में मिलाकर संक्रमित ऊँट के शरीर पर मल दें। ध्यान दें गंधक बारीक पीसा होना चाहिए। यदि तारामीरा का तेल उपलब्ध हो तो उसका प्रयोग करें।

(2) सात दिन के समय–अन्तराल पर डाइकोफाल को 1 मिली प्रति 4 लीटर पानी या .25 प्रतिशत घोल से शरीर को नहला सकते हैं।

(3) मेलाथियान 50 ई.सी.की दवा 1 मिली.प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर ऊँट के शरीर पर छिड़के/आँख और मुंह को बचाना चाहिए। ऊँट के रहने की जगह तथा उसके आसन वगैराह पर भी इसका छिड़काव करें। अक्सर एक स्प्रे ही काफी होता है परंतु जरूरत समझें तो 7 या 10 दिन बाद एक और छिड़काव करें।

इस प्रकार वरूथी के संक्रमण से ऊँटों को सुरक्षित रखा जा सकता है।

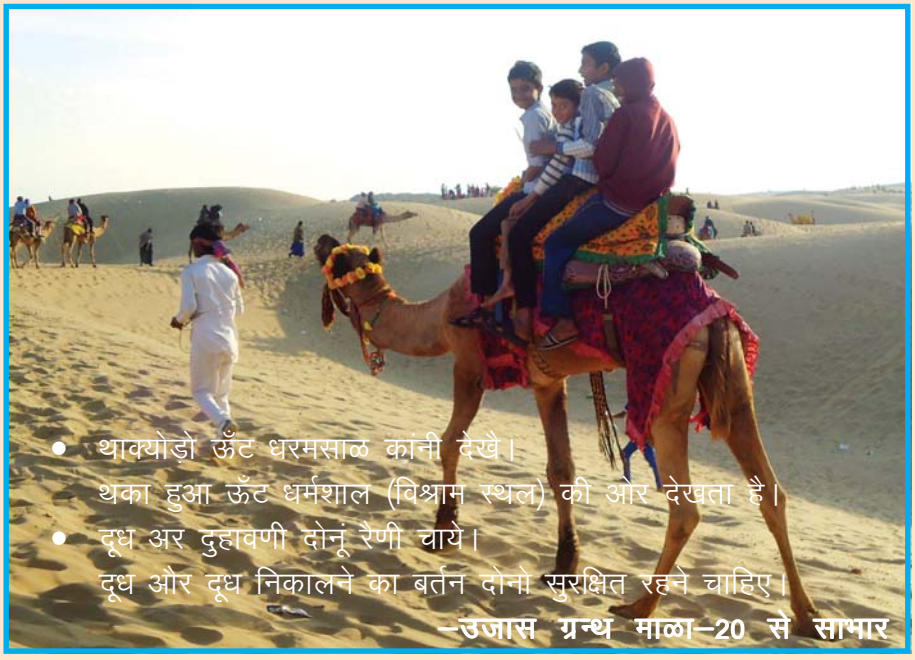

–उजास ग्रन्थ माळा–20 से साभार

ऊँट जनसंख्या में कमी : कारण, उपाय एवं संभावनाएँ

बलदेव दास किराडू, वरिष्ठ अनुसंधान अध्येता
राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र, बीकानेर

थार रेगिस्तान की कृषि व ग्रामीण अर्थव्यवस्था का ऊँट एक महत्वपूर्ण घटक है। ग्रामीण परिवेश में कृषि के साथ पशुधन भी जीवनयापन का एक मुख्य आधार रहा है। इनमें गाय, भैंस, बकरी, भेड़ व ऊँट प्रमुख हैं। ऊँट राजस्थान की संस्कृति, साहित्य व जीवन का महत्वपूर्ण अंग रहा है अतः इसकी महत्ता अन्य पशुधन की तुलना में अधिक है। चूंकि ऊँट मरूस्थलीय कांटेदार व शुष्क वनस्पति को उपयोग में लेने, उच्च तापक्रम व पानी की कमी को सहन करने की अद्भुत क्षमता रखता है। राजस्थान के अतिरिक्त हरियाणा, गुजरात, मध्यप्रदेश व पंजाब में उष्ट्रपालन का महत्व है। ऊँटों का उपयोग पुरातन समय से भारवाहन, खेती, आवागमन, दिन–प्रतिदिन के विभिन्न कार्यों जैसे पानी लाना, बजरी, ईटें, मिट्टी ढोना आदि में होता आया है। पूर्व में ऊँट पालकों द्वारा 100–500 के समूह में ऊँट रखे जाते थे वहीं वर्तमान में इन समूहों के स्थान पर प्रत्येक घर में एक या दो ही ऊँट देखने को मिलते हैं। पिछले वर्षों में की गई गणना में ऊँटों की संख्या के आंकडे दर्शाते हैं कि इनकी संख्या में लगातार कमी हो रही है। ऊँट जनसंख्या में विश्व में तीसरे स्थान पर रहने वाला भारत आज नौवें स्थान पर है।

पूरे विश्व में ऊँटों की कुल संख्या 24.73 मिलियन है जबकि भारत में 0.632 मिलियन है। आजादी के समय 1947 में हमारे देश में लगभग 7000 के करीब ट्रेक्टर थे जिनकी संख्या अब लाखों में हैं। ट्रेक्टरों की संख्या में वृद्धि का ऊँटों की जनसंख्या में कमी से सीधा संबंध है।

कारण : ऊँटों की संख्या में निरन्तर कमी के मुख्य कारण निम्नलिखित हैं–

(1) **चरागाहों की कमी :** चरागाह अर्थात् पशुओं के चारण क्षेत्र शनैः–शनैः विलुप्त हो रहे हैं। गांवों के आस–पास की भूमि पहले पशुओं के चारण के लिये रखी जाती थी। लेकिन आजकल यह खाली भूमि गांवों के ही लोगों द्वारा तारबंदी या कांटों वाली बाड़ से अधिग्रहित कर लेने से पशुओं के लिये चारण क्षेत्र समाप्त हो गये हैं।

(2) **मशीनीकरण :** खेती में ऊँट शक्ति के स्थान पर ट्रैक्टरों व अन्य मशीनों के उपयोग होने के कारण भी इसकी संख्या घट रही है। वर्षा ऋतु में किसानों को खेतों की जुताई करनी होती है क्योंकि तुरन्त भूमि में नमी होने पर ही बीजाई संभव है। एक ट्रैक्टर एक–दो दिन में पूरे खेत की बीजाई कर देता है जबकि ऊँट के द्वारा यह कार्य 4–5 दिन में पूर्ण होता है, अतः किसान ऊँट के स्थान पर ट्रैक्टर से जुताई को प्राथमिकता देता है। दूसरा पहलू यह भी है कि किसान को ट्रैक्टर द्वारा भूमि की जुताई करने में इतनी मेहनत भी नहीं करनी पड़ती है।

(3) **प्रजनन की कमी :** उष्ट्र पालकों द्वारा मादा ऊँटनियों को ग्याभिन न कराना भी ऊँट जनसंख्या में कमी का एक प्रमुख कारण है। प्रजनन कराने पर मादा ऊँटनी को छः माह तक देखभाल करनी पड़ती है।

प्रसव के पश्चात ऊँटनी व नवजात को अतिरिक्त खुराक देनी होती है। अतः इन सब को ध्यान में रखते हुए किसान भाइयों ने अपनी मादा ऊँटनियों को ग्याभिन कराना बंद कर दिया है।

(4) **युवाओं की उष्ट्र पालन से विमुखता :** उष्ट्र पालन से जुड़े समाज व ऊँट पालकों का इस व्यवसाय से विमुख होना भी इसका एक कारण है। आज की नई पीढ़ी शहरीकरण व औद्योगीकीकरण के इस दौर में उष्ट्र पालन व्यवसाय से दूर होती जा रही है। शिक्षा के युग में कोई भी शिक्षित नवयुवक हर किसी को पीछे छोड़ने की दौड़ में ऊँट पालन से जुड़ाव खत्म कर रहा है।

(5) **चारे की अनुलब्धता व महंगाई :** मनुष्य द्वारा अंधाधुध कटाई करने से ये क्षेत्र वृक्ष विहीन हो रहे हैं जिससे पशुओं को हरा चारा जंगलों व चरागाहों से प्राप्त नहीं हो रहा है। फलस्वरूप उष्ट्र पालक ऊँटों व अन्य पशुओ को सघन चराई (इन्टेसिव सिस्टम) पर रखने हेतु मजबूर हो गया है। मँहगाई के इस दौर में आम पशु पालक के लिए चारा खरीदकर पशु को खिलाना महंगा साबित हो रहा है। शून्य लागत पर पलने वाला ऊँट, चरागाहों की कमी के कारण सघन चराई पर रखा जाने लगा है जो कि ऊँट पालक के लिए काफी महंगा व परिश्रमी है। अतः प्रतिदिन ऊँट रखरखाव का खर्च उष्ट्र पालक की आय को प्रभावित करता है जिससे किसान ऊँट पालक, ऊँटों को रखने से कतरा रहे हैं।

उपाय एवं संभावनाएँ

(1) **रूढ़िवादिता :** उष्ट्र पालकों के राइका समाज में ऐसी मान्यता है कि ऊँटनी का दूध नहीं बेचना चाहिए। ऐसी मान्यता के कारण ही वे ऊँटनी के दूध को अपने घर के लिए उपयोग में लेते हैं। यद्यपि इस मान्यता से ऊपर उठकर कुछ जागरूक व्यक्तियों व शिक्षितों ने पहल की है और ऊँटनी के दूध से डेयरी व्यवसाय शुरू भी किया। इस प्रकार दूध व विभिन्न मूल्य–संवर्द्धित उत्पादों के विपणन हेतु जागरूकता समाज में लानी होगी तथा उष्ट्र पालकों को इसके लिए प्रेरित करना आवश्यक है। उष्ट्र डेयरी व्यवसाय की समाज में स्वीकार्यता को बढ़ाने के लिए सरकारी व सामाजिक स्तर पर अतिरिक्त प्रयास करने होंगे जिससे उष्ट्र दुग्ध व इससे निर्मित उत्पादों के प्रति व्याप्त भ्रान्तियों को दूरकर इसे एक व्यवसाय के रूप में स्थापित किया जा सके। ऐसे प्रयासों से उष्ट्र पालकों की आजीविका में वृद्धि होगी तथा ऊँट की संख्या बढ़ाने हेतु एक सार्थक पहल होगी। राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र इस दिशा में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन कर रहा है।

(2) **उष्ट्र दूध से तैयार मूल्य : संवर्द्धित उत्पाद–** उष्ट्र दुग्ध उत्पाद जैसे आईसक्रीम, सुगन्धित दूध, पनीर व अन्य उत्पादों के व्यवसायीकरण व विपणन से इसकी लोकप्रियता भी बढ़ेगी साथ ही विपणन से उष्ट्रपालकों को आय के स्त्रोत में भी वृद्धि होगी।

(3) **उष्ट्र ऊर्जा एक वैकल्पिक स्रोत :** पृथ्वी के गर्भ में खनिज ईंधन के विपुल भंडार, मनुष्य के अधिकाधिक दोहन से निरन्तर कम हो रहे हैं। ऐसी स्थिति में पशु ऊर्जा विशेषकर ऊँट ऊर्जा का इस्तेमाल मनुष्य के लिये लाभकारी सिद्ध होगा। खासकर मरूस्थलीय क्षेत्र में ऊर्जा के भंडार के रूप में इससे बेहतर कोई विकल्प नही हो सकता।

(4) ऊँटों के अवैध वध पर रोक : ऊँट के मांस का उपयोग अरब देशों में प्रचलित है। भारत में ऊँट के मांस का प्रयोग नहीं किया जाता है। आजकल प्रतिदिन सैंकड़ों की संख्या में ऊँटों को 'स्लाटर हाउस' में वध के लिए ले जाया जाता है तथा इनके मांस को अरब देशों में निर्यात किया जाता है। इन ऊँटों की अवैध वध पर अंकुश लगाया जाना अति आवश्यक है। इसके लिए सरकार को नीतियाँ बनाने की जरूरत है। इन नीतियों से ऊँटों की अवैध कटाई पर रोक लगाई जा सकेंगी जिससे ऊँटों की घट रही संख्या को रोकने में सहायक सिद्ध होगी।

(5) उष्ट्र एक डेयरी पशु के रूप में : बढ़ती हुई मानव जनसंख्या को देखते हुए भविष्य में ऐसा प्रतीत होता है कि दूध की मांग केवल गाय, भैंस, बकरी जैसे दुधारू पशुओं से पूर्ण होना संभव नहीं है। ऐसी परिस्थिति में उष्ट्र दूध का प्रयोग एक विकल्प के रूप में देखा जा रहा है। यद्यपि आज भी इसके दूध का प्रयोग किया जाता है परन्तु यह केवल उष्ट्र पालक से जुड़े परिवारों तक ही सीमित है। यदि ऊँट को एक डेयरी पशु के रूप में विकसित किया जाये तो यह न केवल अपने अस्तित्व को बचा पाएगा बल्कि आने वाले समय में विश्व में दूध की बढ़ती मांग को पूर्ण करने में भी सहायक होगा।

(6) उन्नत चरागाहों का विकास : घटते चरागाहों को ध्यान में रखते हुए ऐसे आदर्श चरागाह विकसित किये जाए जिसमें ऊँट उपयोग में आने वाली वनस्पतियों यथा– खेजड़ी, बेर और मुराली, अरडू, जाल, नीम, कीकर, फोग, कैर व घासें जैसे सेवण, लाणा, मुरहठ आदि का अधिकाधिक रोपण हो जिससे वर्ष भर कम स्थान पर अधिक चारा इस पशु को उपलब्ध हो सके।

(7) कृषि कार्यों में ऊँट का उपयोग लाभकारी : कृषि कार्यो में ट्रैक्टरों व अन्य मशीनों के स्थान पर ऊँट के उपयोग को बढ़ावा देने के लिये प्रोत्साहित किया जाना आवश्यक है। ट्रैक्टरों व अन्य मशीनों के उपयोग से भूमि में पाये जाने वाले उपयोगी जीव–जन्तु मर जाते हैं। ये जीव फसलों व पौधों के लिये लाभकारी होते हैं। जबकि ऊँटों द्वारा जुताई से ये जीव–जन्तु नष्ट नही होते हैं। इस प्रकार ऊँट का प्रयोग खेती प्रसंस्करणों में पर्यावरण–मित्र के रूप में कार्य करता है। इसके साथ ही इनके प्रयोग से वातावरण में प्रदूषण भी नहीं फैलता है।

(8) ऊँट पालकों को मिले सस्ता व पौष्टिक चारा : चारे की अनुपलब्धता व महंगाई को देखते हुए सम्पूर्ण आकार बट्टिका व फीड ब्लॉक के रूप में ऊँट पालकों को सस्ता व पौष्टिक चारा उपलब्ध कराया जाना श्रेयस्कर होगा। अकाल के समय चारे की कमी के दौरान ऊँट पालकों को सस्ती दर पर ऊँट उपयोग में आने वाले चारे को सरकारी संगठन द्वारा उपलब्ध कराना चाहिए।

(9) उष्ट्र प्रजनन में वैज्ञानिक विधियों का प्रयोग : वैज्ञानिक विधियों जैसे कृत्रिम गर्भाधान परखनली निषेचन भ्रूण प्रत्यारोपण तकनीक से अधिक संख्या में टोरडिए प्राप्त किये जा सकते हैं। एक ऊँटनी दो वर्ष में एक बच्चा पैदा करती है। इस प्रकार एक मादा अपने जीवन काल में औसतन 6–7 संतान उत्पन्न करती है। यदि समय अन्तराल को कम कर दिया जाये तो अधिक संख्या में सन्तान प्राप्त कर संख्या वृद्धि की जा सकती है।

(10) उष्ट्र दूध से विभिन्न रोगों के उपचार : ऊँट के दूध में विभिन्न रोगों से लड़ने की अद्‌भुत क्षमता है। इसमें रोग प्रतिरोधकता के गुण पाये जाते हैं। इन औषधीय गुणों का उपयोग विभिन्न रोगों जैसे तपेदिक, मधुमेह व कैंसर, पेट का अल्सर के उपचार में किया जा सकता है। ऊँटनी का दूध सभी को उपलब्ध हो सके, इस हेतु दूध का चूर्ण तैयार कर रोगियों को उपलब्ध कराया जा सके जिससे ऊँट की उपयोगिता बढ़ेगी जो इसके संरक्षण में वरदान साबित होगा।

राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र इन उपरोक्त वर्णित उपायों व उष्ट्र संरक्षण में अपनी यथासंभव भागीदारी निभा रहा है परंतु इस महत्वपूर्ण पशु के संरक्षण में हम सभी को अपनी भूमिका निभानी होगी जिससे भविष्य में इसके अस्तित्व पर मंडराते संकट के बादलों से निजात मिल सकेगी।

ऊँटों के प्रचलित नाम

जाखोड़ौ, जकसेस, रातळौ, रवण, जमाद, जमीकरवत, वैत, मईयौ, मरूद्विप, बारगीर, मय, बेहटौ, मदधर, भूरौ, विडंगक, माकड़ाझाड़, भूमिगम, पीडाढाळ, धैंधीगर, अणियाळ, रवणक, फीणनांखतौ, करसलौ, अलहैरी, डाचाळ, पटाल, मयंद पाकेट, कंठाळक, ओठारू, पांगळ, कछौ, आंखरातंबर, टोरड़ौ, कंटकअसण, करसौ, घघ, संडौ, करहौ, कुळनारू, सरढौ–सरडौ, हड़बचियौ–हड़बचाळौ, सरसैयौ, गघराव, करेलड़ौ, करह, सरभ, करसलियौ, गय, जूंग, नेहटू, जमाज, कुळनास, गिडंग, तोड़, दुरंतक, भुणकमलौ, बरहास, दरक, वासंत, लम्बोस्ट, सिन्धु, ओठौ, विडंग, कंठाळ, करहलौ, टोड, भूणमत्थौ, सढ़ढौ, दासेरक, सळ, सांढियौ, सुतर, लोहतड़ौ, फफिंडाळौ, हाथीमोलौ, सुपंथ, जोडरौ, नसलम्बड़, मोलघण, भोळि, दुरग, करभ, करवळौ, भूतहन, ढागौ, गडंक, करहास, दोयककुत, मरूप्रिय, महाअंग, सिसुनामी, क्रमेलक, उस्ट्र, प्रचंड वक्रग्रीव, महाग्रीव, जंगळतणौजत्ती, पट्‌टाझर, सींधड़ौ, गिड़कंध, गूंधलौ, कमाल, भड्‌डौ महागात, नेसारू, सुतराकस एवं हटाळ।

–राजस्थानी संस्कृति रा चितराम से साभार

आहार ब्लॉक द्वारा संतुलित पशु पोषण

पंकज लवानिया, विषय विशेषज्ञ, कृषि विज्ञान केन्द्र, सिरोही,
सुरेश जीनगर एवं **अजेश कुमार,** पी.एच.डी.छात्र
राष्ट्रीय डेयरी अनुसंधान संस्थान, करनाल

ग्रामीण अर्थव्यवस्था में पशुपालन का एक विशिष्ट स्थान है। पशु आहार में मुख्य रूप से फसल अवशेषों जैसे गेहूं व धान का भूसा, कड़बी, दलहनी भूसा तथा घास शामिल है। जिसका घनत्व काफी कम (30–105 किलो ग्राम प्रति घन मी.) होता है। इस कारण इन फसल अवशेषों के उपयोग, भंडारण तथा ढुलाई में समस्याएं आती है। इसके अतिरिक्त इन फसलों के अवशेषों की पोषकता भी काफी कम होती है। इनमें प्रोटीन की मात्रा 3–6 प्रतिशत तथा कुल पाचक तत्वों की मात्रा 40–50 प्रतिशत तक होती है। साथ ही इनमें खनिज लवण तथा विटामिन्स की मात्रा भी काफी कम होती है। यह मात्रा पशुओं के भरण पोषण की आवश्यकताओं के लिये भी अपर्याप्त है। फसल अवशेषों की गुणवत्ता में कमी के अतिरिक्त हरे चारे एवं दाने की कमी भी पशुओं को संतुलित आहार देने में एक समस्या है। इन समस्याओं के निवारण के लिये घास, भूसे आदि की गुणवत्ता, दाना मिलाकर–संतुलित करने के उपरान्त चारा व दाना मिश्रण का उच्च घनत्व के ब्लॉक बनाना एक उत्तम उपाय है।

संघनित आहार ब्लॉक

घास, कड़बी तथा भूसा आदि की कुट्टी करने के पश्चात् तथा विभिन्न अनुपात में दलहनी चारे जैसे उड़द, मूंग, चना तथा सुबबूल की पत्ती आदि तथा दाना मिश्रण को मिलाकर उसे संघनीकरण मशीन द्वारा उच्च घनत्व के ब्लॉक के रूप में बना लिया जाता है। एक ब्लॉक का वजन लगभग 3–4 किलोग्राम तक होता है।

संघनीकरण द्वारा चारे के घनत्व में वृद्धि

सामान्यतया चारे का घनत्व 30–105 कि.ग्रा. प्रति घनमीटर के होता है जबकि ब्लॉक बनाने के उपरान्त इसका घनत्व 360–450 कि.ग्रा. प्रति घन मी. तक हो जाता है। संघनीकरण से इसके घनत्व में लगभग 8–12 गुणा तक की वृद्धि देखी गई है।

पशु की आहार ग्राह्यता एवं उत्पादकता पर प्रभाव

ब्लॉक बनाने से पूर्व पशुओं के आहार में कम मात्रा में उपलब्ध तत्वों को मिलाकर आहार को संतुलित करते हैं जिससे पशु आहार की गुणवत्ता बढ़ जाती है और संघनीकरण से घनत्व में काफी वृद्धि हो जाती है, जिसके फलस्वरूप शुष्क पदार्थ ग्राह्यता में वृद्धि हो जाती है। ब्लॉक के रूप में खिलाने से पशु की आहार ग्राहयता अधिक होती है, जबकि बिना ब्लॉक बनाये (मैश के रूप में) समान आहार की ग्राह्यता कम पाई गई। शुष्क पदार्थ ग्राह्यता अधिक होने का सीधा प्रभाव पशु के शरीर वृद्धि के साथ सम्बन्ध होता है तथा दुग्ध उत्पादन में भी वृद्धि देखी गई है।

ब्लॉक बनाने की लागत

ब्लॉक बनाने की लागत उपयोग में लाये गये अवयवों के ऊपर निर्भर करती है। सामान्यतया एक ब्लॉक जिसका वजन लगभग 3 से 3.5 कि.ग्रा. हो तो कीमत रूपये 8 प्रति कि.ग्रा. के हिसाब से आती है।

संघनीकरण का परिवहन लागत पर प्रभाव

चारे का परिवहन मुख्यतः ट्रक द्वारा होता है। एक ट्रक में सामान्यता 7–8 क्विंटल चारा ढोने की क्षमता होती है, जबकि ब्लॉक बना देने पर 130 क्विंटल तक चारा आ जाता है। इस प्रकार परिवहन लागत में 6–8 गुणा तक की

सारणी–1. चारे के संघनीकरण द्वारा परिवहन लागत में कमी

चारे का नाम	ब्लॉक का घनत्व (कि.ग्रा./मी)	क्षमता (क्विंटल/ट्रक)	परिवहन लागत (रू./क्विंटल)		परिवहन लागत में कमी (%)
घास (प्राकृतिक)	25	7.25	620	896	
घास (ब्लॉक)	453	131.37	34	49	94
गेहूँ का भूसा (प्राकृतिक)	94	27.26	165	238	77
गेहूँ का भूसा (ब्लॉक)	421	122.09	36	53	

सारणी–2. चारे की ब्लॉक भण्डारण के कारण स्थान में कमी (%)

क्र.सं.	चारे का नाम	प्राकृतिक रूप से रखने पर स्थान (घन मीटर/क्विंटल)	चारे को ब्लॉक के रूप में रखने पर स्थान (घन मीटर/क्विंटल)	% स्थान में कमी प्रति क्विंटल
1.	प्राकृतिक घास	3.89	0.22	94.34
2	गेहूँ का भूसा	1.06	0.24	77.35
3	उड़द का भूसा	1.69	0.18	89.34
4	स्टाइलों भूसा	3.54	0.21	94.06
5	ज्वार स्टोवर	2.36	0.18	92.37
6	सुबबूल पत्ती	1.20	0.13	89.16
7	चावल का भूसा	4.04	0.25	93.80

कमी हो जाती है एवं यातायात असुविधाओं से बचा जा सकता है। साथ ही चारा उत्पादक क्षेत्रों से चारे का ब्लॉक बनाकर चारे की कमी वाले क्षेत्रों या प्राकृतिक आपदाओं जैसे बाढ़, सूखा व भूकम्प आदि प्रभावित क्षेत्रों में चारे का परिवहन सुगमता से किया जा सकता है।

भंडारण स्थान में कमी

असंघनीकृत चारे का भंडारण करने पर ज्यादा स्थान की आवश्यकता पड़ती है। उदाहरण स्वरूप एक क्विंटल घास के भंडारण में लगभग 3.89 घन मी. स्थान की आवश्यकता पड़ती है। इसी प्रकार गेहूँ के कुतर को 1.06 घन मीटर स्थान की आवश्यकता पड़ती है। वहीं ब्लॉक के रूप में 6 रू. क्विंटल घास व गेहूँ के कुतर को क्रमशः 0.22 घन मीटर व 0.24 घन मीटर स्थान की आवश्यकता होती है। इससे स्पष्ट है कि घनत्वीकरण से भंडारण स्थान में काफी कमी की जा सकती है। इसका मुख्य लाभ उन पशुपालकों को होगा जो नगर के आस–पास अपना डेरी उद्योग लगाना चाहते हैं।

सम्पूर्ण आहार ब्लॉक मशीन (मोबाइल)

उपर्युक्त अवलोकनों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि चारे के संघनीकरण से जहां एक ओर परिवहन लागत में कमी के साथ भंडारण काफी कम स्थान पर किया जा सकता है, वहीं पशुओं के शुष्क पदार्थ ग्राह्यता में वृद्धि होती है, फलस्वरूप शरीर भार में वृद्धि के साथ दुग्ध उत्पादन में भी वृद्धि देखी गई है। साथ–साथ चारे के रख–रखाव एवं प्रबंध में आसानी हो जाती है।

- 'लागट' भी ऊँट के लिए ही प्रयुक्त होता है। ऐसे ऊँट के पाँव चलते समय पेट से घर्षण करते हैं। वह अच्छा नहीं समझा जाता।
- चाँचियौ– जिस ऊँट के होंठ ओछे हों और दाँत बाहर निकले हों, वह चाँचियौ या चाँपलौ ऊँट कहलाता है। ऐसा ऊँट धणीमार (मालिक को मारने वाला) के नाम से जाना जाता है।
- रेतिमोड़ो ऊँट – ऊँट की यह सबसे बड़ी भारी खोट मानी जा सकती है क्योंकि ऐसे ऊँट के पेशाब के स्थान पर सूजन रहती है।

–मरु संस्कृति कोश से साभार

फ्लोराइड विषाक्तता व स्वास्थ्य पर उसके कुप्रभाव

सज्जन सिंह, प्रधान वैज्ञानिक, **एफ.सी. टुटेजा,** वरिष्ठ वैज्ञानिक व **एन.वी. पाटिल,** निदेशक
राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र, बीकानेर

कृषि के बाद राजस्थान में खनन दूसरा स्थान रखता है। इस प्रदेश में लगभग 42 मुख्य या प्रधान खनिज पदार्थ व 28 लघु खनिज पदार्थ उपलब्ध है। यह क्षेत्र राजस्थान में 2 लाख लोगों को रोजगार उपलब्ध करवाता है। राजस्थान के विस्तृत रेतीले भाग में चांदी, फास्फेट, फ्लोराइड, चट्टान फोस्फेट, तांबा अयस्क जस्ता, खरिया मिट्टी (जिप्सम), चिकनी मिट्टी (कल्ले), ग्रेनाइड, संगमरमर, बालुकाश्म, मैंग्निशियम कार्बोनेट के पत्थर (डोलोमईट), कैल्शियम कार्बोनेट जो कि लाईम स्टोन का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है, पन्ना (भरकत मणि) और खतमणि (याकूत) के अकूत भण्डार उपस्थित हैं। राजस्थान के इस प्राकृतिक खजाने का दोहन इस प्रदेश के लोगों की आजीविका का साधन था। लेकिन विकास व यातायात के साधनों की बढ़ोतरी व व्यावसायिक स्वार्थवश इस अकूत खजाने की लूट ने इस कार्य पर आश्रित लोगों की आजीविका पर प्रश्नचिन्ह लगा दिया। आज भी राजस्थान, देश का ऐसा प्रदेश है जहाँ कुल खनिज पदार्थों का 90 प्रतिशत भाग पाया जाता है तथा हिन्दुस्तान का दूसरा खनिज भण्डार प्रदेश है। राष्ट्र के कुल अधातु खनिज उत्पादन का 24 प्रतिशत हिस्सा पाया जाता है। यहां देश के कुल उत्पादन का 40 प्रतिशत तांबा, 100 प्रतिशत जस्ता, 85 प्रतिशत सीसा, 94 प्रतिशत खरिया मिट्टी, 76 प्रतिशत चाँदी अयस्क, 68 प्रतिशत फ्लडस्पार, 84 प्रतिशत अदह (ऐस्बेस्टस) और 12 प्रतिशत अभ्रक पाया जाता है। इस प्रदेश में देश का 65 प्रतिशत पत्थर, 90 प्रतिशत संगमरमर स्लेट और बालुकाश्म उपलब्ध है। देश, विदेश में पथरीली ईमारतों के पत्थर में इस प्रदेश के पत्थर का अंश होना स्वाभाविक है। प्रदेश में उपरोक्त सभी गुणों के साथ खनिजों का एक अहम योगदान है। परन्तु उपरोक्त सभी गुणों के साथ खनिजों की अधिक उपलब्धता कई बार अनावश्यक शारीरिक कष्ट पैदा कर देती है। आधुनिकता के इस युग में राष्ट्रीय व अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर स्वास्थ्य सेवाओं के प्रति जागरूकता व विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्ल्यू.एच.ओ.) के दबाव के कारण विकसित देशों के साथ–साथ विकासशील व अविकसित देशों में भी स्वास्थ्य सेवाओं में सुधार हुआ जिसका सीधा लाभ आम आदमी को हुआ। किसी भी दैहिक रोग की जाँच (कमी या अधिकता) अब आदमियों में सस्ती व सरल है। परन्तु जीव–जन्तु विशेष रूप से पशुधन जो खनिज पदार्थों की तरह हमारी प्राकृतिक धरोहर हैं, जांचों की अनदेखी की जाती है जिसके कारण इलाज के अभाव में उनकों कष्ट सहन करना पड़ता है। इस लेख के माध्यम से हम पशुओं व मनुष्यों में फ्लोराइड विषाक्तता के बारे में जानकारी देगें। फ्लोराइड एक घुलनशील पदार्थ है जिसकी मात्रा एक उचित स्तर तक ही आवश्यक है। वास्तव में पीने योग्य पानी में विभिन्न तत्वों का भाग कितनी होना चाहिए ? यह निम्नलिखित प्रकार से है :

क्रम संख्या	माप दण्ड	वांछनीय सीमा	उच्चतम क्षम्य स्तर
1.	पी. एच.	6.5–8.5	6.5–8.5
2.	टी. डी. एस. (मि.ग्रा. प्रति लीटर)	500	2000
3.	प्रकिलता (मटमैलापन) (NT4)	5	10
4.	कुल मृदुलता (मि. ग्रा. कैल्शियम, कार्बोनेट प्रति लीटर)	300	600
5.	कैल्शियम (मि. ग्रा. प्रति लीटर)	75	200
6.	मैग्निशियम (मि. ग्रा. प्रति लीटर)	30	100
7.	कुल क्षारियता (मि.ग्रा. कैल्शियम कार्बोनेट प्रति लीटर)	200	600
8.	स्ल्फेट (मि.ग्रा. प्रति लीटर)	200	400
9.	क्लोराइड (मि.ग्रा./लीटर)	250	1000
10.	फ्लोराइड (मि.ग्रा./लीटर)	1	1.5
11.	लोहा (मि.ग्रा./लीटर)	0.3	1
12.	नाईट्रेट–एन (मि.ग्रा./लीटर)	10	–
13.	सीसा (मि.ग्रा./लीटर)	0.05	0.05
14.	कैडमियम (मि.ग्रा./लीटर)	0.01	0.01
15.	जस्ता (जिंक) (मि.ग्रा./लीटर)	5	15
16.	तांबा (मि.ग्रा./लीटर)	0.05	1.5

दुनिया के विभिन्न भागों में फ्लोराइड पानी में घुलनशील अवस्था में पाया जाता है। विभिन्न संस्थाओं द्वारा फ्लोराइड की भिन्न–भिन्न वांछनीय मात्रा इस प्रकार से हैं :–

भौगोलिक सूचना–तन्त्र से प्राप्त आंकडों में यह पाया गया है कि कैल्शियम और अल्ट्राबेसिक रॉक में अधिक नकारात्मक पारम्परिक सम्बन्ध है जबकि फ्लोराइड के साथ

क्रम संख्या	संगठन का नाम	फ्लोराइड की वांछनीय सीमा (मि. ग्रा. प्रति लीटर)	
1.	विश्व स्वास्थ्य संगठन	1.5	–
2.	भारतीय मानक ब्यूरो	1.0	–
3.	जन स्वास्थ्य अभियांन्त्रिकी समिति (भारत सरकार)	1.0	–
4.	भारतीय आयुर्विज्ञान अनुसंधान परिषद	1.0	–

यह अधिक सकारात्मक तथा बाईकार्बोनेट के साथ इसका सम्बन्ध औसत दर्जे का है। देश के विभिन्न राज्यों जैसे जम्मू–कश्मीर, पंजाब, हरियाणा, दिल्ली, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, गुजरात, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, कर्नाटक, आन्ध्रप्रदेश, केरल, तमिलनाडु, उड़ीसा, बिहार, झारखंड, पश्चिमी बंगाल और आसाम में हजारों लोग फ्लोराइड की अधिकता के कारण शारीरिक बीमारियों से प्रभावित हैं। इस बात से सहज पता लगाया जा सकता है कि समस्या कितनी गम्भीर है? 1.5 मिली ग्राम प्रति लीटर की स्वीकार्य सीमा से परे भूमिगत जल में फ्लोराइड की मात्रा भारत में एक प्रमुख स्वास्थ्य समस्या है। देश की लगभग 90 प्रतिशत ग्रामीण आबादी पीने और घरेलू उद्देश्यों के लिए भूमिगत जल का उपयोग करती हैं। भारत में 19 राज्यों के 199 जिलों में भूमिगत जल में फ्लोराइड की अधिकता की समस्या पायी गई है। राजस्थान के सभी जिलों के भू–जल में उच्च फ्लोराइड की मात्रा का प्रभाव है। अतः राजस्थान की विशाल ग्रामीण आबादी व समस्त पशुधन के लिए फ्लोरोसिस एक गम्भीर स्वास्थ्य समस्या का रूप धारण कर रही है।

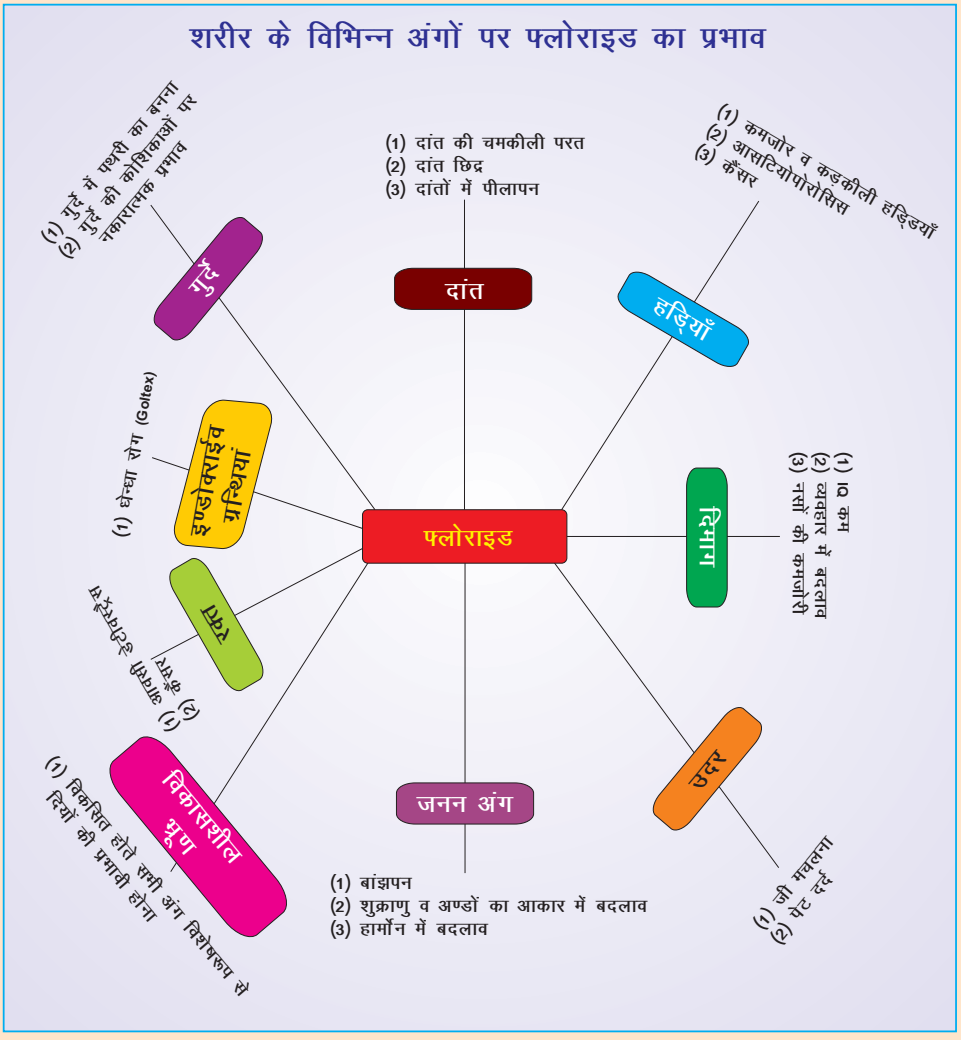

औद्योगिकरण और जीवनशैली के बदलाव ने हमारे जीवन में बहुत से अवांछनीय रसायनों, जो शरीर क्रियाओं के लिए हानिकारक ही नहीं अपितु कई बार घातक सिद्ध होते हैं, को घोला है। फ्लोराइड भी इसी श्रंखला का एक हिस्सा है जिसकी अधिकता हड्डियाँ और दांतों को कुप्रभावित करने के साथ शरीर के अन्य अंग जैसे यकृत, दिमाग, गुर्दे, जनन अंग व अन्तः स्त्रावी ग्रन्थिओं आदि की सामान्य प्रक्रिया में अवरोध पैदा करती है। दिन–प्रतिदिन इस रसायन की बढ़ती मात्रा इसके विषैले प्रभाव को और भयावह बना रही है। एक अनुमान के अनुसार प्रतिदिन प्रयोग में आने वाली लगभग 20 प्रतिशत दवाइयों व 30–40 प्रतिशत कृषि रसायनों में ओरगनों फ्लोरीन होती है। यहाँ तक नगर निकाय के जन स्वास्थ्य विभाग द्वारा आपूर्त पानी में भी फ्लोरीन कीटाणु नाशक के रूप में प्रयोग की जाती है जिसका हम और हमारा पशुधन प्रतिदिन उपयोग करते हैं। फास्फेट फर्टीलाईजर, कोयला के जलने व सिरामिक उद्योग से निकलने वाले कबाड़ से धरातल व भूजल का फ्लोराइड प्रदूषण बढ़ता है। फ्रिज व ए. सी. में सीएफसी के कारण भी फ्लोराइड वातावरण में फैलता है। पशुओं में फ्लोराइड विषाक्तता के इलाज में प्रति–ऑक्सीकारक (एन्टीऑक्सीडेट) का प्रयोग विषाक्तता कम करने में सहायक सिद्ध हुआ है जिससे प्रतीत होता है कि फ्लोराइड शरीर में ऑक्सीकारक दबाव (आक्सीडेटीव स्ट्रैस) पैदा करता है। यह ऑक्सीकारक दबाव के लिए फ्री रेडिकल पैदा करता है।

साभार– श्री रौनक, छायाकार, बीकानेर

- बहुत अधिक तीव्र गति से चलने वाले ऊँट को 'जमीकरवत' अर्थात् जमीन को गति से काटने वाला कहा जाता है।

–मरु संस्कृति कोश से साभार

हेला कोशिका : एक अश्वेत महिला का विज्ञान को अमर योगदान

सुमन्त व्यास, प्रधान वैज्ञानिक, **नन्द किशोर,** तकनीकी अधिकारी एवं
उमेश कुमार बिस्सा, वरिष्ठ वैज्ञानिक
राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र, बीकानेर

क्या कोई मानव अपनी मृत्यु के 62 वर्षों के बाद भी विज्ञान में अपना योगदान दे सकता है ? हाँ, परन्तु विश्व में इसका सिर्फ एक उदाहरण है। डॉ. ज्योर्ज गाय अमेरिका के होपकिंस संस्थान, बाल्टीमोर में उत्तक कल्चर प्रयोगशाला के प्रभारी थे। वे तीस वर्षों से मानव कैंसर उत्तकों को संकलित कर उन्हें प्रयोगशाला में कृत्रिम रूप से बढ़ाने की कोशिश कर रहे थे परन्तु सफलता नहीं मिल रही थी। उसी दौरान 8 फरवरी, 1951 को हेनेरिएत्ता लेक्स नामक एक महिला उनके संस्थान में बच्चेदानी के मुख (सर्विकल) के कैंसर का इलाज कराने आईं। उसके इलाज के साथ ही उसके सर्विकल कैंसर उत्तकों का नमूना भी लिया गया। डॉ. ज्योर्ज ऑटो गाय की प्रयोगशाला में इन्हें कृत्रिम रूप से बढ़ाने की कोशिश की गई और सफलता मिली। मानव इतिहास में यह पहली कोशिका थी जो कि प्रयोगशाला में कृत्रिम रूप से बढ़ने लगी तथा जीवित रही। इन्हें डॉ. गाय ने मरीज के नाम पर "हेला" (HeLa) नाम दिया। हेनेरिएत्ता लेक्स कुछ महीनों के बाद सिर्फ 31 वर्ष की आयु में, 4 अक्टूबर, 1951 को कैंसर का शिकार बन कालग्रस्त हो गई। परन्तु उनकी कोशिकाएँ आज भी जिन्दा हैं और एक तरह से हेनेरिएत्ता लेक्स को अमर सिद्ध कर रही हैं।

इन 62 वर्षों में, जो कि हेनेरिएत्ता लेक्स की उम्र से दोगुनी अवधि है– "हेला" कोशिका के प्रयोग से लगभग 74,000 प्रयोग या कार्य किये गए एवं उच्च कोटि की शोध पत्रिकाओं में छपे। 2010 में एक पत्रकार रेबेका स्क्लूत ने एक रिकार्ड तोड़ बिक्री वाला एक उपन्यास लिखा – "द इम्मोर्टल लाईफ ऑफ हेनेरिएत्ता लेक्स"। रेबेक्का स्क्लूत के आकलन के अनुसार हर महीने करीब 300 शोध पत्र "हेला" उत्तकों पर किये गए कार्य के परिणामानुसार छप रहे हैं। इन प्रयोगों से कई उल्लेखनीय उपलब्धियां हासिल हुईं, जिनमें से प्रमुख हैं :–

1. पिट्सबर्ग मेडिकल स्कूल, यू. एस. ए. के डॉ जोनास साल्क ने "हेला" कोशिका को पोलियो विषाणु से संक्रमित कर परीक्षण किये तथा उन्हें इस विधि से पोलियो के टीके (वैक्सीन) की सम्भावना दिखी। इसकी जांच के लिए उन्हें बहुत ज्यादा मात्रा में "हेला" कोशिकाओं की आवश्यकता थी। अतः 1953 में टस्किगी विश्वविद्यालय में "हेला" कोशिका कल्चर फेक्ट्री स्थापित की गई ताकि डॉ. साल्क को "हेला" कोशिका की अबाध आपूर्ति मिले। तदुपरांत 1955 में डॉ. साल्क ने पोलियो का टीका जारी कर दिया।
2. वैज्ञानिकों नें "हेला" कोशिका के फ्लास्क को परमाणु परीक्षण के स्थान पर रखा तथा मनुष्य की कोशिकाओं पर परमाणु विकिरण के दुष्प्रभाव को मापने में सफल रहे।

3. 2011 में हेप्टा–मैथायीं आइ. र. 808 जो कि चिकित्सा निदान में प्रयोग की जाती है, का "हेला" कोशिका पर परीक्षण किया गया। इसका कैन्सर के निदान व इलाज में विभिन्न कीमोथैरपी दवाओं के साथ परीक्षण जारी हैं।

4. "हेला" कोशिका का प्रयोग यह जानने के लिए भी किया गया कि पार्वो विषाणु मनुष्य, बिल्ली तथा श्वान में कैसे प्रभाव डालता है।

5. सन् 2001 का मेडिसिन का नोबल पुरस्कार "हेला" कोशिकाओं पर किये गए कार्यों पर ही दिया गया था।

6. इन बीते वर्षों में "हेला" कोशिकाओं को संपूर्ण विश्व की प्रयोगशालाओं में जिस तरह से गुणित किया है, उससे ऐसा लगता है कि विश्व में अब तक 20 टन "हेला" कोशिकाएं जन्म ले चुकी होंगी। यानी कि हेनेरिएत्ता लेक्स के वजन से 400 गुना ज्यादा।

7. सौंदर्य प्रसाधन कम्पनियां सौंदर्य प्रसाधनों का प्रभाव "हेला" कोशिकाओं पर देखती हैं ताकि मानव स्वास्थ्य के सूक्ष्म स्तर पर भी उनका सौंदर्य प्रसाधन खरा उतरें।

8. वैज्ञानिकों ने "हेला" कोशिकाओं को प्रारम्भिक अंतरिक्ष मिशन (स्पेस शटल) पर भी भेजा ताकि यह पता लगाया जा सके कि शून्य गुरुत्वाकर्षण का मानव कोशिकाओं पर क्या प्रभाव पड़ता है।

9. "हेला" कोशिकाओं ने "जीन मेपिंग" की सफलता में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

डॉ. ज्योर्ज गाय नें "हेला" कोशिका की खोज के लिए कोई पैटेन्ट नहीं लिया तथा इन्हें विज्ञान के कार्य के लिए देश–विदेश की विभिन्न प्रयोगशालाओं को मुफ्त में बांटा। उनका मकसद सिर्फ इतना था कि विज्ञान को ऐसी मानव कोशिका "लाईन" मिले जिनसे प्रयोगशाला में कोशिकाओं के विभिन्न कार्यों, कार्य संचालन आदि का आधारभूत ज्ञान मिलें तथा विभिन्न बीमारियों का निदान तथा उपचार हो सके। समय के साथ मापदंड बदलते गये, विज्ञान में भी व्यवसायिकता हावी हो गई। यू. एस. पेटेन्ट व ट्रेडमार्क ऑफिस के अनुसार "हेला" कोशिकाओं पर आधारित कार्यों पर 11000 पैटेंट जारी किये जा चुके हैं। आज इन्टरनेट पर आदेश देकर "हेला" कोशिका की शीशी (वायल) खरीदी जा सकती है।

"हेला" कोशिका को अमर कहा जा सकता है, क्योंकि यह प्रयोगशाला की उत्तक कल्चर प्लेट में अनगिनत अनवरत बढ़ सकते हैं, बशर्ते मौलिक उत्तक सर्विवल स्थिति उपलब्ध रहें। वैज्ञानिकों का अंदाज है कि जितने "हेला" कोशिका प्रयोगशाला में इन 62 वर्षों में पैदा किये हैं, उतने कोशिका हेनेरिएत्ता लेक्स के पूरे शरीर में नहीं होंगे। पिछले वर्षों में कई दूसरी कोशिकाएँ भी प्रयोगशाला में बढ़ने में कामयाब हुईं हैं। परन्तु "हेला" कोशिकाओं में प्रयोगशाला की उत्तक कल्चर प्लेट में बढ़ने की क्षमता एवं रफ्तार बहुत ज्यादा है। इसलिए बहुत से वैज्ञानिक "हेला" कोशिका को प्रयोगशाला की "वीड" भी कहते हैं। "हेला" कोशिकाएं इतनी मजबूत है कि प्रयोगशाला की दूसरी कोशिका "लाइनों" को प्रदूषित कर देती हैं। दूसरी सभी कोशिका "लाईन" प्रयोगशाला में 36 घंटें में दुगनी होती है परन्तु "हेला" कोशिकाएं सिर्फ 24 घंटें में दुगुनी हो जातीं हैं। अधिकतर कोशिका "लाईन" में हर दुगुनी प्रक्रिया में गुणसूत्र (क्रोमोसोम्स) आधे रह जाते हैं और अंततः दुगना होना बंद कर देते है। परन्तु "हेला" कोशिकायें दुगुनी तो होती है परन्तु इनके गुणसूत्र आधे नहीं होते। इसलिए इसकी "जीनोम मेपिंग" सबसे पहले की

गई। "हेला" कोशिका की प्रदूषण क्षमता का एक किस्सा है– 70 के दशक में तत्कालीन सोवियत रूस के वैज्ञानिकों नें एकबारगी दावा कर दिया था कि उन्होंने कैन्सर के कारक विषाणु को खोज निकाला है। परन्तु बाद में काफी किरकरी हुई जब उन्हें पता चला कि यह विषाणु नहीं वरन "हेला" कोशिका है जो कि किसी केमिकल या कल्चर सेल्स के साथ उनकी प्रयोगशाला में अनचाहे पहुँच गई थी।

चूँकि "हेला" कोशिका अनवरत विभाजित हो सकती है तथा इनकी गुणसूत्र संख्या मनुष्य (46) के गुणसूत्र से अलग होती है, इनका आदर्श गुणसूत्र संख्या 82 हैं। अतः एक वैज्ञानिक "ले वां वेलन" नें इन्हें एक नयी स्पीसीज करार दिया तथा इनका नामकरण भी कर दिया– *Helacyton gartleri* परन्तु दूसरे वैज्ञानिक इससे असहमत रहे। 1973 में शोधकर्ताओं का ध्यान इस बात पर गया कि क्या यह गुण वंशानुगत है। इसके लिए उन्होंने हेनेरिएत्ता लेक्स के वंशजों से संपर्क किया। "जेरी लेक्स वायन" जो कि हेनेरिएत्ता लेक्स की पौत्री है, को तब पता चला कि उनकी दादी के परिवार की जानकारी व अनुमति के बिना "हेला" कोशिका का उपयोग हो रहा है। हेनेरिएत्ता लेक्स के वंशजों जिनमें कई पुत्र, पुत्री, पौत्र, पुत्री, प्रपोत्र, प्रपोत्री हैं, का मानना था कि हमें हर प्रयोग जिसमें "हेला" कोशिका का इस्तेमाल हो रहा था, की जानकारी मिलनी चाहिए और उनमें से कुछ की चाह थी कि निजी कंपनियां जो मुनाफा "हेला" कोशिका के माध्यम से कमा रही हैं, उसमें से उनको भी हिस्सा मिले। "जेरी लेक्स वायन" के प्रयास रंग लाये तथा विभिन्न शोध संस्थानों द्वारा प्रकाशित होने वाले शोध पत्र जो कि "हेला" कोशिका की जीनोम मेपिंग पर आधारित थे, को वापिस या स्थगित कर दिया गया। यह "नेचर" जैसी प्रतिष्ठित शोध पत्रिकाओं में छपने के लिए स्वीकृत हो गए थे। कई संस्थान जिनमें यूरोपियन मोलेकुलर बायोलोजी लेबोरेट्री, एन. आई. एच., यूएसए तथा वाशिंगटन विश्वविद्यालय शामिल हैं, अब यह मानते हैं कि "हेला" कोशिका पर शोध करने से पहले उनके परिजनों की सहमति आवश्यक है। इसकी क्या प्रक्रिया हो? इस पर जोर शोर से प्रयास चल रहे हैं। एन.आई.एच., यूएसए में एक "हेला" जीनोम डाटा अक्सेस वर्किंग समूह बनाया गया है जिसमे 6 वैज्ञानिक और हेनेरिएत्ता लेक्स के दो वंशज है। जो शोधकर्ता "हेला" कोशिका के जीनोम पर कार्य करना चाहता है, उसे एन. आई. एच. में प्रार्थना पत्र देना होगा, यह समूह विचार कर अनुमति दें या नहीं दें, इसका निर्णय करेगा। फिलहाल परिजनों को व्यावसायिक लाभ नहीं मिलेगा। यह व्यवस्था 7 अगस्त 2013 को ही लागू की गई है एवं प्रारंभिक अवस्था में है परंतु इसने जेनेटिक शोध में निजता का अधिकार पर एक व्यापक बहस शुरू कर दी है। भविष्य में क्लिनिकल रिसर्च एवं ड्रग ट्रायल का कैसे नियमन हो, इसके लिए एक दिशा प्राप्त हो चुकी है। हेनेरिएत्ता लेक्स आज दुनिया में नहीं है पर विज्ञान के विकास में उसका योगदान भौतिक ही नहीं वरन बौद्धिक स्तर पर भी जारी है।

हिन्दी के द्वारा ही सारे भारत को एक सूत्र में पिरोया जा सकता है।

–स्वामी दयानंद सरस्वती

पशु आहार के नवीनतम आयाम

दाऊलाल बोहरा, वरिष्ठ अनुसंधान अध्येता एवं **निर्मला सैनी,** वरिष्ठ वैज्ञानिक
राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र, बीकानेर

भारत जैसे विकासशील देशों में पशुओं के लिए चराई क्षेत्रों में कमी होने के कारण से असंतुलन बन गया है। इस अवस्था में कृषि उत्पाद जैसे भूसा, कड़बी आदि पशुओं के लिए एक मुख्य आहार होता है जिनमें पाच्य प्रोटीन न के बराबर उपलब्ध हो पाता है। जिससे कृषक समुदाय अधिक उत्पादन लेने के लिए चारा व दाना दोनों पशु को प्रदान करता है। अतः औद्योगिक उपोत्पादों को पशु आहार बनाने के लिए उपयोग में लाया जा रहा है।

छिलके और चोकर

(1) धान के उपोत्पाद

चावल की भूसी : ये बिना पॉलिश का 10 प्रतिशत होता है। इसमें तेल लगभग 14 प्रतिशत होता है। इसमें तेल लगभग 14 प्रतिशत, कच्छी प्रोटीन 12–14 प्रतिशत तथा 12 प्रतिशत रेशा उपस्थित होता है। चावल भूसी, मुर्गी दाने में 20 प्रतिशत और अन्य मवेशी के दाने में 15–30 प्रतिशत रखने पर उत्पादन सामान्य रहता है।

चावल पॉलिश : चावल से लालीयुक्त भूरी परत को उतारने के बाद चावल को पॉलिश किया जाता है। इस प्रक्रिया में एक अन्य उपोत्पाद चावल की पॉलिश होती है जिसमें तेल 14–15 प्रतिशत, रेशा 4 प्रतिशत तथा 12–14 कच्ची प्रोटीन पाई जाती है। ये ऊर्जा का अच्छा स्रोत है। इसमें विटामीन –बी पाया जाता है। इसे पशुओं के दाने में 40 प्रतिशत तक दिया जा सकता है जिसमें पशुओं में उत्पादन दर सर्वोत्तम रहती है।

गेंहू का चोकर : आटा मील का प्रमुख उपोत्पाद जो 30 प्रतिशत चोकर के रूप में प्राप्त होता है। इसमें 12–14 प्रतिशत कच्ची प्रोटीन, 3–4 प्रतिशत ईथर निष्कर्ष, 11–12 प्रतिशत रेशा, 8–9 प्रतिशत भस्म तथा 64–65 प्रतिशत नाइट्रोजन रहित निष्कर्ष होता है। इस चोकर में फास्फोरस, मैग्नीशियम और मैगनीज अच्छी मात्रा में होते हैं। इसमें 9–10 प्रतिशत पाचक कच्ची प्रोटीन होती है। इसे पशुओं के दाने में 15–30 प्रतिशत तक काम में लिया जा सकता है।

खलिया (खल और चूरी)

मूंगफली खल : ये प्रोटीन का स्रोत हैं जो तेल मीलों द्वारा प्रतिशत तेल के आधार पर बनाई जाती है। घाणी (10–12 प्रतिशत तेल), एक्सपैलर (6–8 प्रतिशत तेल) तथा विलायक निष्कर्षित खली (0.5–0.7 प्रतिशत तेल) इन सभी में प्रोटीन की मात्रा 40–50 प्रतिशत तक हो सकती है तथा पशुओं को इनका स्वाद भी अच्छा लगता है। मूंगफली में कैल्शियम (0.2 प्रतिशत) तथा अमीनो अम्ल (लायजीन व मिथियोनिम) कम मात्रा में पाए जाते हैं।

सरसों खल : सरसों, राई व तारामिरा की खलें इस वर्ग में आती हैं तथा भारत में इनका उत्पादन भी काफी पाया जाता है। इसमें प्रोटीन 34–37 प्रतिशत पाई जाती है। इसे गौ वंश के राशन में खिलाया जाता है। इसे भी पशुओं के प्रोटीन आहार के रूप में जाना जाता है।

बिनौले की खली : इसमें दूसरे खलों की अपेक्षा प्रोटीन कम होती है। भारत में कपास उत्पादन क्षेत्रों में यह पशुओं

का प्रमुख स्रोत है। बिनौले की खली में लायसीन और कैल्शियम कम होता है तथा फॉस्फोरस उचित मात्रा में पाया जाता है। दुधारू पशुओं को यह 2 किलोग्राम प्रतिदिन से ज्यादा नहीं देना चाहिए अन्यथा उत्पादन पर प्रभाव पड़ता है, क्योंकि इस खल में 'गोसीपोल' पदार्थ होता है। यह पाचक एंजाइम को नष्ट करता है। यह छोटे पशु जैसे बछड़े व बछड़ियों के लिए जहरीला भी होता है।

सोयाबीन खली : इस खल में सभी अमीनों अम्ल पर्याप्त मात्रा में पाए जाते हैं, केवल मिथियोनीन व सिस्टीन की कमी होती है। यह पशुओं को खाद्य में सर्वाधिक रूचिकर लगती है।

अलसी की खली : यह भी प्रोटीन का अच्छा स्रोत है जो मुख्य रूप से घोड़ों को दी जाती है। इसमें प्रोटीन की मात्रा 30 प्रतिशत पाई जाती है। इसमें 4–11 प्रतिशत म्यूसीलेज होता है जिसे रोमंथक पशु रूमन जीवाणु के द्वारा पचा लेते हैं।

तिल की खली : तिल की खली (प्रोटीन 40–42 प्रतिशत) स्वादिष्ट और गौवंशी पशु, भैंस और मुर्गी दाने में प्रोटीन का प्रमुख स्रोत है। इसमें मिथियोनिन की मात्रा अच्छी होती है तथा कैल्शियम और फॉस्फोरस अच्छी मात्रा में पाया जाता है। पशुओं के अधिक मात्रा में खिलाने पर मक्खन नरम प्राप्त होता है।

सभी प्रकार की खलियों में सरसों की खली एक सस्ता एवं उत्तम प्रोटीन स्रोत है। यद्यपि सभी प्रकार की खलियों में कड़वापन पाया जाता है परन्तु भिगी सरसों खली को पानी में मिलाने से कड़वेपन की समस्या का निदान किया जा सकता है। लम्बे समय तक खली देकर पशुओं में उत्पादकता को बढ़ाया जा सकता है।

राजस्थान के शुष्क क्षेत्रों में अकाल के समय पशुओं को भूख और कुपोषण से बचाने हेतु उनके आहार पर विशेष ध्यान देना चाहिए। इसके लिए वन तथा चरागाह क्षेत्रों में उपस्थित विभिन्न वृक्षों मुख्यतः नीम, खेजड़ी, अरडू, कीकर, पीपल, बरगद आदि वृक्षों की पत्तियों को इनके बाहुल्य वाले समय में एकत्रित करके रख लिया जाना चाहिए जिससे परिस्थितियों में इनका उपयोग कर पशुओं को भूखा रहने से बचाया जा सके। पेड़ों के सूख जाने से पूर्व ही फलियों को एकत्रित करके पशुओं के आहार में आवश्यकतानुसार मिलाना चाहिए जिससे पशुओं के भार में वृद्धि तथा प्रजनन क्षमता में बढ़ोतरी की जा सके। अकाल में कांटे रहित नागफनी का प्रयोग भी आहार के रूप में किया जा सकता है। नागफनी का उपयोग करने से पहले इसको अच्छी तरह से कुट्टी से काटकर, पशु आहार या कड़बी के साथ मिलाकर खिलाया जा सकता है।

यूरिया उपचारित आहार : राजस्थान में सरसों सबसे अधिक होती है। शेष बचा हुआ भूसा बेकार हो जाता है। अकाल के समय जब पशु के खाने के लिए कुछ नहीं रहता तो इस सरसों के भूसे को यूरिया आदि से उपचारित कर पशु को खिलाया जा सकता है। अकाल के समय अधिकतर पशुओं को उपलब्ध सूखी कड़बी और भूसा खिलाया जाता है जिसमें प्रोटीन नाममात्र होने से पशुओं को जीवन निर्वाह हेतु आवश्यक प्रोटीन नहीं मिल पाती, जिससे पशुओं के शरीर भार तथा उत्पादन में निरंतर गिरावट होती रहती है। रोमंथी पशुओं में यूरिया में पाई जाने वाली नाइट्रोजन को प्रोटीन में बदलने की क्षमता होती है। इस नाइट्रोजन को प्रोटीन में बदलने के लिए आवश्यक ऊर्जा शीरे द्वारा पूरी की जा सकती है। अतः यूरिया तथा शीरे की निश्चित मात्रा को पशु आहार में सम्मिलित कर पशुओं को आवश्यक

प्रोटीन प्रदान की जा सकती है। इसके लिए यूरिया शीरा मिश्रित तरल पदार्थ तथा यूरिया–शीरा उपचारित चारा पशुओं को उपलब्ध कराना चाहिए। यूरिया मिश्रित तरल खाद्य पदार्थ के लिए 2.5 भाग यूरिया को 2.5 भाग पानी में घोलकर उसमें 9.2 भाग शीरा धीरे–धीरे मिलाते हैं साथ ही 2 भाग लवण मिश्रण तथा 1 भाग नमक को पूर्ण रूप से घोल लिया जाता है। इस प्रकार का मिश्रण पीने वाले पानी के साथ केवल (10 प्रतिशत) की मात्रा में ही दिया जाना चाहिए।

यूरिया शीरा उपचारित सूखा चारा खिलाने से पशुओं को आवश्यक पोषक तत्वों की आपूर्ति की जा सकती है जिसमें 100 किलोग्राम भूसे को उपचारित करने के लिए 1 किग्रा यूरिया, 10 किग्रा शीरा, 1 किग्रा लवण मिश्रण तथा 15 से 20 लीटर स्वच्छ पानी की आवश्यकता होती है। सभी अवयवों को भूसे के ऊपर झारे द्वारा छिड़क कर दिया जाता है तथा हाथ से भूसे में मिलाकर उपचारित पौष्टिक चारा पशुओं को खिलाने के लिए तैयार किया जा सकता है। अकाल के समय इस प्रकार से पशुओं को खिलाकर उनको भूखों मरने से बचाया जा सकता है तथा साथ ही पशुओं को इस प्रकार से संतुलित आहार खिलाकर उनका उत्पादन स्तर भी स्थिर रखा जा सकता है।

पशुओं में प्रजनन क्षमता उनके द्वारा ग्रहण किए गए आहार पर निर्भर करती है। पशु आहार की मात्रा उनके उत्पादन पर आधारित होता है। सामान्यतः कुल आहार का 2/3 भाग मोटे चारे तथा 1/3 भाग दाना मिश्रण देना अनिवार्य है। निर्वाह राशन के अतिरिक्त जो पोषक तत्व राशन में उपलब्ध हैं, वे उत्पादन के लिए उपयोग किए जाते हैं जिनमें शारीरिक बढ़वार, दुग्ध उत्पादन, कार्य करना आदि सम्मिलित है। दूध में प्रोटीन, कैल्शियम, फॉस्फोरस के अतिरिक्त लैक्टोज, वसा व विटामिन होते हैं। इसलिए पशु आहार में किसी भी एक तत्व या एक से अधिक तत्वों की कमी से शारीरिक क्रियाएं सुचारू रूप से सम्पन्न नहीं हो पाती तथा उनके उत्पादन व प्रजनन पर विपरित प्रभाव पड़ता है।

पशुओं को खिलाने के लिए अधिकतर निम्न स्तर एवं सूखे चारे का प्रयोग किसान करते हैं। इन सूखे चारे में सामान्यतः प्रोटीन ऊर्जा व खनिज पदार्थों की कमी होती है। इनमें रेशों की मात्रा अधिक होने पर पोषण मान कम होता है।

अतः शारीरिक क्रियाओं तथा विकास के लिए प्रोटीन की मात्रा को बढ़ाकर (दाने व प्रोटीन के अन्य स्रोत) देने पर शारीरिक क्रियाओं व प्रजनन को सुचारू किया जा सकता है। वहीं दूसरी ओर पशुओं को अन्य पोषक तत्वों की अपेक्षा विटामिनों की कम मात्रा ही आवश्यक होती है परंतु इसका योगदान प्रजनन में अत्याधिक होता है। हरे चारे के अभाव में मादा पशुओं में विटामिन 'ए' बीटा–कैरोटीन की कमी से गर्भधारण की क्षमता कम होती है तथा नरों में शुक्राणुओं की संख्या में कमी हो जाती है।

जिन पशुओं के आहार में ऊर्जा की कमी होती है उनके देहभार वृद्धि दर कम पाई जाती है जिससे पशु कुपोषण का शिकार हो जाते हैं तथा मृत्युदर अधिक हो जाती है। अतः पशुओं में बेहतर पोषण से प्रजनन क्षमता तथा उत्पादकता को बढ़ाया जा सकता है।

हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने में प्रांतीय भाषाओं की हानि नहीं, वरन लाभ है।

–अनंतशयनम् अयंगार

स्वस्थ जीवन हेतु अपनाएं सहज योग

स्मिता पाटिल
सहज योग केन्द्र, बीकानेर

विश्व के अनेक देशों पर अगर हम सरसरी नजर दौड़ाए तो इनमें राजनैतिक, सामाजिक एवं कारोबारी आदि गतिविधियाँ अत्यंत निम्न स्तर तक पहुँच चुकी हैं। धर्म, जाति, वर्ण आदि को लेकर भेदभावपूर्ण स्थिति और ईश्वर की मान्यता को लेकर बवाल खड़े किए जाते हैं। एक ही समाज व कुटुम्ब में भी अंतः कलह विद्यमान है। धार्मिक कट्टरता इस हद तक उन्माद फैलाती है कि इसने आतंकवाद जैसी ज्वलंत समस्या को जन्म देकर विश्व के सामने सुरक्षा की दृष्टि से भी एक चुनौती खड़ी कर दी है। नीति की जगह 'अनीति', धर्म की जगह 'अधर्म', ध्येय की जगह 'धन' और त्याग की जगह भोग ने ले ली है।

सभी यह जानते हैं कि इस पृथ्वी पर रहने वाले मनुष्य की रगों में एक–जैसा ही रक्त प्रवाहमान है। अलग–अलग भौगोलिक परिवेश, परिस्थितियों एवं वातावरण में रहने के कारण धर्म के प्रति मान्यता नाना प्रकार की हैं परंतु इन सभी के मूल में मनुष्य के कल्याण की भावना छिपी होती है परंतु आज समाज संवेदनहीन व हृदयशून्य हो गया है। भ्रष्टाचार, अत्याचार व अनैतिकता के शब्द कानों में निरन्तर गुंजायमान हैं और व्यक्ति को कौंधते रहते हैं। विज्ञान अपनी प्रगति के पथ पर निर्बाध गति से दौड़ रहा है व भौतिकता व ऐशों आराम में आपसी स्पर्धा किसी रेस की भांति हावी है। परंतु इतनी भौतिक प्रगति होने के बावजूद हर इन्सान में वैचारिक, धार्मिक व कार्यात्मक अस्थिरता है। हर व्यक्ति अपने जीवन में शांति, समाधान व एश्वर्य की अपेक्षा करता है व इसे ही आनन्द की अनुभूति के साथ देखना चाहता है। परंतु इन सभी भौतिक उपलब्धताओं के होते हुए भी मनःशान्ति, स्थैर्य व निर्मल आनन्द हर इन्सान की चाह रहती है। इस हेतु हर इन्सान में बदलाव व स्वयं की पहचान होना ही एक उपाय है। ऐसे में हर एक इन्सान में बदलाव लाया जाना ही एक उपाय है।

इस दृष्टि से संपूर्ण विश्व की दृष्टि भारतभूमि पर टिकी है जहां धर्म की आस्था व्यक्ति में कहीं अधिक गहरी है साथ ही इस देश में 'वसुधैव कुटम्बकम्' की भावना से प्रेरित हो मानव मात्र के कल्याण हेतु कार्य किया गया है। इसी क्रम में अखिल मानव जाति के कल्याणार्थ 5 मई, 1970 को परम पूज्य श्रीमाताजी निर्मला देवी की अगुवाई में सहज योग की शुरूआत हुई। जिसमें स्वयं की पहचान हेतु आत्म साक्षात्कार के मार्ग को सरल व प्रायोगिक स्वरूप में बताया गया है जिससे अपने अंतः में होने वाले नकारात्मक व सकारात्मक बदलाव को महसूस किया जाना संभव हुआ है। नकारात्मक गुण व भाव को सकारात्मक की तरफ बदलना और वह भी सामूहिक तरह से सहज में ही। इसलिए इसे 'सहज योग' के नाम से जाना जा रहा है। सहज योग का दूसरा अर्थ 'सह' अर्थात् –साथ व 'ज' –जन्मोंजन्म से व 'योग' का मतलब – जुड़ना– जिसमें निसर्गतः हर मनुष्य प्राणी में रीढ़ के सबसे नीचली हड्डी त्रिकोणाकार अस्थि जो शक्ति है–कुंडलिनी–उसका संबंध सर्व प्राणी मात्र/जीवों को चलायमान रखने वाली सर्वव्यापक शक्ति से होना है। इस शक्ति को 'कुंडलिनी' शक्ति के नाम से भी जाना जाता

है जो कि त्रिकोणाकार अस्थि तक साढ़े तीन वलयाकृत रूप में उपस्थित होता है। इस कुंडलिनी शक्ति की जागृत्ति व उसका मानव शरीर में स्थित सूक्ष्म चक्रों का भेदन होना व इसकी केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र पर अनुभूति को ही आत्म साक्षात्कार कहा जाता है व इस अनुभूति की संवेदना सिर के तालु भाग एवं शरीर के चक्रों पर, हाथ की हथेलियों व उंगलियों पर होना इसका स्वाभाविक व नैसर्गिक सूक्ष्म क्रिया है जिसका अवलोकन दैनन्दिन करना ही ध्यान की पूर्ति होना है। इस संवेदना अनुभूति के संबंध को समझना, अपने स्वयं के चक्रों की स्थिति का उसकी मानसिक, भौतिक, भावनिक व आध्यात्मिक स्थिति का दर्शन होना है। सुव्यवस्थित किया जा सकता है। एक संतुलित व्यक्तित्व तैयार किया जा सकता है। ऐसा संतुलित व्यक्ति फिर प्राप्त शांति व आनंद की अनुभूति को सामूहिक स्तर पर फैलाना चाहता है व यह कर सकता है जिससे कौटुम्बिक, सामाजिक, राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय शांति की स्थापना हो सकती है। मानव सूक्ष्म शरीर में कुंडलिनी शक्ति का स्थान व सभी चक्रों के स्थान आकृति–1 में दर्शाये गए हैं। दुनिया के 130 से ज्यादा देशों में विभिन्न जाति, धर्म, हरउम्र के महिलाओं व पुरूषों द्वारा इसका अनुभव किया जा रहा है। यह एक सच्चा धर्म है जो दुनिया को प्यार देता है। यह किसी आंदोलन की भांति युग परिवर्तन के रूप में प्रभावी ढंग जनकल्याण का कार्य कर रहा है। सहजयोग आत्मसाक्षात्कार प्राप्त करने का अमूल्य, सरल व सशक्त मार्ग है। इसमें योग के माध्यम से यह दर्शाया जाता है कि 'कुंडलिनी जागृति से ही आत्मा से सर्व व्यापी शक्ति से संबंध स्थापित करना संभव है। इस योग में 'कुंडलिनी' जागरण द्वारा साधकों को अपने हाथ की उंगलियों पर व सहस्त्रार में ठंडी व सुखद लहरियों का अनुभव होता है। कुंडलिनी का जागरण मानव शरीर में स्थित चक्रों को विशुद्धता प्रदान कराने में सक्षम है तथा इसका अनुभव चक्रों की स्थिति देखते हुए किया जा सकता है। सहज योग के माध्यम से अतीव दुखः व अतीव खुशी के क्षणों को एक संतुलित रूप में ढालने हेतु मनुष्य को तैयार किया जाता है तथा कमजोर मानसिकता सशक्त रूप में बदल जाती है। खोया हुआ आत्म विश्वास पुनः प्राप्त किया जा सकता है। धर्म ग्रंथ गीता में श्री कृष्ण ने कहा हैं 'योगक्षेम वहाम्यहम' इसमें पहले योग बताया गया है। उसके पश्चात क्षेम की बात बताई है। इसकी पूर्णता सहजयोग में नजर आती है। यह मार्ग सत्य पर आधारित है।

आकृति–1

सहज योग केवल कपोल कल्पित आधारित नहीं है अपितु यह विज्ञान के आधार पर अपनी कसौटी पर खरा उतरा है और इसमें अलग–अलग अनुसंधान किए गए जो कि इसके पुख्ता होने के सबूत हैं। आज के इस अर्थप्रधान युग में हरेक व्यक्ति अधिक से अधिक लाभ अर्जित कमाना चाहता है तथा इसमें उसका स्वास्थ्य गौण हो गया है जिससे वह नाना प्रकार के रोगों की जकड़ में फंस चुका है। अक्सर व्यक्ति काम, क्रोध, लोभ, मोह, माया में फंस जाता है जो कि रोगग्रस्तता के मूल कारण है। व्यक्ति सहज योग की सहज क्रियाओं द्वारा अपनी चिकित्सा स्वयं करने में सक्षम बन सकता है साथ ही वह इसका लाभ दूसरे प्राणियों को भी दे सकता है। सीधे लफ्जों में कहे तो यह योग बिना पैसे की चिकित्सा मुहैया करवाने वाला है। इसमें योग क्रियाओं के माध्यम से व्यक्ति की आभा प्रभावशाली होती है तथा शरीर में मौजूद तमाम तनाव बाहर निकल जाते हैं, जब ये सब अन्तःकरण से बाहर निकल जाते है तो व्यक्ति अधिक संतुलित हो जाता है। ऐसे में सहज योग किसी चमत्कार से कम नहीं जो अपनी महत्वपूर्ण क्रियाओं के माध्यम से व्यक्ति की स्वस्थता सुनिश्चित करता है।

क्योंकि सामान्य मानव जप–तप तंत्र–मंत्र, यज्ञ–भाग जैसे कर्मकांड में फसता जा रहा है। व्यक्ति भयभीत होकर रूढी परंपरा निभाने में ही अपने आप को धन्य मान रहे हैं। ये सब क्यों एवं किस लिये तथा इससे क्या प्राप्त होगा ? आदि पर बिना विचारे कृत्य करता है। इस कारण अपने आपको वह बेसहाय, कमजोर पाता है तथा अंधकार में हैं। व्यक्ति इनसे उभरने की छटपटाहट तो करता है परंतु आधी अधूरी व अविवेकी मंशा उसे ऐसा करने से रोकती हैं। अतः यह योग किसी भी प्रकार के कर्मकाण्ड को नहीं मानता, शारीरिक व मानसिक, बौद्धिक व आत्मिक उन्नति सुनिश्चित करने वाला तथा कर्मकाण्डों की मान्यताओं को सिरे से खारिज करने वाला यह सहज योग, मानव मात्र के कल्याण के लिए ही रचा–बुना गया है।

सहज योग का अनुभव एक शास्य शुद्ध वैज्ञानिक नैसर्गिक घटना है जिससे यह स्थापित कर दिया है कि मानवीय शरीर की भौतिक दैहिकी में सिम्येंथेटीक–दांयी व बांयी व पैरा सिंपेथेटीक चेता संस्था तक तथा सभी प्लेक्सस में संतुलित स्थापित किया जा सकता है व सभी परिस्थितियों में इसका संतुलन रहना हमारी शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक व आत्मौन्नती हेतु आवश्यक है। निष्कर्षतः परिवर्तित परिदृश्य में यह बेहतर जीवन–रेखा के रूप में माना जा सकता है जो व्यक्ति को व्यक्ति होने का एहसास दिलाता है जो भावों के माध्यम से व्यक्ति की तमाम मुसीबतों का हल सुझाता है। अधिक जानकारी के लिए [http:èèwww.sahajayoga.orgèexperienceitnow, पर सम्पर्क कर आप भी सहज योग के माध्यम से न केवल अपना बल्कि जन कल्याण के कार्य में सहभागी बन सकते हैं।

जामैं रस कछु होत है, पढ़त ताहि सब कोय।
बात अनूठी चाहिए, भाषा कोऊ होय।।

– भारतेन्दु हरिश्चंद्र

मरूधरा की शान : ऊँट

शैलेश कुमार स्वामी, अनुसंधान अध्येता, **जी. नागराजन,** वैज्ञानिक व.वे. एवं **श्याम सिंह दहिया,** वैज्ञानिक
राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र, बीकानेर

ऊँट को 'रेगिस्तान का जहाज' कहा जाता है। यह मुख्यतः एशिया और अफ्रीका के शुष्क और अर्धशुष्क इलाकों में पाया जाता है। इनमें उपस्थित कूबड़ के आधार पर इन्हें दो प्रजातियों में विभाजित किया गया है। एक कूबड़ वाले ऊँट को 'कैमेलस ड्रोमेडेरियस' कहा जाता है जो गर्म प्रदेशों में पाए जाते हैं जबकि दो कूबड़ वाले ऊँट ठंडे प्रदेशों में पाए जाते हैं जिन्हें 'कैमेलस बैक्टिरियन' कहा जाता है। भारत में एक कूबड़ वाले ऊँट सर्वाधिक राजस्थान प्रदेश में पाए जाते हैं। इसके अलावा ये गुजरात, हरियाणा, पंजाब, उत्तरप्रदेश एवं मध्यप्रदेश में भी पाए जाते हैं।

हमारे देश में ऊँट की 8 नस्लें जैसे बीकानेरी, जैसलमेरी, सिंधी, मेवाती, कच्छी, मेवाड़ी तथा मारवाड़ी पाई जाती है। बीकानेरी नस्ल के ऊँट बोझा ढोने में, जैसलमेरी लम्बी दूरी की सवारी और दौड़ जबकि कच्छी नस्ल के ऊँट दूध उत्पादन क्षमता के लिए जाने जाते हैं। मेवाड़ी नस्ल के ऊँट दक्षिणी राजस्थान के पहाड़ी क्षेत्रों में पाए जाते हैं एवं इनको मुख्यतया दूध उत्पादन के लिए पाला जाता है। ऊँट मरूस्थली पारिस्थितिकी का मुख्य घटक है। यह सवारी तथा सामान लादे हुए मरूभूमि पर तेज गर्मी और सर्दी सहते हुए लम्बी दूरियाँ तय करता आया है। ऊँट की कुछ अतुलनीय विशेषताएँ ही इसके अस्तित्व को बचाने में सक्षम रही हैं, ये विशेषताएँ हैं :–

1. इसकी लम्बी गर्दन एवं टाँगे इसे रेतीले टीलों को दूर तक देखने में सहायता करती है।
2. ऊँट के पलकों और भौंहों के लम्बे बाल धूल भरी आँधियों से इसकी रक्षा करते हैं।
3. इसके पाँव गद्देदार होते हैं जो रेत में चलते समय चौड़े सपाट होने के कारण धंसते नहीं है। इस कारण यह बोझा या सवारी लेकर भी आराम से रेतीले क्षेत्रों में चलता है।
4. इसकी त्वचा मोटी एवं खुरदरी होती है जिससे कंटीली झाड़ियों में यह प्रभावित नहीं होता। इसकी त्वचा में वाष्पीकरण द्वारा जल की कम हानि होती है।
5. ऊँट की नासिकाओं की संरचना कुछ ऐसी होती है कि सांस छोड़ते समय हवा द्वारा उष्मा तो बाहर निकल सकती है परंतु जल की हानि बहुत कम होती है।
6. ऊँट के कूबड़ में बहुत–सी वसा की मात्रा होती है। अकाल के दिनों में यह इससे सीमित मात्रा में ऊर्जा एवं जल की आपूर्ति करता है।
7. यह धूप में इस प्रकार बैठता है कि सूर्य की किरणें इसके शरीर पर कम से कम मात्रा में केन्द्रित होती है। अन्य पशुओं की तरह ऊँटों के रहने के लिए छप्पर नहीं बनाए जाते फिर भी ऊँटों में उष्मा संतुलन बनाये रखने के लिए वाष्पीकरण एवं उष्मा भंडारण की भूमिका प्रमुख होती है।
8. यद्यपि ऊँट में कोई ऐसी पानी की थैली नहीं होती जिससे यह पानी जमा करके कठिन परिस्थितियों के लिए बचा सके तथापि ऊँट पानी की न्यूनतम मात्रा का उपयोग करते हुए जीवनयापन करने में सक्षम है। प्यास लगने पर ऊँट एक ही बार में सौ लीटर पानी पी सकते हैं। ऊँट में साम्यावस्था स्थापित होने में 10 घंटे या इससे अधिक समय लग सकता है। यदि यह निर्जलीकृत हो जाए और लार प्रवाह की दर कम हो तो साम्यावस्था स्थापित होने में 15–20 घंटे लग जाते हैं। ऊँट गायों की तुलना में तीन गुना कम पानी का उपयोग करता है और 10 दिन बिना पानी के रह सकता है।

9. ऊँट मूत्र में जल की न्यूनतम मात्रा ही विसर्जित करते हैं। इनके मल विसर्जन में भी बहुत कम जल निष्कासित होता है क्योंकि इनकी मिंगणी अपेक्षाकृत ठोस एवं सूखी दिखाई देती है। इसी प्रकार इनका मूत्र भी अत्यंत गाढ़ा होता है जो रेगिस्तानी परिस्थितियों में इनके गुर्दों की उच्च कार्यक्षमता की परिचायक है।

10. मादा ऊँटों की तुलना में नर प्रजनन काल में कुछ विशेष लक्षण प्रकट करते हैं। यह उग्र स्वभाव के हो जाते हैं तथा अपने कोमल तालु को बार–बार मुँह से बाहर निकालकर एक विशेष गर्जना करते हैं। मदकाल के दौरान ऊँट काफी बैचेन हो जाते हैं तथा खाना–पीना भी कम कर देते हैं।

11. ऊँटनी में लगभग चार वर्ष की आयु में तथा ऊँट लगभग 5 वर्ष की आयु में मस्ती (रट) में आते हैं तथा मादा में गर्भकाल 13 महीने का होता है। अच्छी मादा ऊँट की गर्भावधि बीकानेरी व जैसलमेरी की तुलना में बहुत कम होती है।

12. ऊँटों में पाचन क्रिया अन्य जानवरों की तुलना में बहुत अच्छी होती है। यही कारण है कि जो चारा दूसरे जानवर नहीं खाते, ऊँट उसको खाकर अच्छी तरह पचा लेते हैं और कम चारे में ही अपना जीवन निर्वाह कर लेते हैं।

13. ऊँटों में रेशेदार और अधिकतम लिग्निफाइड चारों का पाचन सबसे अधिक होता है जबकि अन्य जानवरों में लिग्निफाइड चारों का पाचन बहुत कम होता है। इसके लिए ऊँट के पहले पेट (रूमन) में रेशेदार चारा पचाने वाले बैक्टीरिया अधिक होते हैं। ऊँट ग्वार का चारा, जो लकड़ी की तरह होता है, को खाकर केवल अपनी जरूरतें ही पूरी नहीं करता बल्कि इससे ऊँटनी के दूध में वृद्धि होती है। ऊँट के पहले पेट में बैक्टीरिया के साथ–साथ कवक भी पाई जाती है जो रेशेदार और लिग्निफाइड चारे को पचाने में सहायता करती है।

14. ऊँट का कंकाल बहुत बड़ा होता है परंतु हड्डियाँ बहुत कमजोर होती है। दूसरे रोमन्थियों की भांति इसमें सींग नहीं होते।

15. इसमें सुविकसित नुकीले कृतंक दांत प्रत्येक जबड़े में पाए जाते हैं जो कि अन्य रोमन्थियों में नहीं पाए जाते हैं।

16. ऊँट के मुख की संरचना इस प्रकार की होती है कि इसके गले की भीतरी सतह पर लम्बी शंकु आकार की कलिकाएं होती है जो कि पीछे की ओर मुड़ी होती है। इस कारण ये बिना नुकसान काँटेदार पौधे खा सकते हैं।

17. ऊँट अपनी लम्बी गर्दन, लम्बी टांगे तथा ऊपरी कटे होंठों के कारण झाड़ियों और वृक्षों को आसानी से खा सकता है। यह वृक्षों को हमेशा छतरी नुमा आकृति बनाता हुआ खाता है।

18. ऊँट के गुर्दे समुद्री जल की दुगुनी सांद्रता के बराबर लवणों का उत्सर्जन करते हैं।

19. इसका जीवनकाल 25 वर्ष तक होता है।

20. सामान्यतया बीकानेरी ऊँट, जैसलमेरी तथा कच्छी ऊँट की तुलना में भारी होते हैं। ऊँटों में शारीरिक वृद्धि लगभग 4 वर्ष की आयु तक होती है।

भारत में बौद्धिक सम्पदा अधिकार

रामदयाल रैगर, वरिष्ठ तकनीकी अधिकारी एवं **डी. सुचित्रा सेना,** वरिष्ठ वैज्ञानिक
राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र, बीकानेर

बौद्धिक सम्पदा किसी व्यक्ति या संस्था द्वारा सृजित कोई पेटैन्ट, ट्रेडमार्क, डिजाइन, कॉपीराइट, संगीत, कला, खोज, प्रतीक, नाम, चित्र, साहित्यिक कृति को कहते हैं। जिस प्रकार कोई भौतिक सम्पति का मालिक होता है उसी प्रकार कोई बौद्धिक सम्पदा का भी मालिक हो सकता है। इसके लिए बाकायदा बौद्धिक सम्पदा अधिकार प्रदान किये जाते हैं। अपने बौद्धिक सम्पदा उपयोग का नियन्त्रण किया जा सकता है और उसका उपयोग कर भौतिकी सम्पदा बनाई जा सकती है। यह एक ऐसा अधिकार है जो औरों को उस विशिष्ट क्षेत्र के दायरे में प्रवेश से रोकता है। यदि कोई अन्य व्यक्ति इसका इस्तेमाल करना चाहे तो उसे अधिकृत व्यक्ति को रॉयल्टी का भुगतान करना पड़ता है। इस प्रतिस्पर्द्धा के युग में यह अधिकार और भी महत्वपूर्ण बन गया है। क्योंकि बाजार में आगे रहने तथा अपनी नकल रोकने में यह अधिकार विशेष रुप में काम आता है। इसके तहत 8 प्रमुख अधिकार शामिल है यथा प्रतिलिप्याधिकार, पेटैंट, ट्रेडमार्क, औद्योगिक डिजाइन, इन्टीग्रेटिड सर्किट का लेआउट डिजाइन, भौगोलिक संकेतक, व्यापारिक रहस्य और पौधों की प्रजातियों का संरक्षण।

भारतवर्ष में निम्नलिखित आठ अधिनियमों के तहत बौद्धिक सम्पदा अधिकार सुरक्षित किए गए हैं–

1. जैविक विविधता अधिनियम, 2002
2. प्रतिलिप्याधिकार अधिनियम, 1957
3. डिजाइन अधिनियम, 2000
4. सामानों का भौगोलिक चिन्ह (पंजीकरण एवं संरक्षण) अधिनियम, 1999
5. पेटेंट अधिनियम, 1970
6. पौध किस्मों और कृषक अधिकार अधिनियम, 2001
7. सेमी कंडक्टर एकीकृत परिपथ ले–आउट डिजाइन, 2000
8. ट्रेडमार्क अधिनियम, 1999

इसके अलावा निम्नलिखित दो और क्षेत्र हैं जिनके तहत बौद्धिक सम्पदा अधिकारों को सुरक्षित किया जाता है, वे हैं–

– ट्रेड सीक्रेट
– संविदा कानून

इन बौद्धिक अधिकार अधिनियमों की संक्षिप्त जानकारी इस प्रकार है–

1. जैविक विविधता अधिनियम, 2002 : भारत जैविक विविधता सम्मेलन (सी.बी.डी.), 1992 का हिस्सा है, जिसने राज्यों को उनके जैविक संसाधनों के उपयोग और संप्रभुता के अधिकार को मान्यता दी है। सी.बी.डी. के उद्देश्यों को मजबूत बनाने तथा उसकी मदद के लिए भारत सरकार ने एक अधिनियम बनाया है जिसे जैविक विविधता कानून, 2002 नाम दिया गया है। इसका उद्देश्य जैविक संसाधनों तथा उससे जुड़े ज्ञान का सही उपयोग करना है। इसी अधिनियम के अर्न्तगत वर्ष 2003 में राष्ट्रीय 'जैव विविधता प्राधिकरण' की स्थापना भी की

गई थी। यह कानून वनस्पतियों एवं पशुवर्ग के संरक्षण के मौजूदा कानूनों यथा भारतीय वन अधिनियम, 1927, वन्यजीव (संरक्षण) अधिनियम, 1980 को बढ़ाने में कारगर है। जैविक विविधता अधिनियम, 2002 में प्रमुख रुप से आनुवांशिक संसाधनों तथा उससे जुड़े किसी विदेशी के ज्ञान एवं जानकारियों, कंपनी अथवा संसाधनों से पहले, इससे जुड़ी सभी जानकारियां तथा स्त्रोत न्याय संगत रूप से देश एवं उसके नागरिकों के लिए उपयोग किये जाने का प्रावधान करता है। इस अधिनियम से पहले किसी भी विधान में इसका प्रावधान नही था। अधिक जानकारी के लिए संपर्क करें–राष्ट्रीय जैव विविधता प्राधिकरण, पर्यावरण एवं वन मंत्रालय, भारत सरकार, पांचवी मंजिल, टीआईसीइएल बायो पार्क, तारामानी, चैन्नई–600113 (तमिलनाडू)

2. **प्रतिलिप्याधिक अधिनियम, 1957 :** जब भी व्यक्ति अपने मस्तिष्क में उत्पन्न विचार को किसी भी रूप में अभिव्यक्त करता है तो वह किसी न किसी कृति का सृजन करता है व स्वयं कृतिकार बन जाता है। इस रचियत कृति या उसके किसी महत्वपूर्ण अंश का किसी भी रूप में उपयोग करने का अधिकार ही कापीराइट है। भारत में कापीराइट का स्वामित्व मूलतः कृतिकार का होता है लेकिन कोई व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति या संस्था के नियोजन में रहते हुए अथवा संविदा के अन्तर्गत नियोजन या संविदा की शर्तों के अन्तर्गत काम करते हुए किसी कृति की रचना करें तो उस कृति में प्रथम अधिकार उसके नियोजक या उस व्यक्ति का होता है जिसके लिए वह संविदा पर काम करता है। किसी भी कृति में कापीराइट का स्वामित्व उस कृति के कृतिकार की मृत्यु के अगले कैलेण्डर वर्ष के आरंभ से 60 वर्ष तक का रहता है लेकिन फोटोग्राफ, सिनेमा फिल्म, ध्वनि रिकार्डिंग, कम्प्यूटर प्रोग्राम, वास्तु कलात्मक कृतियों, सरकारी कार्यों और अन्तर्राष्ट्रीय कार्यों में कृति के प्रकाशन से 60 वर्ष तक निहित रहता है। यह अवधि समाप्त होने पर कृति पर कापीराइट का अधिकार समाप्त हो जाता है और कृति पब्लिक डोमेन में चली जाती है अर्थात् तब उस कृति को कोई भी उपयोग कर सकता है। कापीराइट का यह अधिकार कोई भी कृतिकार स्वेच्छा से त्यागना चाहता है तो कापीराइट रजिस्ट्रार को नोटिस देकर त्याग सकता है। भारत में कापीराइट अधिनियम, 1957 लागू है व वर्ष 2012 में कापीराइट (संशोधित) अधिनियम, 2012 अधिसूचित किया गया है। अधिक जानकारी के लिए संपर्क करें– कापीराइट कार्यालय, चौथी मंजिल, जीवनदीप भवन, संसद मार्ग, नई दिल्ली–110 001

3. **डिजाइन अधिनियम, 2000 :** डिजाइन अधिनियम 2000 के अनुसार 'डिजाइन' शब्द का अर्थ है मात्र लाइनों के आकार, नमूनें, पद्धति, समाकृति, अलंकरण अथवा गठन के गुण अथवा तीन आयामी अथवा दोनों रूपों में हो, के लिए किसी औद्योगिक प्रक्रिया अथवा साधन, चाहे वह मैनुअल, यांत्रिक हो अथवा रासायनिक, पृथक–पृथक हो अथवा संयुक्त, द्वारा उपयोग किए गए रंग हैं, जो किसी तैयार वस्तु में अच्छे लगे और जिन्हे देखने मात्र से पहचाना जा सके, लेकिन इसके निर्माण की कोई पद्धति अथवा सिद्धान्त अथवा कोई ऐसी चीज जो पदार्थ में मात्र यांत्रिक साधन है, शामिल नहीं है और व्यापार तथा पण्य चिन्ह (मार्क) अधिनियम, 1958 में यथा परिभाषित कोई व्यापार चिन्ह (ट्रेडमार्क) अथवा भारतीय दण्ड संहिता में यथा परिभाषित कोई सम्पदा चिन्ह अथवा प्रतिलिप्याधिकार अधिनियम 1957 में यथा परिभाषित कोई कलाकृति शामिल नहीं है।

डिजाइन अधिनियम, 2000 में 2008 में संशोधन कर डिजाइन (संशोधन) अधिनियम, 2008 लागू किया गया है। अधिनियम के तहत औद्योगिक नीति एवं संवर्धन विभाग, वाणिज्य एवं उद्योग मंत्रालय के तहत महानियंत्रक, पेटेन्ट, डिजाइन और व्यापार चिन्ह डिजाइन नियंत्रक है। महानियंत्रक, पेटैंट, डिजाइन और व्यापार चिन्ह 'औद्योगिक डिजाइन विंग' की कार्यप्रणाली का संचालन और निरीक्षण करता है। डिजाइन अधिनियम के तहत औद्योगिक डिजाइन का पंजीकरण कोलकाता स्थित पेटेण्ट के मुख्यालय के 'औद्योगिक डिजाइन विंग' द्वारा किया जाता है। अधिक जानकारी के लिए संपर्क करें– महानियंत्रक, पेटैंट्स, डिजाइन्स एवम् ट्रेड मार्क्स, बौद्धिक सम्पदा भवन, अंताप हिल, एस.एम.रोड़, मुम्बई–400037

4. **सामानों का भौगोलिक चिन्ह (पंजीकरण और संरक्षण) अधिनियम, 1999 :** सामानों का भौगोलिक चिन्ह (पंजीकरण और संरक्षण) अधिनियम, 1999 को सामान से सम्बन्धित भौगोलिक चिन्हों के पंजीकरण और बेहतर संरक्षण की व्यवस्था करने के लिए अधिनियमित किया गया है। इस अधिनियम के अनुसार 'भौगोलिक चिन्ह' (सामान के संबंध में) शब्द का अर्थ है ऐसा चिन्ह जो ऐसे सामान को कृषि सामान, प्राकृतिक सामान अथवा विनिर्मित सामान जैसे देश के राज्य क्षेत्र अथवा क्षेत्र अथवा उस राज्य क्षेत्र में स्थान से उत्पन्न अथवा विनिर्मित हुआ हो, जहाँ ऐसे सामान की प्रदत्त गुणवत्ता, साख अथवा अन्य विशेषताएं अनिवार्य रूप से इसके भौगोलिक मूल के कारण है अथवा उस हालात में जहां ऐसे सामान विनिर्मित सामान है तो संबंधित सामान के उत्पादन अथवा प्रसंस्करण अथवा तैयार होने का कोई कार्यकलाप ऐसे राज्य क्षेत्र, क्षेत्र, मोहल्ले में, जैसा भी मामला हो, होता हो। इस अधिनियम के अन्तर्गत वाणिज्य और उद्योग मंत्रालय के औद्योगिक नीति और संवर्धन विभाग के अन्तर्गत पेटेंट, डिजाइन और ट्रेडमार्क महानियंत्रक, भौगोलिक चिन्हों के पंजीयक है। 'पेटैन्ट डिजाइन और ट्रेडमार्क महानियंत्रक', भौगोलिक चिन्ह रजिस्ट्री के कार्यकरण का निर्देशन व पर्यवेक्षण करते हैं। अधिक जानकारी के लिए संपर्क करें– भौगोलिक उपदर्शन रजिस्ट्री, बौद्धिक सम्पदा कार्यालय भवन, जी एस टी रोड़, गुंडी, चैन्नई–600032

5. **पेटैंट अधिनियम, 1970 :** पेटैंट से संबंधित मुख्य विधान पेटैंट अधिनियम, 1970 है। पेटैंट शब्द को एकाधिकार के रूप में परिभाषित किया जाता है जो उस व्यक्ति को दिया जाता है जिसने नया और उपयोगी चीज का आविष्कार किया है या मौजूदा वस्तु में सुधार किया या वस्तु की नई प्रक्रिया का आविष्कार किया है। इसमें नई खोजी गई वस्तु को विनिर्मित करने का विशिष्ट अधिकार या सीमित अवधि के लिए आविष्कारी प्रक्रिया के अनुसार वस्तु का विनिर्माण करने का अधिकार/आविष्कारों में उत्पाद या नई मिश्र धातु उत्पाद आविष्कार कहलाता है और इसके लिए पेटैंट को उत्पाद पेटैंट कहा जाता है जबकि आविष्कार जिसमें प्रक्रिया या ज्ञात अथवा नई मिश्र धातु बनाने की प्रक्रियाओं को प्रक्रिया आविष्कार कहा जाता है और इसके लिए पेटैंट प्रक्रिया पेटैंट कहलाता है। यह अधिनियम केवल प्रक्रिया पेटैंट की व्यवस्था करता है और खाद्य भेषज और रसायन जैसे उत्पादों के लिए आविष्कार को केवल ईएमआर (विशिष्ट विपणन अधिकार) प्रदान किया जाता है। भारत में पेटैंट प्रणाली का प्रशासन पेटैंट, डिजाइन, ट्रेडमार्क्स और भौगोलिक संकेत महानियंत्रक के पर्यवेक्षण में होता है। महानियंत्रक का कार्यालय औद्योगिक

नीति एवं संवर्धन विभाग, वाणिज्य एवं उद्योग मंत्रालय के अधीन कार्य करता है। महानियंत्रक पेटैंट कार्यालय और 'पेटैंट सूचना प्रणाली' (पीआईएस) का निदेशन और पर्यवेक्षण करता है। इस अधिनियम का संशोधन पेटैंट (संशोधन) अधिनियम, 2002 द्वारा और पेटैंट (संशोधन) अधिनियम, 2005 द्वारा 'ट्रिप्स' के करार के तहत भारत के दायित्वों की देखरेख करने के लिए किया गया है। संशोधन के बाद, उत्पाद पेटैंट (प्रक्रिया पेटैंट की बजाए) खाद्य, भेषज और रसायन उत्पादों के लिए दिया जा रहा है। अधिक जानकारी के लिए संपर्क करें– महानियंत्रक, पेटैंट, डिजाइन्स एवम् ट्रेडमार्क्स, बौद्धिक सम्पदा भवन, अंताप हिल, एसएम. रोड़, मुम्बई– 400037

6. **पौध किस्मों से संबंधित कानून :** पौध किस्मों और कृषक अधिकार अधिनियम, 2001 का अधिनियम पौध किस्मों और कृषक और पौध उगाने वालों के अधिकार के संरक्षण के लिए प्रभावी प्रणाली की स्थापना करने और पौधों की नई किस्मों का विकास प्रोत्साहित करने की व्यवस्था करने के लिए किया गया है। केन्द्र सरकार ने कृषि मंत्रालय में 'पौधों' की किस्मों और कृषक अधिकार संरक्षण प्राधिकरण' की स्थापना अधिनियम के विभिन्न प्रावधानों को प्रवृत्त करने के लिए और पौधों की नई किस्मों के विकास को सवंर्धित करने, उपाय एवं कृषकों और पौध उगाने वालों के अधिकारों के संरक्षण करने के लिए की है। केन्द्र सरकार ने पौध किस्मों की रजिस्ट्री भी स्थापित की है जो प्राधिकरण के मुख्यालय में स्थित होगी। प्राधिकरण को पौध किस्म महापंजीयक और पौध किस्मों के पंजीकरण के प्रयोजन के अन्य पंजीयकों की नियुक्ति करने की शक्ति दी गई है। अधिक जानकारी के लिए संपर्क करें–पौधा किस्म और कृषक अधिकार संरक्षण प्राधिकरण, भारत सरकार, कृषि मंत्रालय, कृषि एवं सहकारिता विभाग, एनएएससी काम्पलैक्स, डीपीएस मार्ग, निकट–टोडापुर गांव, नई दिल्ली–110012

7. **सेमी कंडक्टर एकीकृत परिपथ ले–आउट डिजायन, 2000 :** इस अधिनियम को सेमी कंडक्टर एकीकृत परिपथ ले–आउट डिजाइन की रक्षा और उससे संबंधित मामलों या उसके प्रासंगिक मामलों के लिए बनाया है। अधिनियम के अनुसार ''ले–आउट डिजायन'' का अर्थ है, ट्रांजिस्टर एवं अन्य परिपथ वाले तत्वों का ले–आउट और इसमें लेड वायर जो ऐसे तत्वों को जोड़ता है, और जिसे किसी भी तरह से सेमी कंडक्टर के रूप में व्यक्त किया जाता है, शामिल है। यहाँ ''सेमी कंडक्टर एकीकृत परिपथ'' का अर्थ है ट्रांजिस्टर वाले उत्पाद और अन्य परिपथ युक्त तत्व जो अभिन्न रूप से सेमी कंडक्टर सामग्री में निर्मित होते हैं या रोधक सामग्री या सेमी कंडक्टर सामग्री के भीतर होता है और जिसकी डिजायन इलेक्ट्रानिकी परिपथ संबंधी कार्य के निष्पादन के किए किया जाता है। अधिनियम का कार्यान्वयन इलेक्ट्रानिक्स और सूचना प्रौद्योगिकी विभाग, सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय द्वारा किया जाता है। यह अधिनियम भारत में रजिस्ट्री में दर्ज एकीकृत परिपथ ले–आउट डिजायन आईपीआर आवेदनों के लिए हैं। सेमी कंडक्टर एकीकृत परिपथ ले–आउट डिजायन रजिस्ट्री (एस.आई.सी.एल.डी.आर.) वह कार्यालय है जहां सृजित आईपीआर द्वारा एकीकृत परिपथ के ले–आउट डिजायन संबंधी आवेदन दर्ज किए जाते हैं। रजिस्ट्री का क्षेत्राधिकार सम्पूर्ण भारत है। अधिक जानकारी के लिए संपर्क करें–सेमीकंडक्टर इंटीग्रेटेड सर्किट लेआउट डिजाइन रजिस्ट्री, भारत सरकार, इलेक्ट्रानिक्स निकेतन, कमरा नं. 3015, 6, सीजीओ काम्पलैक्स, लोधी रोड़, नई दिल्ली–110003

8. ट्रेडमार्क अधिनियम, 1999 : ट्रेडमार्क अधिनियम, 1999 का अधिनियमन ट्रेडमार्क से संबंधित कानून में संशोधन एवं समेकन करने के लिए माल व सेवाओं के लिए ट्रेडमार्क का पंजीकरण और बेहतर संरक्षण मुहैया कराने और नकली मार्क का उपयोग रोकने के लिए किया गया है। यह पहले का 'ट्रेड एवं पण्य मार्क अधिनियम 1958 को रद्द करता है। ट्रेडमार्क अधिनियम, 1999 के अनुसार 'ट्रेडमार्क'' शब्द का अर्थ है एक चिन्ह जो ग्राफिय रूप में प्रस्तुत योग्य हो और जो एक व्यक्ति के माल और सेवाओं को दूसरों से अलग करने में समर्थ हो और इसमें माल की आकृति, उनकी पेकैजिंग और रंगों का मिश्रण शामिल हैं। अधिनियम के तहत औद्योगिक नीति एवं संवर्धन विभाग, वाणिज्य और उद्योग मंत्रालय के अधीन पेटैन्ट डिजायन और ट्रेडमार्क महानियंत्रक, ट्रेडमार्क का पंजीयक है। पेटेंट डिजायन और ट्रेडमार्क महानियंत्रक ट्रेडमार्क रजिस्ट्री के कार्यों का निदेशन और पर्यवेक्षण करता है। ट्रेडमार्क रजिस्ट्री, ट्रेडमार्क अधिनियम, 1991 और उसके अधीन नियमों को प्रवृत्त करता है और देश में ट्रेडमार्क से संबंधित विषयों में सुसाध्य कारक है। रजिस्ट्री का मुख्य कार्य ट्रेडमार्क का पंजीकरण करना है जो अधिनियम और नियमों के तहत पंजीकरण के लिए अर्हक होता है। अधिक जानकारी के लिए संपर्क करें– महानियंत्रक, पेटैंट्स, डिजाइन्स एवम् ट्रेडमार्क्स, बौद्धिक सम्पदा भवन, अंताप हिल, एस.एम.रोड़, मुम्बई–400037

बौद्धिक कृतियों का कोई और व्यावसायिक दुरूपयोग न करें इसलिए इनका समय रहते बौद्धिक सम्पदा अधिकार में पंजीकरण करवाना जरूरी है। इसके बावजूद चोरी छिपे इसका उपयोग व दुरूपयोग करने वालों के लिए सजा और जुर्माना दोनों का ही प्रावधान है। यही कारण है कि आज नामी गिरामी कंपनियाँ अपने उत्पाद के उपयोग के अधिकार को सुरक्षित रखने के लिए बौद्धक सम्पदा अधिकार प्रबन्ध के विशेषज्ञों को नियुक्त करती हैं।

- ब्याव मण मूंगां मैं ई हुज्या अर मण मोत्यां मैं ई हूज्या।

– विवाह एक मन मूँग में भी हो जाता है और मन मोतियों में भी। विवाह में जितना खर्च करो उतना ही लग जाता है।

- बोदी काचरी सूं ई काम पड़ जाया करें।

– पुरानी काचरी से भी सब्जी बनाने में कभी काम पड़ ही जाता है। कमजोर वस्तु भी किसी–न–किसी काम आती ही है।

–उजास ग्रन्थ माळा–20 से साभार

'वन वर्ल्ड – वन हेल्थ' अथवा 'एक संसार – एक स्वास्थ्य'

एफ.सी. टुटेजा, वरिष्ठ वैज्ञानिक, **जी. नागराजन,** वैज्ञानिक व.वे.
एवं **नेमीचंद बारासा,** वरिष्ठ तकनीकी अधिकारी
राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र, बीकानेर

वन हेल्थ का मतलब है कि स्थानीय, राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय स्तर के विभिन्न विषय–विशेषज्ञों के एकजुट संघर्ष से मनुष्यों, पशुओं व पर्यावरण में उचित स्वास्थ्य को पाना है। वन हेल्थ एक नया वाक्यांश है लेकिन इसकी अवधारणा प्राचीन काल के ग्रीक चिकित्सक हिपोक्रेटेस (460 ईसा पूर्व– 370 ईसा पूर्व) के समय से अभिज्ञान कराती है कि पर्यावरण से स्वास्थ्य प्रभवित होता है। इसलिए उन्होंने मानव स्वास्थ्य के लिए स्वच्छ वातावरण के विचार पर जोर दिया। इटालियन चिकित्सक गिओवंनी मारिया लान्सिसी (1654–1720) एक पथ प्रदर्शक महामारीविद्, चिकित्सक एवम् पशु चिकित्सक थे। उनका विशेष योगदान यह रहा कि मनुष्यों व पशुओं में बीमारियों के फैलने में प्राकृतिक पर्यावरण की भूमिका है। मनुष्य, पशु व पर्यावरण स्वास्थ्य आपस में जुड़े हैं, इस विचार का पुनः अवलोकन फ्रेंच क्रांति के समय डा. लौईस रेनी विल्लेर्मे (1782–1863) द्वारा किया गया। उन्नीसवीं सदी के अंत में जर्मन चिकित्सक, रूडोल्फ विरचो (1821–1902) ने एक नया वाक्यांश 'जूनोसिस' दिया और कहा कि मनुष्य व पशुओं की बीमारियों में न तो कोई फर्क है और न ही होना चाहिए। यह परिभाषा 'वन हेल्थ' केल्विन डब्लु. शवाबे (1927–2006), जो कि एक पशु महामारीविद् व परजीवी विज्ञान विशेषज्ञ थे, ने अपनी किताब वेटेरिनरी मेडिसिन एंड हुमन हेल्थ में लिखी व इसको बढ़ावा दिया।

नई संक्रामक बीमारियाँ

कई नई संक्रामक बीमारियाँ मनुष्यों व वन्य जीवो के आपसी सम्पर्क, खाद्यान्न उत्पादन के तीव्रीकरण व समाकलन तथा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के फैलने से हुईं। कुल 1415 रोगाणु जो मनुष्यों को ग्रसित करते हैं, उनमें से लगभग 61 प्रतिशत जीव जन्तुओं से फैले। उदाहरणतया कृतक प्राणी प्लेग व टाईफस का प्रेषण मनुष्यों में करते हैं। पालतू पशु खसरा, गल गंड रोग व काली खांसी के प्राथमिक स्त्रोत रहे। इसके विपरीत माईकोबैक्टीरीयम टयूबरक्लोसिस जीवाणु, मनुष्यों में पैदा हुए व पशुओं में फैले। चिपांजी में एड्स विषाणु का भण्डारण रहा व इससे मनुष्यों में फैला। वन्य जीवों के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से नई संक्रामक बीमारियों में बढ़ोतरी हुई। सन 1999 में वेस्ट नाईल विषाणु, कोवों से फैला व इसका प्रकोप न्यूयार्क शहर में हुआ। सन 2004 में वन्य जीव सरंक्षण संप्रदाय ने राकफेलर विश्वविद्यालय, न्यूयार्क में एक स्वास्थ्य विशेषज्ञों की सभा की और इसमें 'वन वर्ल्ड–वन हेल्थ' वाक्यांश दिया गया ताकि जमीन व वन्य जीवों के इस्तेमाल के मानव स्वास्थ्य पर प्रभाव की मान्यता

को बढ़ावा मिले। सन 1997 में बर्ड फ्लू (एच 5एन.1) महामारी हांगकांग में शुरू हुई। इस बीमारी ने पूरी दुनिया को यह मानने पर मजबूर कर दिया कि पशु व मानव स्वास्थ्य आपस में जुड़े हैं। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सूचना में विलंब व धीमी रोकथाम के उपायों के कारण यह विषाणु पूरे उत्तर–दक्षिण एशिया में फैल गया। पूरे विश्व में बर्ड फ्लू व अन्य जूनोटिक (पशुजन्य) बीमारियों के खतरे को मानते हुए, विश्व स्वास्थ्य संगठन, खाद्य और कृषि संगठन, जानवरों के लिए विश्व स्वास्थ्य संगठन ने एक योजना की रूपरेखा में, त्रिपक्षीय रजामंदी से पशु–मनुष्य–पर्यावरण स्वास्थ्य में ध्यान देने पर बल दिया।

तुलनात्मक चिकित्सा

जानवरों के बहुत से दीर्घकालिक रोग मानव रोगों के तुलनात्मक होते हैं जैसे कि हृदय रोग, कैंसर, मधुमेह, गठिया, दमा, जीर्ण इत्यादि। कभी–कभी जानवरों में बीमारी का पता मनुष्य से पहले चला। उदाहरण के लिए वन्य जीवों में भय उत्पन्न हृदय रोग का बहुत पहले वर्णन किया गया था। तत्पश्चात् मनुष्य में हृदय रोग का पता चला। तुलनात्मक चिकित्सा की अवधारणा बहुत पुरानी है। प्राचीन यूनानियों का महत्वपूर्ण संकेत कि जानवरों का अध्ययन करने से मनुष्यों के बहुत से रोगों का पता लगाया जा सकता है। फ्रेडरिक व्हाईट बेंटिंग तथा चार्ल्स बेस्ट नामक दो वैज्ञानिको के ऐसे महत्वपूर्ण कार्य ने इंसुलिन चिकित्सा को खोजा।

मांसपेशीय अस्थि प्रणाली विशेष रूप से दवा तुलनात्मक अध्ययन के लिए उपयुक्त है क्योंकि असाध्य रोगो में हड्डियां व जोड़ मनुष्य और जानवर में समकक्ष हैं। इसलिए एक प्रजाति से प्राप्त जानकारी को सीधे दूसरी प्रजाति में उपयोग किया जा सकता है। अतः इससे मांसपेशीय अस्थि विकारों के निदान एवं उपचार को बढ़ावा मिलता है। 1930 के दशक के प्रारंभ में, द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान अस्थिभंग के उपचार में यूनानी शल्य चिकित्सकों ने सटाडर स्पिलिंट का इस्तेमाल किया। शुरू में यह स्पिलिंट कुत्तों में अस्थिभंग के उपचार के लिए प्रयोग में लाया गया। 1940 व 50 के दशक के दौरान, पशु चिकित्सा शल्य चिकित्सक ने पहली बार मेरुरज्जा पिन्निंग का प्रदर्शन पशुओं में किया। इस प्रक्रिया को बाद में काफी उन्नत कर घोड़ों व मनुष्यों में अस्थिभंग के उपचार में प्रयोग किया गया। अस्थिभंग योगिकीकरण, संयुक्त जोड़ प्रतिस्थापन व उपास्थि उपचार जैसे कुछ उदाहरण हैं जिनमें दोनों दिशाओं में प्रवाहित ज्ञान से मनुष्य और जानवर दोनों को स्वास्थ्य लाभ मिला है।

पर्यावरण

शहरीकरण, वैश्वीकरण, जलवायु परिवर्तन तथा आतंकवाद के कारण यह आवश्यक हो गया है कि लोक नियोजन के लिए अग्रणी शक्ति अधिक शक्तिशाली व विभिन्न सार्वजनिक स्वास्थ्य के लिए हो। भूमि के उपयोग में भारी बदलाव, स्थलचर व समुद्री खाद्य उत्पादन इकाइयों के निर्माण और प्रचालन के कारण भूमि तथा जल स्रोतों में उत्पन्न सूक्ष्म जैविक और रासायनिक प्रदूषण, मानव व पशुओं दोनों के स्वास्थ्य के लिए नई चुनौतियां बन गई हैं। उदाहरणतया, कृषि के लिए वनकटाव पशुजन्य रोगों के उद्भव हो सकते हैं। स्वास्थ्य चिकित्सक अब पर्यावरणीय वैज्ञानिकों की मदद से रोगों के स्रोत को जानने से जीर्ण रोग पैदा करने वाले रसायनों को रोकने में लगे हैं ताकि रहने के लिए स्वस्थ वातावरण मिल सके। पशु चिकित्सक भी अब पर्यावरण स्वास्थ्य वैज्ञानिकों की मदद से रोगों के प्रकोप को रोकने व जन–स्वास्थ्य के लिए आपातकाल नियंत्रण में लगे हैं।

एक साथ स्वास्थ्य की अवधारणा में पूर्ण एकता लाने के लिए मानव स्वास्थ्य परिचर्या चिकित्सकों, पशु चिकित्सकों और जन स्वास्थ्य व्यावसायिकों को पर्यावरण स्वास्थ्य की एक छत के नीचे रह कर, एक साथ काम करने की जरूरत हैं। इसी तरह से विभिन्न चिकित्सा पद्धतियों जैसे कि आयुर्विज्ञान, होम्योपैथिक, आयुर्वेदिक, यूनानी आदि के समन्वयकरण करने से उचित उपचार की आवश्यकता है।

एक स्वास्थ्य आयोग

सन 2007 में डॉ. रोजर महर, अमेरिकन पशु चिकित्सा एसोसिएशन के अध्यक्ष ने डॉ. रोनाल्ड डेविस, अमेरिकन मेडिकल एसोसिएशन के अध्यक्ष से मुलाकात की व एक साथ मिलकर पशु और मानव स्वास्थ्य समुदायों को करीब लाने पर विचार–विमर्श किया। जून 2007 में अमेरिकन मेडिकल एसोसिएशन ने एकमत, एक स्वास्थ्य का प्रस्ताव पारित किया। जुलाई 2008 में अमेरिकन मेडिकल एसोसिएशन ने एक स्वास्थ्य पहल कार्यबल तैयार किया। एक स्वास्थ्य पहल कार्यबल बाद में एक स्वास्थ्य आयोग बना जिसके अध्यक्ष डॉ. रोजर महर बने। इसका मुख्यालय आयोवा स्टेट युनिवर्सिटी में है। एक स्वास्थ्य वेबसाइट, एक स्वास्थ्य सेवा से संबंधित सभी समाचार और जानकारी का संग्रहण विश्व स्तर पर कर रहा है।

अंतर्राष्ट्रीय प्रयास

यूरोपीय संघ ने अमेरिका में एक स्वास्थ्य के महत्व को पहचाना। सी.डी.सी. की एक स्वास्थ्य वेबसाइट है जिसमें सम्बंधित बैठकों की सूचियां हैं। पहली अन्तर्राष्ट्रीय एक स्वास्थ्य कांग्रेस की बैठक 14–16 फरवरी 2011 को मेलबोर्न, आस्ट्रेलिया में हुई। दूसरी अन्तर्राष्ट्रीय एक स्वास्थ्य कांग्रेस की बैठक 29 जनवरी – 2 फरवरी 2013 को बैंकाक, थाइलैंड में हुई। पहला एक स्वास्थ्य सम्मेलन 14–15 जुलाई 2011 को जोहन्सबर्ग, दक्षिण अफ्रीका में आयोजित किया गया। विश्व बैंक यह जांच कर रहा है कि किस प्रकार विश्व स्तर पर एक स्वास्थ्य दृष्टिकोण को प्रदर्शित करने की लागत प्रभावकारी हो ? जून 2012 में विश्व बैंक ने एक स्वास्थ्य के आर्थिक लाभों को प्रकाशित किया। एक स्वास्थ्य के महत्व को कई देशों के वैज्ञानिकों एवम प्रमुख संगठनों जैसे कि विश्व स्वास्थ्य संगठन, खाद्य और कृषि संगठन, जानवरों के लिए विश्व स्वास्थ्य संगठन, जानवर स्वास्थ्य के लिए इन्टरनेशनल फेडरेशन, विश्वव्यापी रेबीज नियंत्रण, न्यूजीलैंड, संरक्षण के लिए चिकित्सा केन्द्र, हुबनेट, एशिया एक स्वास्थ्य केन्द्र, कैलिफोनिया, विश्वविद्यालय पारिस्थितिकी संक्रमण के जानपदिक रोग विज्ञान नेटवर्क, उपसाला, स्वीडन द्वारा समर्थन मिला है।

सगपण करणौ दूर, रोटी खावणी चूर।
रिश्ता दूर करना चाहिए जिससे रोजाना का झंझट न हो तथा रोटी चूर कर खाने से स्वादिष्ट व सुपाच्य होती है।

–उजास ग्रन्थ माळा–20 से साभार

हिन्दी भारत की आत्मा ही नहीं, धड़कन भी है। यह भारत के व्यापक भू–भाग में फैली शिष्ट और साहित्यिक भाषा है।

–प्रो.दिलीप सिंह

साईबर : अपराध एवं सुरक्षा

दिनेश मुँजाल, सहायक मुख्य तकनीकी अधिकारी
राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र, बीकानेर

इन्टरनेट आज जिन्दगी का एक अभिन्न अंग बन गया है। आज करोड़ों लोग इन्टरनेट का इस्तेमाल कर रहे हैं तथा इस सुविधा पर इतना ज्यादा निर्भर हो गए हैं जिसकी कल्पना हमने कुछ वर्षों पहले तक नहीं की थी। साथ–साथ उनकी निर्भरता भी कम्प्यूटर, मशीन व इन्टरनेट पर लगातार बढ़ती जा रही है। आज इन्टरनेट ई–मेल व मैसेजिंग ही तुरंत सूचना संप्रेषण का एक महत्वपूर्ण साधन है।

इन्टरनेट के बढ़ते उपयोग व फायदे के साथ–साथ इसके गलत उपयोग द्वारा बहुत से अपराध भी तेजी से बढ़ने लगे हैं।

इस समय साईबर अपराध सबसे बड़ा खतरा बनता जा रहा है। पूरे विश्व के सरकारी तंत्र, पुलिस विभाग व इन्टैलीजैन्स सेल इस बड़ी समस्या से दो–चार हो रहे हैं। जहाँ सभी विभाग इस समस्या से लड़ने के उपाय सोच रहे हैं वहीं साईबर अपराधी नित नये तरीके अपनाकर नये अपराधों को अंजाम दे रहे हैं।

साईबर अपराधी के लिए कोई देश व सीमा की बाध्यता नहीं है। उनके द्वारा किए गए अपराध विश्व के किसी भी कोने में हो सकते हैं। जहाँ पर इन्टरनेट की उपलब्धता है।

ये अपराधी इन्टरनेट व कम्प्यूटर द्वारा अपने अपराधों को अंजाम देते हैं तथा इनके चंगुल से एक सामान्य इन्टरनेट उपभोक्ता से लेकर बड़े–बड़े उद्योग व सरकारी तंत्र भी नहीं बच सकते।

विश्व के सभी देशों में इन साईबर अपराधियों से बचने के लिए विशेष सुरक्षा उपाय व साईबर सैल है तथा इसकी शुरूआत भारत में भी हो चुकी है। भारत का सबसे पहला साईबर सैल मुम्बई में शुरू हुआ था तथा अब अनेक राज्यों में साईबर अपराधों की रोकथाम के लिए इसकी स्थापना हो चुकी है। भारत के विभिन्न राज्यों में स्थित साईबर सैल द्वारा जनता को जागरूक करने के लिए कई कार्यक्रम शुरू किए गए हैं जिससे इन अपराधों की संख्या में कमी लाई जा सके।

साईबर अपराध

साईबर अपराध की कोई विशेष परिभाषा नहीं है। साईबर अपराध एक ऐसा अपराध है जिसके अन्तर्गत ऐसी अपराधिक गतिविधियाँ आती है जो कम्प्यूटर, इन्टरनेट वर्ल्ड वाईड वेव के इस्तेमाल द्वारा अंजाम दी जाती है। भारतीय कानून में भी साईबर अपराध को अलग से परिभाषित नहीं किया गया है वरन् इसमें साईबर सुरक्षा के बारे में जरूर कानून की धारा 2 (बी) के अन्तर्गत कई प्रावधान दिए गए हैं। सुरक्षा कानून की धारा 2 (बी) में सूचना सुरक्षा, मशीनें, कम्प्यूटर एवं कम्प्यूटर संबंधी अन्य तंत्र, सूचना संप्रेषण व सूचना की कम्प्यूटर व अन्य स्रोतों में सुरक्षित डाटा आदि को अनाधिकृत प्रयोग से बचाना व अनाधिकृत उपलब्धता या उसमें बदलाव या नष्ट करने से बचाना शामिल है।

साईबर कानून

साईबर कानून में ऐसे सभी कानूनी मामलें आते हैं जिनमें इन्टरनेट या साईबर स्पेस वर्ल्ड वाईड वेव में सूचना

सम्प्रेषण संबंधी गतिविधियाँ आती है। साईबर कानून के अन्तर्गत ऐसी सभी गतिविधियाँ जो इन्टरनेट पर हो, इसे कानूनी दायरे में लाने हेतु की जाती है।

आईटी एक्ट 2000 में व्यापक सुधार के बाद लाया गया आईटी एक्ट 2008 साईबर कानून के नाम से जाना जाता है। साईबर कानून के अध्याय 11 में विशेष रूप से साईबर अपराध के लिए विभिन्न दंडनीय अपराधों के बारे में बताया गया है।

साईबर हमलें भी साईबर अपराध की श्रेणी में आते हैं जिसे हमें कम्प्यूटर नेटवर्क हमले (सीएनए) भी कहते हैं जिसमें एक कम्प्यूटर से दूसरे कम्प्यूटर पर नेटवर्क द्वारा उसे नुकसान पहुँचाने, डाटा नष्ट करने, डाटा बदलने, सूचना को रोकने, नष्ट करने या नेटवर्क को बंद करने की कोशिश की जाती है।

साईबर हमलों के प्रकार

1. सूचना उपलब्धता को रोकना
2. सूचना तंत्र को नष्ट करना
3. लॉजिक बम्ब
4. स्पूफिंग
5. स्पम ई–मेल भेजना
6. पासवर्ड बदलना
7. फिशिंग हमले
8. वायरस हमले
9. स्पाईवेयर हमले
10. ट्रॉजन हमले
11. मैसेज सर्विस को रोकना
12. वेबसाईट को नष्ट करना, बदलना या रोक देना आदि

साईबर सुरक्षा की दृष्टि से

ऐसे बहुत से उपाय हैं जिनसे हम अपने कम्प्यूटर व डाटा को सुरक्षित रख सकते हैं व अपने कम्प्यूटर नेटवर्क की गति तथा अपने व्यक्तिगत सूचनाओं को बचाकर दिमाग की शांति बनाए रख सकते हैं। इसमें हमें सर्वप्रथम अपने पासवर्ड को बहुत ही मजबूत रखना होगा। पासवर्ड में हमें एल्फाबैटिक छोटे/बड़े, न्यूमैरिक व विशेष चिन्हों का प्रयोग करके रखना होगा वह पासवर्ड कम से कम 8 अंकों का हो। इसमें कॉमन वर्ड, नाम, संख्या आदि रखने का मतलब हैकर्स को हमले के लिए न्यौता देना होगा। कभी अपने पासवर्ड को किसी अन्य वेबसाईट, मित्र या फोन पर शेयर न करें। चूंकि बहुत से वायरस आपके कम्प्यूटर से आपकी सभी व्यक्तिगत सूचना चुराने में सक्षम होते हैं। अतः सबसे पहले एक अच्छा एन्टी वायरस कम्प्यूटर में स्थापित कर लेना चाहिए तथा उसे निरन्तर नए वायरस से बचने हेतु अद्यतन करते रहना चाहिए। कम्प्यूटर पर फायरवॉल या अन्य उपकरण द्वारा अनाधिकृत प्रवेश व किसी अन्य व्यक्ति को कम्प्यूटर इस्तेमाल करने पर रोक लगाना होगा। एक अच्छी फायरवॉल व किसी भी हैकर या अटैकर को कम्प्यूटर नेटवर्क द्वारा कम्प्यूटर में घुसने से रोकने में सक्षम होता है। फायरवाल किसी भी अनाधिकृत व्यक्ति या कम्प्यूटर को आपके कम्प्यूटर से जुड़ने में रोक देगा। आज बाजार में बहुत से एन्टीवायरस फायरवॉल के साथ में मिलते हैं तो कुछ ऑपरेटिंग सिस्टम भी फायरवॉल साथ में ही देने लगे हैं। फॉयरवॉल सिर्फ सॉफ्टवेयर या सॉफ्टवेयर–हॉर्डवेयर का एक मिला–जुला रूप हो सकती है। जिससे वायरस हैकर्स अटैकर्स व अनाधिकृत ई–मेल, स्पम आदि को कम्प्यूटर पर पहुँचने से पहले ही रोक दिया जाता है।

वास्तव में भारतवर्ष में अंतर्प्रांतीय व्यवहार के लिए उपयुक्त राष्ट्रीय भाषा हिन्दी ही है।

–रवीन्द्र नाथ टैगोर

पशुधन विसर्जित मीथेन उत्सर्जन – एक सकारात्मक पहलू

फराह फरीदी, पी.एच.डी., अनुसंधान अध्येता
वनस्थली विद्यापीठ, निवाई, टोंक, राजस्थान

मीथेन एक महत्वपूर्ण ग्रीन हाऊस गैस है। कार्बन डाइ ऑक्साइड के पश्चात् यह गैस ग्लोबल वार्मिंग में अपना महत्वपूर्ण योगदान देती है। मानव जीवन पर इसके सीधे प्रभाव का कारण सूर्य से अवरक्त विकिरण (इन्फ्रारेड) का उच्च अवशोषण है (जलवायु परिवर्तन पर अन्तर सरकारी चयनक)। अनेक प्रयोगों से यह पता चला है कि 1980 से अब तक की समय सीमा में वायुमण्डलीय मीथेन कई गुना बढ़ी है। वर्तमान कुछ समय में वायुमण्डलीय मीथेन लगभग 10ppbv/भाग अरब प्रति मात्रा प्रति वर्ष की दर से कम हुई है किन्तु इसका कोई निश्चित कारण नहीं है।

मीथेन का लगातार वायुमण्डलीय स्तर बढ़ना चिन्ताजनक है। मानवीय स्रोतों में से कृषि क्षेत्र लगभग दो तिहाई प्रतिशत अपना योगदान देती है। मीथेन उत्सर्जन में जुगाली करने वाले पशु (रूमिनेंटस) भी एक अहम भूमिका का निर्वाह करते हैं।

वातावरण में मीथेन की बढ़ती एकाग्रता का कारण बढ़ती आबादी है। लगभग 70 प्रतिशत मानवीय स्रोतों से उत्सर्जन के अलावा वातावरण में जैविक कचरा, अनाक्सीय वातावरण एवं उनके प्रसंस्करण, मानव निर्मित झीलें, आद्रवातावरण वाले क्षेत्र, पशुओं का आन्तरिक किण्वन भी मीथेन के बढ़ने के लिए महत्वपूर्ण स्रोत है। वनों की कटाई एवं कृषि योग्य भूमि का चारागाह में रूपांतरण भी मीथेन की वृद्धि के महत्वपूर्ण (उद्योग) कारण है। कृषि एवं उससे सम्बन्धित स्रोत भी मीथेन के उत्सर्जन के महत्वपूर्ण स्रोत है जैसे कि चावल उगाना, पशुओं का कचरा, तेल एवं गैस ड्रिल, बायोमास के जलने से, कोयला और खनन। समुद्र एवं झीलें भी मीथेन के उत्सर्जन में अपना योगदान देती हैं। 205–245 लाख टन प्रतिवर्ष मीथेन उत्सर्जन में पशु कचरा 25 लाख टन का योगदान देता है। खाद्य एवं कृषि संगठन, 2006 के अनुसार पशुधन प्रेरित भूमि का उपयोग 2400 मिलियन टन CO_2 प्रति वर्ष उत्पन्न करता है।

जुगाली करने वाले पशुओं से मीथेन उत्सर्जन

जुगाली करने वाले पशु कुल वायुमण्डलीय मीथेन प्रवाह में लगभग 15 प्रतिशत योगदान देते हैं। जुगाली करने वाले मवेशियों में आँतों का किण्वन (एन्टेरिक फरमेंटेशन) करके पाचन क्रिया द्वारा मीथेन उत्सर्जन करना अद्वितीय है। इन पशुओं में अनाक्सीय या अवायवीय पाचन (अनेरोबिक डाइजेशन), अनाक्सीय जीवाणु के द्वारा किया जाता है जो मीथेन को बढ़ाने में सबसे महत्वपूर्ण है। लगभग दो तिहाई प्रतिशत मीथेन उत्सर्जन अनाक्सीय किण्वन के द्वारा एवं एक तिहाई प्रतिशत पशुधन खाद के द्वारा होता है। यदि पशुधन वृद्धि के सीधे अनुपात में मीथेन बढ़ती है तो वैश्विक पशुधन के द्वारा वर्ष 2030 में 60 प्रतिशत की वृद्धि की आशंका है।

शरीर रचना विज्ञान एवं पाचन तंत्र विभिन्न पशुओं में भिन्न है। एकल अमाशीय पशु जैसे सुअर, मुर्गी, घोड़े, खरगोश इत्यादि मामूली मीथेन उत्सर्जक हैं एवं इनसे वायुमण्डलीय मीथेन काफी कम उत्सर्जित होती है। अधिकतर जुगाली करने वाले पशुओं में एन्जाइम पाचन, पाचन तंत्र के आरम्भ में होता है एवं जीवाणु (माइक्रोबियल) पाचन अन्त में होता है किन्तु ऊँट जैसे जुगाली करने वाले पशुओं में जिन्हें छद्म जुगाली (सूडो–रूमिनेंटस) करने वाले भी कहा जाता है, उनमें एक बड़ा अनाक्सीय किण्वन कक्ष पाचन तंत्र के

आरम्भ में ही होता है। इन जीवाणु (माइक्रोबियल) कक्ष के द्वारा यह कार्बोहाइड्रेटस एवं पादप कोशिका–भित्ती को पचा पाते हैं जो कि इन्हें एक कुशल मीथेन उत्सर्जी बनाते हैं।

इन पशुओं में मीथेन का उत्सर्जन मीथेनोजनिक बैक्टीरिया (मीथेन उत्पन्न करने वाले जीवाणु) 'आर्किया' द्वारा होता है। रूमेन में यह मीथेनोजनस (मीथेनोजनिक बैक्टीरिया) केवल –300 एमवी के नीचे ऑक्सीकरण अपचयन संभावी वाले वातावरण में विकसित होते हैं। इनकी 60 से अधिक प्रजातियाँ विभिन्न अनाक्सीय वातावरण से पृथक की गई है–जिनमें से आरोग्यकर भूमि पूरक (सेनेट्री लेंडफिल्स), अनुपयोगी भूमि पूरक (वेस्ट लेण्ड फिल्स्) पीट का दलदल, पानी लदी हुई मिट्टी, नमक की झीलें, थर्मल वातावरण एवं जुगाली करने वाले पशुओं के आंत्र पथ (डाइजेस्टिव ट्रेक्ट) प्रमुख हैं। इनमें से पाँच प्रजातियाँ जो कि मीथेन उत्सर्जन से सम्बन्धित है–मीथेनोब्रेवीबैक्टीरियम और रूमीनेन्शियम पशुओं के आंत्र पथ से पृथक की गई हैं।

यह सूक्ष्म जीवाणु CO_2 का अपचयन करने के लिए हाइड्रोजन का उपयोग करते हैं। हाइड्रोजन उन्मूलन मीथेन का रूमेण में गठन करता है। यहाँ हाइड्रोजन एवं CO_2 मीथेन के अग्रदूत के रूप में प्रयोग होते हैं। यह रूमेण पारिस्थितिकी तंत्र में महत्वपूर्ण इलेक्ट्रॉन निवेश (सिंक) है। हाइड्रोजन किण्वन का प्रमुख अंग होने के बाद भी रूमेण में एकत्रित नहीं होता अपितु मिश्रित आबादी में पाये जाने वाले प्रोटोजोआ, कवक एवं कुछ जीवाणुवीय प्रजातियों द्वारा उपयोग कर लिया जाता है।

मीथेन उत्सर्जन को नियंत्रित करने के उपाय

मीथेन की लगातार हो रही वृद्धि को देखते हुए जलवायु परिवर्तन पर अन्तर सरकारी चयनक ने विकसित देशों की सरकार से उनके देशों में उत्पादित गैसों की मात्रा का मूल्यांकन करने के निर्देश दिए हैं एवं उनके उत्सर्जन को सीमित करने के लिए अनुसंधान विकसित करने को कहा है। मीथेन उत्पादन प्रति इकाई कम करने के लिए पशुधन उत्पादन में सुधार के अलावा अन्य महत्वपूर्ण एवं प्रभावी तरीके निम्नलिखित हैं :–

1. आशाजनक दृष्टिकोण के साथ उत्पादकता, पशुधन उत्पादन की क्षमता में सुधार एवं कृषि स्रोतों से मीथेन उत्सर्जन नियंत्रित करना।
2. कृषि प्रबंधन एवं इसकी अधिक से अधिक कुशलता से वायुमण्डलीय मीथेन का 10 से 15 प्रतिशत स्थिर हो सकता है।
3. लाभप्रदता बढ़ाने के साथ–साथ पर्यावरण संरक्षण, चराई प्रबंधन में सुधार, हमारा वास्तविक उद्देश्य होना चाहिए।
4. विभिन्न रणनीतियों से अलग खेती के तरीके, नई चराई प्रणाली, आवश्यक पोषक तत्वों के साथ पशु आहार का संपूरक भी मीथेन उत्सर्जन को सीमित कर सकता है।
5. उचित नल स्रोतों का उपलब्ध होना, जल की गुणवत्ता एवं उचित संशोधनों के साथ मृदा परीक्षण।
6. रूमेण में मीथेनोजनस की चयापचय क्षमताओं को चिन्हित करना एवं अधिक से अधिक इनकी आबादी को समझना।
7. मीथेन स्रोतों में कमी एवं मीथेन निवेश में बढ़ोतरी आवश्यक है।
8. रूमेण मीथेनोजनस के नियंत्रण के लिए दूसरे वैकल्पिक हाइड्रोजन निवेश (सिंक) का विकास जिससे कि हाइड्रोजन को मीथेनोजनस से दूर किया जा सकता है।
9. आर्किया को दबाने के लिए एवं एसीटोजनिक जीवाणु को बढ़ावा देने के लिए रूमेण किण्वन का जैविक नियंत्रण समझना चाहिए।
10. विशेष सहारक (कोफेक्टरस) जैसे हाइड्रोजन/कार्बन डाई ऑक्साइड जो कि आवश्यक है, इन्हें कम किया जाए।

11. नाइट्रेट काफी सीमा तक रूमेण मीथेनोजेनेसिस को कम करता है विषाक्तता हालांकि उच्च नाइट्रेट युक्त चारा, पशुओं में तीव्र विशाक्ता सिंड्रोम का कारण बन सकता है, इसे रोकने के लिए नाइट्रेट सुरक्षित प्राकृतिक यौगिकों एवं प्रोबायोटिक्स के संयोजन को काम में लिया जाए।
12. कम मीथेन उत्सर्जन करने वाले पशुओं का चयन।
13. भूमि पर उर्वरक का प्रयोग नियंत्रित किया जाए।
14. बाईफिडोबैक्टीयम जो कि एक आन्त्रिय, अनाक्सीय उपभेद है, वह बीटा गैलेक्टो–ओलिगो सैकेराइड का उपयोग करते हैं जो रूमेण के कुल अस्थिर वसीय अम्ल को बढ़ाते हैं एवं रूमेण में मीथेन उत्सर्जन को कम करते हैं।
15. खमीर संस्कृत संपूरक भी रूमेण के प्रदर्शन पर महत्वपूर्ण प्रभाव डालते हैं एवं उनके उत्सर्जन को कम करते हैं।
16. कार्बन खेती– कृषि और भूमि प्रबंधन के तरीकों में परिवर्तन के माध्यम से वनस्पति और मिट्टी में कार्बन भंडारण।
17. सरकारें अर्जित कार्बन क्रेडिट उन व्यक्तियों को बेच सकती है जो अपने व्यापार के संचालन के लिए ग्रीन हाऊस गैसों का उत्सर्जन कम करने के इच्छुक हैं एवं इसमें भाग लेने से किसानों एवं भूमि प्रबंधकों को अतिरिक्त आय की प्राप्ति हो सकती है। इस उद्देश्य के लिए किसानों एवं भूमि प्रबंधकों से सम्पर्क किया जा सकता है।

निष्कर्ष

कृषि मीथेन उत्सर्जन का एक प्राथमिक स्रोत है। सामान्य पाचन प्रक्रिया में जुगाली करने वाले पशु (रूमिनेंट्स) एक बड़े हिस्से में मीथेन उत्सर्जन करते हैं। लगातार बढ़ती हुई मीथेन को नियंत्रित करने की एवं मीथेन उत्सर्जन करने वाले स्रोतों में कमी करने की आवश्यकता है। ग्रीन हाऊस गैसों के उत्सर्जन में वृद्धि के बिना कृषि उत्पादकता को बढ़ाना समय की मांग है। मीथेन का उत्पादन करने वाले आर्किया सहित विभिन्न रूमेण माइक्रोबायोटा की जटिलता को समझना चाहिए।

साभार– श्री रौनक, छायाकार, बीकानेर

आमन्त्रित रचना

अश्विनी कुमार रॉय
व. वैज्ञानिक, डी.सी.पी.डिवीजन,
राष्ट्रीय डेयरी अनुसंधान संस्थान, करनाल (हरियाणा)

परिचय

पत्रिका के इस अंक में हमने एक ऐसे कवि की रचनाएं आमन्त्रित की है जो राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र, बीकानेर में बतौर एक वैज्ञानिक अपनी सेवाएं दे चुके हैं। डॉ.रॉय का साहित्यिक लेखन में पदार्पण इस केन्द्र से ही माना जा सकता है तथा राजभाषा के प्रगामी प्रयोग में भी आपका महत्वपूर्ण योगदान मिला। यहां रहते हुए आपका ऊँट के प्रति विशेष अनुराग जागा तथा अब तक इस पर बहुत–सी कविताएं लिख चुके हैं। आप बीकानेर में संस्थान की राजभाषा पत्रिका 'करभ' के संपादन से कई वर्ष तक जुड़े रहे तथा इसके लिए भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली की ओर से प्रदत्त 'गणेश शंकर विद्यार्थी हिन्दी कृषि पत्रिका पुरस्कार योजना' के अन्तर्गत वर्ष 2009 में सर्वश्रेष्ठ पत्रिका का सम्मान 'करभ' पत्रिका ने अर्जित किया। बीकानेर में आप नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति की विभिन्न गतिविधियों में सक्रिय रूप से भाग लेते रहे तथा नराकास द्वारा प्रकाशित पत्रिका 'संवाद' के सह–संपादक के रूप में भी अपनी सेवाएं दी हैं। 28 फरवरी 1960 को करनाल (हरियाणा) में जन्मे डॉ. रॉय वर्तमान में राष्ट्रीय डेयरी अनुसंधान संस्थान में वरिष्ठ वैज्ञानिक के पद पर कार्यरत हैं। विज्ञान से संबद्ध विषयों पर निरन्तर हिन्दी में लोकप्रिय लेख लिखना डॉ.रॉय की भाषा के प्रति अभिरूचि को प्रदर्शित करता हैं। अपने हिन्दी ब्लॉग के माध्यम से कविताएँ तथा सामयिक लेख लिखने में रूचि रखते हैं। अंग्रेजी, उर्दू तथा पंजाबी भाषाओं में भी ब्लॉग लेखन करते हैं। आपके लेख, गजलें, क्षणिकाएं एवं कविताएं देश की प्रतिष्ठित पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रहती है। प्रस्तुत है डॉ. रॉय द्वारा लिखित दो ताजा गज़लें.....

गज़ल (1)

तेरी आँखों से जो गिरा आंसू
मेरे गम से है आशना आंसू।

दिल में तेरा ख्याल आते ही
साथ मुझको ही ले गया आंसू।

गर जुबां कुछ भी बोल न पाए
दर्दे–दिल की है इक सदा आंसू।

जिनको पलकों पे हम बिठाते हैं
उनसे होते नहीं जुदा आंसू।

खून के घूँट जो पिलाता है
उसकी खातिर न बहेगा आंसू।

खास रिश्ता गमों से इनका है
हर खुशी में है एक सजा आंसू।

गम से लेकर खुशी के दामन तक
इब्तिदा आंसू, इन्तिहा आंसू।

मरहले जीस्त में कुछ ऐसे थे
घुट के आँखों में रह गया आंसू।

अब 'सहर' इनको यूं ही बहने दो
कहते हैं दिल की है शिफा आंसू।

गज़ल (2)

महकी यादों का हमसफ़र गुलशन
क्यूं उजड़ता है मोत'बर गुलशन।

सबको इससे ही प्यार हो जाए
ये वतन जैसे मेरा घर गुलशन।

गर खिजाओं की दस्तकें आएं
रोने लगता है खासकर गुलशन।

बागबानों पे ही नजर रखना
हो न जाए ये दर–बदर गुलशन।

जब भी बिगड़ा मिजाज मौसम का
सबको देता है सब खबर गुलशन।

गरचे देखा गलत नज़र से इसे
लेगा तुम जैसों की खबर गुलशन।

रोज़े–महशर तलक रहे कायम
ये वतन मेरा, मेरा घर गुलशन।

सब अँधेरे खिज़ा के साथ गए
क्यूं न देखे नई सहर गुलशन।

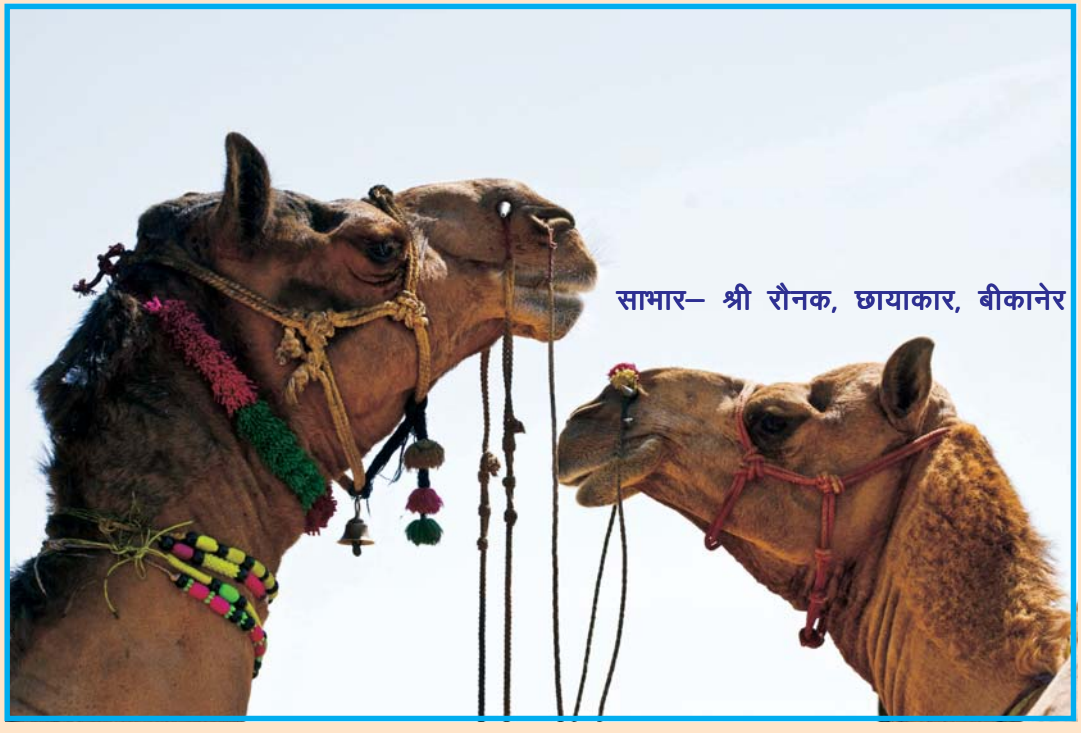

साभार– श्री रौनक, छायाकार, बीकानेर

बिजली की आँख मिचौली

सतनाम सिंह, वरिष्ठ तकनीकी सहायक
राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र, बीकानेर

लिखने बैठा मैं
बिजली हो गई गुल
कागज पर हाथ था मेरा
कलम हो गई गुम

क्या लिखूँ कविता में
कुछ नहीं मुझे पता
बिजली पर ही लगा सोचने
कितना रही सता
लेकर इसका आसरा यारों
जीना है बेकार
इससे तो चिराग जलाकर
कर ले बातें चार

क्यों जमाना इन
बिजली जैसी बातों में मशगूल
इतने में बिजली आ गई
मैं शिकवे गया भूल
याद आने लगी वो लड़की
बिजली था जिसका नाम
साथ मेरे जो पढ़ती थी
वो बिजली सा था काम
उसके चेहरे को देखूँ तो
दिल का बल्ब जल उठता था
कोई देखे दूसरा तो
करंट मुझे चुभता था

जब वो चलती थी तो
मेरे दिल का मीटर चलता था
सच कहूँ तो कविता का शब्द
उसकी याद के बटन से चलता था

आँखों में उसकी
मर्करी जैसी रोशनी है
जिन्दगी लगे जब बोझिल
उसकी यादें मेरी रोशनी है

ये बिजली 'बिजली' की यादों सी
आँख मिचौनी खिलाती है
महत्व समझो तुम इसका व्यर्थ नही जलानी है

वरना बिखरी यादों सी ये
कहीं इधर उधर चली जाएगी
बिजली लड़की जैसी
धरती से गुम हो जाएगी

औलाद के लिए

चालीस वर्ष गुजर गए हम को पता न चला,
हम दौड़ते रहे, सदा औलाद के लिए।
खुदा ने दिया था बहुत कुछ हमें,
लुत्फ न उठा सके, औलाद के लिए।।
अपनी खुशी को दफन किया,
महल पत्थरों के बनाये औलाद के लिए।
खुदा ही जानता है, फर्ज हमने निभाया है।।
औलाद फर्ज निभायेगी के नही, खुदा ही जानता है।
हक अरबी की दुआ है हक से, रहमत तु सदा रखना।
औलाद में मोहब्बत तू सदा बनाये रखना,
हर ग़म व मुसीबत से बचाए रखना।।
नेक राह पे तुं सदा चलाए रखना,
दिल खोलकर सभी को, बता देते है मगर
दगा बाज दोस्तों से सदा बचाए रखना।
करते रहे मोहताज की मदद,
मगर गलत राह से सदा बचाए रखना।।

अजीब लगता है

बचपन में साथ खेलते रहे,
झगड़ते रहे गले मिलते रहे।
उनसे जुदा होना अजीब लगता है,
वर्षों जिनका हाथ हाथ में रहा,
जब भी छुड़ाया हाथ, दर्द दोनों तरफ हुआ।।
उनसे हाथ मिलाना, अजीब लगता है।
जो अब तलक लोगों को हंसाता ही रहा।।
ग़मगीन लोगों का गम भुलाता ही रहा।
ग़म में डूबना उनका अजीब लगता है।।
वक्त बदलता है, सब कुछ बदल जाता है।
खुशी ग़म में, ग़म खुशी में बदल जाती है।।
वक्त के साथ अपना खून भी बदल जाता है।

एहसानुल हक ''हक अरबी''
कुचीलपुरा,बीकानेर–334001

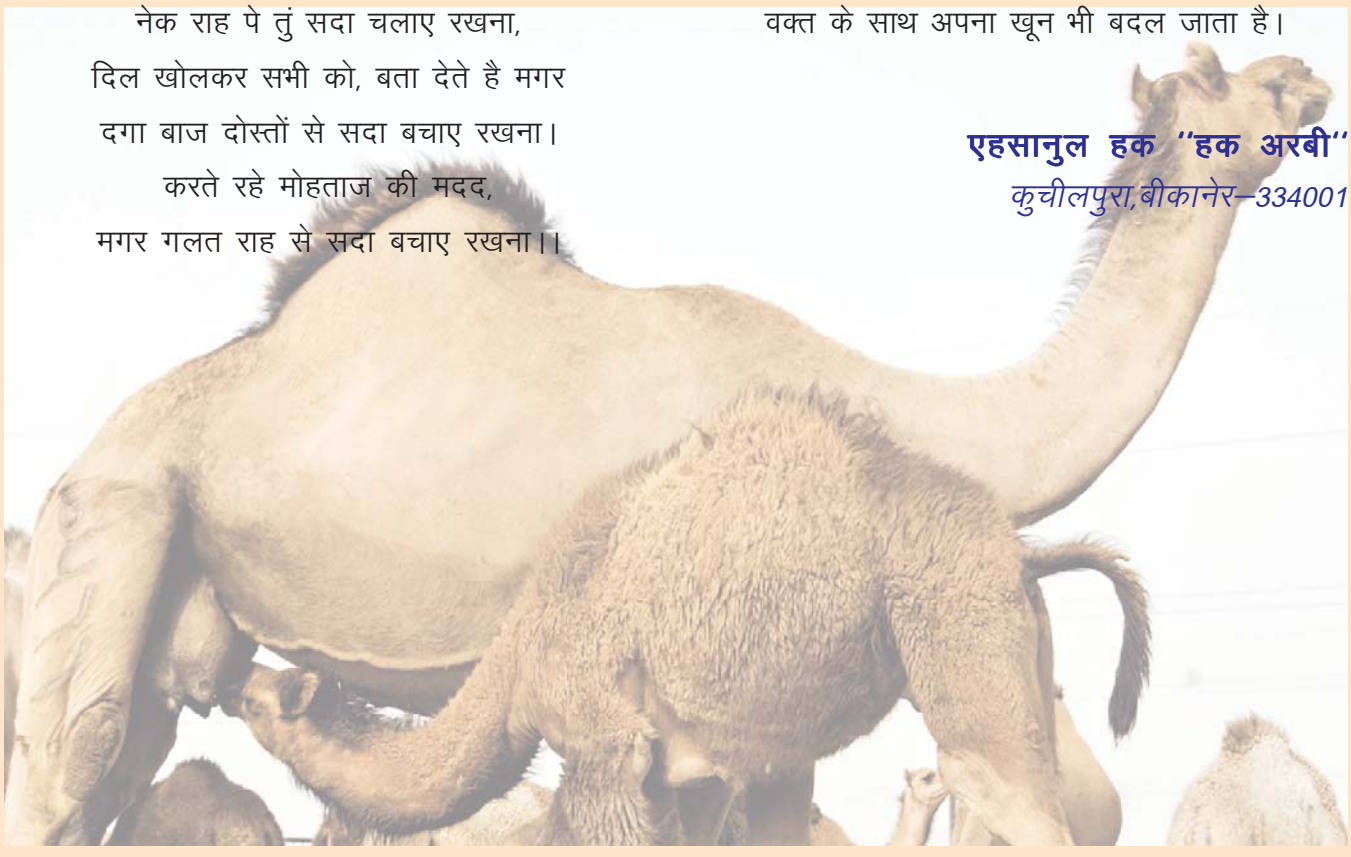

यायावरी और घुलती कुंठाएँ

संगीता सेठी, प्रशासनिक अधिकारी
ग्राहक सम्बन्ध प्रबन्धन मण्डल कार्यालय, बीकानेर (राजस्थान)

किसी भी सभ्यता और संस्कृति में रमे हुए लोग यह नहीं जानते कि जिस वातावरण में वो सांस ले रहे हैं वो उन्हीं की सोच–विचार आदतों, तौर तरीकों और बोली से पली–बढ़ी और विकसित हुई है। वो यह भी नहीं जानते कि उन्हीं के जैसी ना जाने कितनी सभ्यता और संस्कृति इस पूरे विश्व में फैली है। हर इंसान अपनी ही बनाई हुई चारदीवारी से बाहर निकलना नहीं चाहता या ज्यादा यूँ कहें कि उसे वहाँ से बाहर निकलने का अवसर भी नहीं मिलता। किसी एक सभ्यता और संस्कृति को विकसित करने वाले और उसे बनाए रखने वाले 90 प्रतिशत लोग जिस जमीन में पैदा होते हैं, वहीं दफन भी हो जाते हैं। उन्हें अपनी जमीन से कुछ इंच दूर जाने का मौका भी अपनी जिन्दगी में नहीं मिलता।

यायावरी जिन व्यक्तियों के हिस्से आती है वो ना केवल भाग्यशाली होते हैं बल्कि विश्व की सम्पूर्ण सभ्यता और संस्कृति को एक विशिष्ट कोण से देखने के अधिकारी भी होते हैं। यायावरी भी एक साहस है जो हर किसी के बस का काम नहीं है। कुछ ईश्वर प्रदत गुण भी यायावरी का हिस्सा बनते हैं। वो व्यक्ति जिसमें प्रकृति को प्रकृति के अनुसार ही जज्बा करने की क्षमता हो, लोगों को लोगों के अनुसार बात करने की कला हो, सभ्यता को सभ्यता की तरह अपनाने की इच्छा हो और संस्कृति में घुस कर उसी की तरह नाचने की ललक हो तभी यायावरी सफल हो सकती है। पर कई बार ईश्वर प्रदत्त गुण भी यायावरी में बाधाएँ देते प्रतीत होते हैं। बहुत से लोग ऐसे होते हैं जो पहाड़ पर बसे अपने रिश्तेदार को मिलने भी नहीं जा सकते क्योंकि वो बस यात्रा में चक्कर आना या मितली आना जैसी समस्याओं से जूझते हैं। कैलाश मानसरोवर जैसी विस्मित कर देने वाली यात्रा के लिए कोई लाख जतन करें लेकिन स्वास्थ्य की जाँच के आगे यायावरी की प्रबल इच्छा रखने वाला भी हार जाता है।

जीवन की यात्राएँ तो हर इंसान के हिस्से आती हैं पर एक जमीन से दूसरी जमीन, एक पहाड़ से दूसरे पहाड़ और एक समुद्र से दूसरे समुद्र की यात्रा का रोमांच हर किसी की थाती नहीं बन सका है। इन यात्राओं का यायावर सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को अपने कण–कण में समा लेने का जज्बा रखता है। एक जमीन से दूसरी जमीन पर जाने से ही ना जाने कितने रंग बदल जाते हैं और यायावर इंसान द्वारा बुनी हुई सभ्यता और संस्कृति के ताने–बाने से दंग रह जाता है। खान–पान, वेशभूषा, आचार–व्यवहार और भाषा तक बदली हुई दिखाई देती है। उत्तर भारत के राजस्थान प्रांत के बीकानेर शहर से दक्षिण भारत के कर्नाटक के बंगलुरु शहर में मेरा जाना हुआ। विचार यही था कि अपना भारत ही तो है ना ! पर ज्यों–ज्यों रेलगाड़ी स्टेशन दर स्टेशन बढ़ती जा रही थी, कतरा–कतरा सभ्यता–संस्कृति बदलते–बदलते इतने बदलाव पर आ गई थी कि मैं यायावर बनी ठगी–सी रह गई थी। मेरे साथ मेरा चार वर्षीय बेटा स्पन्दन था और जिस घर में मेरी बेटी की रिहायश थी वहाँ भी उनका चार वर्षीय बेटा श्रीहरि था। हमारी उस घर में खूब आवभगत हुई। विशुद्ध दक्षिण भारतीय खाना परोसा

गया। हम तो खाना–खाकर जो आनन्दित हुए उसकी सीमा उन्हें नही मालूम थी क्योंकि वो लोग तो अपनी सभ्यता और संस्कृति के दायरे से बाहर नहीं निकले थे लेकिन हम संस्कृति के बदलाव से खुश थे। सबसे ज्यादा आश्चर्य और सुखद बात यह थी कि स्पन्दन को केवल हिन्दी आती थी और श्रीहरि को केवल कन्नड़ या यूँ कहें कि स्पन्दन कन्नड़ नही समझता था और श्री हरि हिन्दी। फिर भी दोनों का बाल सुलभ मन एक दूसरे की तरफ से आकर्षित हुआ। दोनों पहले पास आए और खूब खेले। अब तो रोज का नियम यह हो गया कि दोनों रोज घण्टों खेलते और वो भी बिना भाषा जाने। श्रीहरि बिना किसी झिझक के कन्नड़ बोलता रहता और स्पन्दन हिन्दी बोलता रहता। उनके ये खेल आखिर झगड़े पर ही समाप्त होते। यानी सारी मानवीय भावनाओं का आदान–प्रदान होता वो ही बिना किसी भाषा के और हम भाषा को मुद्दा बना कर घूमते हैं। हम अपने–अपने स्थान के किसी कोने को किसी भाषा को विश्व के किसी कोने में जड़ना चाहते हैं या उसे जड़ कर महान भी साबित होना चाहते हैं। एशियाई देशों की यात्रा में सिंगापुर, मलेशिया बैंकॉक की यात्रा में काफी एशियाई समानताएँ थी। वहाँ सभ्यता और संस्कृति, खान–पान, रहन–सहन, पहनावे और भाषा के ढेर सारे अंतर भी समानताओं के सूत्र पकड़े हुए नजर आए। सिंगापुर में तो तीन संस्कृतियों का मिलन था। चीनी, हिन्दू और ईसाई जो संस्कृति के अंतर को भी समानता की झीनी चादर बाँधे नजर आई। मलेशिया में स्पष्ट मुस्लिम संस्कृति थी जहाँ सबसे ज्यादा आकर्षित करने वाली बात यह लगी कि महिलाएँ घर की देहरी से बाहर काम कर रही है ....चाहे वो पुलिस में हों या ड्राइवर, होटल–प्रबन्धन में हों या मॉल में सेल्स गर्ल के रूप में ....सब महिलाओं ने मजहबी सत्कार में अपने सिर को स्कार्फ से ढक रखा था। यहाँ मेरी यायावरी ने देखा कि मजहब या परम्पराएँ किसी के विकास में बाधक तो नहीं। हम अपनी सभ्यता–संस्कृति और परम्पराओं का निर्वाह करते हुए भी अपने आत्मविकास के रास्ते खोल सकते हैं। तब क्यों हम विकास के नाम पर परम्पराओं या मजहब को रोड़े अटकाने वाला मानने लग जाते हैं और मुद्दों की फेहरिस्त बना कर सिर–फुट्टोवल करने लग जाते हैं। बैंकॉक की यात्रा में थोड़ी खिन्नता है। मानवीय सभ्यता का खुलापन मन को आहत जरूर कर रहा था पर मेरी यायावरी मुझसे जरूर यह कह रही थी कि भले ही तुम्हारी सभ्यता और संस्कृति में इन सबकी जगह नहीं पर यहाँ सब मान्य है तो इस सभ्यता का भी सम्मान होना चाहिए। हो सकता है इनके पास इनका कोई न्यायोचित उत्तर है और हमारा गाइड "नोरा" हमें कह रहा था "इन पर विचार ना करें सबका अपना जीवन है जो चाहे जैसे जीए"

भाषा की समस्या यहाँ भी थी पर इशारे काफी थे समझने के लिए खरीददारी के नाम पर वस्तुओं को देखना–परखना तो खुद ही था पर कीमत के नाम पर दुकानदार अपने कैल्कुलेटर पर कीमत टाइप करके हमारे सामने रख देते थे। भले ही मुँह में जुबान नहीं थी पर कैल्कुलेटर पर लिखे अक्षर पूरे विश्व के लिए एक समान थे।

यायावरी के लिए और पैर फैलाएँ तो एक समन्दर से दूसरे समन्दर में तो सभ्यता–संस्कृति का और भी ज्यादा अंतर दिखाई दे जाता है। योरोप देशों की यात्रा करें तो हमें इंसानों की शक्लो–सूरत भी बदली हुई नजर आती है। जहाँ गुलाबी रंगत लिए गौर वर्ण और सुनहरे बाल उन्हें एशियाई सांवली सूरत और काले बालों से काफी अलग करता है वहीं भाषा के तमाम शब्द भी अलग नजर आते हैं। तन–बदन का पहनावा और खान–पान भी अलग दिखाई देता है। मेरी जर्मनी यात्रा ने मुझे दो समुद्रीय दूरियों के

बीच पनपी सभ्यता और संस्कृति का मंजर भी दिखा दिया। तवे की रोटी और तेल में भुनी सब्जियों के बजाय ओवन में सिके मैदे की लोई और उबली हुई सब्जियाँ जल्दी से स्वीकार्य नहीं थी। ये मैदे की लोईयाँ फूल कर जालीदार बन जाती हैं शायद हमारी दादी–नानी इसीलिए इन्हें डबल–रोटी कहती थी और हम बरसों तक इसे डबल–रोटी कहते चले आए हैं। विकसित देशों की श्रंखला में जर्मनी देश भले ही अपने पैर पसार गया पर अपनी सभ्यता एवं संस्कृति और भाषाई संवाद के दायरे से कब बाहर निकल पाया। वहाँ अंतर्राष्ट्रीय भाषा भी काम नहीं आई और तुरत–फुरत जर्मनी सीखना हमारे बस की बात कहाँ थी। इशारों को अपनी भाषा बनाया तो कहाँ रुक पाया हमारा काम....चरैवैति–चरैवैति....और चलते गए हर गली....हर नुक्कड ....हर शहर को भांपते रहे। भले ही ढेर सारे मुद्दों पर हमारी सभ्यता और संस्कृति भिन्न थी फिर भी बहुत सारे मुद्दों पर हम एक महसूस किए जा रहे थे। मानवीय संवेदनाओं में हमारे चेहरों पर मुस्कानें, माथे पर बल, आँखों में प्यार, आँसू की बून्दें, माँ का ममत्व या पिता की डाँट वैश्विक मंच पर सब एक जैसे दिखाई दे रहे थे। हाँ ! मैंने एक पार्क में माँ को अपने बच्चे को गोद में खिलाते देखा। गोरे–चिट्टे बच्चे को देख मेरी बाहें यकायक फैली तो वो बच्चा माँ की तरफ मुँह कर उसके सीने से चिपक गया और माँ का चूमना यहाँ भी स्वाभाविक प्रक्रिया थी। एक मेट्रो स्टेशन पर पिता ना जाने क्यों अपने 7–8 वर्षीय बेटे को डाँट रहा था। बच्चा इतनी जोर से रो रहा था कि पूरा मेट्रो स्टेशन का ध्यान उसकी तरफ आकर्षित हो रहा था। अब उसकी माँ की समझाइश तो जारी थी। मेरा मन मुझसे ही सवाल कर रहा था कि दुनिया देखने और जानने के लिए या कि संवेदनाएँ महसूस करने के लिए भाषा की कहाँ जरूरत है ? लेकिन हम हैं कि मुद्दों की दायरों से बाहर निकलना ही नहीं चाहते। अभी तो जमीन से जमीन और समन्दर से समन्दर तक के सफर में यायावरी हुई है। अपनी सभ्यता और संस्कृति, मजहब और परम्पराओं, पहनावे और खाने को लेकर बने एक दायरे में रहने वाला मन दूसरी सभ्यता और संस्कृति को देख कर दंग ही नहीं रह जाता बल्कि मन में पलती कुंठाएँ भी घुलने लगती तो फिर सुनिता विलियम्स मन की किस स्थिति में पहुँची होंगी जिसमें ब्रह्माण्ड का चक्र लगाया और ब्रह्माण्ड के दूर किसी कोने से पृथ्वी को एक बिन्दु के रूप में देखा होगा यानी पूरी पृथ्वी केवल एक रंग, एक जाति, एक पहनावे और एक खान–पान में रंगी दिखाई दी होगी। काश ! विश्व का हर प्राणी यायावर बनें और हर यायावर सुनीता विलियम्स जैसा ब्रह्माण्ड यात्री। यायावरी से जो कुंठाएँ घुली हैं उनमें हर सभ्यता–संस्कृति के लिए सम्मान उभर कर बाहर आया है। एक सभ्यता–संस्कृति में जीने वाले लोग दूसरी सभ्यता और संस्कृति के लोगों को उनके पहनावे पर कटाक्ष करते हैं " अरे यह क्या पहना ? " " अरे यह कौनसा खाना है ?" "अरे भई हमसे बात करनी हैं तो अपनी भाषा की गिट–पिट छोड़ों " " यह कौनसा व्रत रखा है? " इन सब मुद्दों के बजाय हमें हर सभ्यता और संस्कृति के पहलू में प्रवेश कर उसका सम्मान करना सीखना होगा। यह मानना होगा कि हर सभ्यता के अपने मायने हैं और हर संस्कृति की अपनी एक चाल है। हर भाषा की अपनी एक मिठास है और हर पहनावे की अपनी एक आन। यायावरी सिखाती है कि इन तमाम मुद्दों को उठाने की नहीं घोलने की जरूरत हैं।

❀❀❀❀

कापीराइट कानून : पुस्तकालय के संदर्भ में

रामदयाल रैगर, वरिष्ठ तकनीकी अधिकारी एवं **डी. सुचित्रा सेना,** वरिष्ठ वैज्ञानिक
राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र, बीकानेर

कापीराइट साहित्यिक रचना, नाट्य रचना, संगीत रचना तथा कलात्मक रचना, चलचित्र रचना तथा ध्वनि रिकॉर्डिंग के रचयिताओं को कार्य करने, उसका पर्याप्त भाग करने या प्राधिकृत करने हेतु दिया गया अधिकार है। कापीराइट कानून के पीछे यह मंशा थी कि साहित्यिक कृतियों के रचयिताओं (लेखकों, संगीतकारों, कलाकारों) के साथ ही ज्ञान के प्रसार एवम् अंतरण में लगे हुए प्रकाशकों, प्रसारणकर्ताओं, फोनोग्राम एवंम् फिल्म निर्माताओं के अधिकारों की रक्षा की जाए। इनकी कृतियों की गैर–कानूनी तरीके से प्रतिकृति बनाने से रोकने का कानूनी अधिकार दिया गया था। परम्परागत पुस्तकों के संदर्भ में देखें तो ऑफसेट मुद्रण प्रक्रिया तथा फोटोस्टेट मशीनों ने कापीराइट के तहत संरक्षण के लिए समस्या पैदा कर दी है।

इंटरनेट एंव डिजिटल क्रांति के बाद तो कापीराइट कानून के लिए और समस्या पैदा हो गई है। सूचना का डिजिटाइजेशन होने के कारण प्रतिकृति का अर्थशास्त्र, नेर्टवर्किंग से वितरण का अर्थशास्त्र तथा विश्वव्यापी जाल से प्रकाशन का अर्थशास्त्र बदल गया है। वर्तमान परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए कापीराइट कानून में भी आवश्यक बदलाव किए गए हैं।

कापीराइट प्रणाली के दो उद्देश्य है :

1. प्रतिभावान लोगों को रचनात्मक कार्यों हेतु प्रोत्साहित करना।
2. इनके द्वारा किये गए कार्यो के उपयोग के बदले प्रोत्साहन राशि उपलब्ध कराना।

कापीराइट में निम्नलिखित कृतियों को सम्मिलित किया जाता है :–

1. कलात्मक रचना – जैसे कि चित्रकारी, मूर्तिकला, रेखाचित्र, फोटोग्राफ, आलेख।
2. संगीत रचना।
3. ध्वनि रिकॉर्डिंग।
4. चलचित्र रचना – किन्हीं माध्यम पर दृश्य रिकार्डिंग की कोई रचना।
5. सरकारी कृतियाँ।
6. साहित्यिक रचना : कम्प्यूटर कार्यक्रम, सारणियाँ और संकलन जिसके अन्तर्गत कम्प्यूटर डाटाबेस है।
7. नाट्य रचना – इसमें गायन, नृत्य रचना या किन्ही प्रदर्शन में मनोरंजन का कोई रूप, नाट्य प्रबन्ध या अभिनय आता है।

- भारत में कापीराइट एक्ट 1957 में बनाया गया व जनवरी 1958 से प्रभावी हुआ। इस एक्ट में 1983, 1984, 1992, 1994 तथा 1999 में पाँच बार संशोधन किए गए। 1957 में बनाए गए कानून से पूर्व देश में 1914 का कापीराइट एक्ट लागू था। यह एक्ट ब्रिटिश

सरकार द्वारा 1911 में बनाए गए एक्ट का ही विस्तारित रूप था। भारत में कापीराइट (संशोधन) विधेयक –2012, 7 जून 2012 को पास किया गया व 14 मार्च 2013 को राजपत्र में अधिसूचना जारी की गई।

- कापीराइट–पंजीकरण जरूरी नही

कापीराइट किसी भी कृति के तैयार हो जाने पर या प्रथम प्रकाशन के साथ ही उत्पन्न हो जाता है। इसके रजिस्ट्रेशन की कोई आवश्यकता नही है लेकिन इसके सबूत के लिए कि किसी विशेष कृति पर किस व्यक्ति का कापीराइट है–कापीराइट के रजिस्ट्रेशन के लिए रजिस्ट्रार की व्यवस्था की है।

भारत में कापीराइट ऑफिस केन्द्रीय सरकार द्वारा नियुक्त कापीराइट रजिस्ट्रार के अधीन कार्य करता है व वर्तमान में इसका कार्यालय चौथी मंजिल, जीवनदीप भवन, संसद मार्ग, नई दिल्ली – 110001 में स्थित है।

- कापीराइट के उल्लंघन पर दण्डात्मक प्रावधान भी किए गए हैं। इसका प्रथम बार उल्लंघन करने पर 6 माह से 3 साल तक की कैद व पचास हजार से 2 लाख रूपये तक का जुर्माना तथा दूसरी बार या बार – बार उल्लंघन करने पर एक से तीन साल तक की कैद व एक लाख से दो लाख तक का जुर्माना लगाया जा सकता है।

- भारत सरकार ने कापीराइट कानून को प्रासंगिक एवं लागू करने हेतु कई कदम उठाए हैं। भारत ने अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं से द्विपक्षीप संधियाँ की हैं। देश में अनुसंधान अध्येताओं, वैज्ञानिकों, औद्योगिक जगत तथा नीति–निर्माताओं में जागरूकता लाने हेतु कई संगठन स्थापित किए हैं। उदाहरण के लिए विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग की प्रौद्योगिकी सूचना, पूर्वानुमान एवं मूल्यांकन परिषद के अधीन, 'पेटैन्ट सुसाध्य केन्द्र' का गठन, वैज्ञानिक तथा औद्योगिक अनुसंधान परिषद द्वारा बौद्विक सम्पदा अधिकार पर जर्नल का प्रकाशन, जैव प्रौद्योगिकी विभाग द्वारा जैव प्रौद्योगिकी पेटैन्ट फसिलिटेशन सैल का गठन, परमाणु ऊर्जा विभाग, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद तथा सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय में बौद्विक सम्पदा अधिकार सैल का गठन किया गया है।

- भारत सरकार ही नही वरन् कई निजी संगठनों एवं कारपोरेट संगठनों ने भी औद्योगिक सम्पदा सैल का गठन किया है। जैसे कि 'फैडरेशन ऑफ इंडियन चैम्बर्स एण्ड कामर्स एंड इंडस्ट्री' द्वारा संस्थापित 'बौद्विक सम्पदा विकास संस्थान' का गठन।

पुस्तकालय एवं कापीराइट

पुस्तकालय सेवाएँ तथा सामग्री, शिक्षा, अनुसंधान तथा सूचना संप्रेषण में सहायक होती है। इसके बिना व्यापार सामाजिक तथा आर्थिक विकास में सुधार संभव नहीं है। पुस्तकालय रचयिता में छोर प्रयोक्ता के बीच ज्ञान, विचार तथा सूचना संप्रेषण हेतु संचार माध्यम होने के कारण कापीराइट विधान से संबंध रखती है। पुस्तकालय को रचयिता व छोर प्रयोक्ता के हितों की रक्षा करते हुए संसाधनों के उपयोग हेतु कुछ छूट दी गई है। इस अधिनियम में यह व्यवस्था की गई है कि पुस्तकालय चाहें तो किसी पुस्तक की प्रतिलिपि करा सकते हैं किंतु वह विक्रयार्थ प्रस्तुत नही की जा सकती। कोई भी व्यक्ति निम्नलिखित कार्यों के लिए कापीराइट मालिक की अनुमति के बिना कापीराइट सामग्री का उपयोग कर सकता है –

– निजी, व्यक्तिगत या गैर व्यावसायिक (अनुसंधान एवं अध्ययन) हेतु एक प्रतिलिपि,
– शिक्षण कार्य हेतु
– उद्धरण हेतु
– आलोचना या समीक्षा हेतु,
– न्यायिक कार्यवाही हेतु

उपर्युक्त के अलावा रचयिता को भुगतान कर सामग्री के उपयोग सुविधा ली जा सकती है।

(अ) किसी रचना के कापीराइट का उल्लंघन निम्न लिखित तरीके से हुआ माना जाएगा –

यदि कोई व्यक्ति कापीराइट प्राप्त व्यक्ति या कापीराइट पंजीयक द्वारा इस अधिनियम के तहत लाइसेंस प्रदान किए बिना अथवा प्रदान किए लाइसेंस की शर्तो का उल्लंघन करके अथवा इस अधिनियम के तहत सक्षम अधिकारी द्वारा आरोपित शर्तों का उल्लंघन करके : (i) कुछ ऐसा करता है जो इस अधिनियम द्वारा केवल कापीराइट प्राप्त व्यक्ति को ही करने का विशिष्ट अधिकार प्राप्त हो, अथवा (ii) जनता के सक्षम ऐसी कोई रचना लाने के लिए इस्तेमाल किए जाने वाले स्थान को लाभ हेतु प्रयोग की अनुमति देता है, जहाँ रचना को सामने लाना उसके कापीराइट का उल्लंघन है, सिवाय तब यदि उसे यह ज्ञात न हो और ऐसा विश्वास करने का आधार भी न था कि जनता के सामने ऐसी रचना लाने से कापीराइट का उल्लंघन होगा, अथवा

यदि कोई व्यक्ति : (i) किराए पर देकर बिक्री करता है, या बेचता है या किराए पर देता है, या व्यापार के जरिए प्रदर्शित करता है या किराए पर बेचने की पेशकश करता है, अथवा (ii) व्यापार के प्रयोजनार्थ या तो वितरण करता है या इस हद तक कार्रवाई करता है कि कापीराइट प्राप्त व्यक्ति पर प्रतिकूल असर पड़ता हो, या (iii) व्यापार के रूप में जनता में प्रदर्शित करता है, या (iv) रचना की उल्लंघनकारी प्रतियों का भारत में आयात करता है।

(ब) प्रसारण निर्माण अधिकार या कलाकार का अधिकार का निम्नलिखित द्वारा उल्लंघन नही माना जाएगा–

– ध्वनि रिकॉर्डिंग या दृश्य रिकॉर्डिंग करने वाले व्यक्ति के निजी प्रयोग के लिए अथवा वास्तविक शिक्षण या अनुसंधान के प्रयोजनो के लिए ध्वनि रिकॉर्डिंग या दृश्य रिकॉर्डिंग करना, अथवा
– किसी प्रदर्शन या सामायिक घटनाओं की रिपोर्टिंग में प्रसारण के अंशों को अथवा वास्तविक समीक्षा, शिक्षण या अनुसंधान के लिए उचित रूप से प्रयोग में लाना, अथवा
– कोई अन्य कार्य, आवश्यक रूपान्तरों एवं परिवर्तनों के साथ जो अधिनियम के तहत कापीराइट के उल्लंघन नहीं माने जाते।

कापीराइट अधिनियम मानव संसाधन विकास मंत्रालय में उच्च शिक्षा विभाग द्वारा प्रशासित किया जाता है।

❀❀❀❀

राजभाषा संबंधी कार्यक्रम एवं गतिविधियाँ

हिन्दी पखवाड़ा, 2012

हिन्दी दिवस, 2012 के शुभ उपलक्ष्य पर राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र, बीकानेर के निदेशक डॉ.नितीन वसन्तराव पाटिल द्वारा दिनांक 11–25 सितम्बर तक हिन्दी पखवाड़ा मनाए जाने की विधिवत् घोषणा के साथ यह पखवाड़ा प्रारम्भ हुआ। डॉ.पाटिल ने कहा कि राजभाषा के प्रगामी प्रयोग एवं उपयुक्त वातावरण के सृजन हेतु पूरा पखवाड़ा उत्साही व मनोरम वातावरण में आयोजित किया जाए तथा इस दौरान आयोजित प्रतियोगिताओं में अधिकाधिक वैज्ञानिकों, अधिकारियों एवं कर्मचारियों की भागीदारिता सुनिश्चित की जाएं।

इस अवसर पर केन्द्र की राजभाषा कार्यान्वयन समिति द्वारा पूरे पखवाड़े के दौरान आयोजित कार्यक्रमों/गतिविधियों की रूपरेखा तैयार की गई। श्रीमान शरद पवार, माननीय कृषि एवं खाद्य प्रसंस्करण उद्योग मंत्री, भारत सरकार द्वारा हिन्दी दिवस, 2012 संबंधी प्राप्त प्रेरणाप्रद ''संदेश'' को केन्द्र के मुख्य भवनों पर लगाया गया।

(1) हिन्दी में आशुभाषण प्रतियोगिता

हिन्दी पखवाड़े के अन्तर्गत दिनांक 14.09.2012 को आयोजित हिन्दी में आशुभाषण प्रतियोगिता के अवसर पर सर्वप्रथम डॉ.एस.अय्यप्पन, माननीय सचिव एवं महानिदेशक, कृषि अनुसंधान और शिक्षा विभाग एवं भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली द्वारा हिन्दी दिवस संबंधी जारी अपील का वाचन किया गया। केन्द्र के कार्मिकों में अभिव्यक्ति कौशल की अभिवृद्धि हेतु आयोजित हिन्दी में आशुभाषण प्रतियोगिता में औचक दिए गए विषय पर प्रतिभागियों ने अपने उन्मुक्त व मूल्यवान विचार रखे।

इस अवसर पर केन्द्र निदेशक डॉ.नितीन वसन्तराव पाटिल ने प्रतियोगिता को एक सार्थक प्रयास बताते हुए सभी प्रतियोगियों को बधाई दी तथा कहा कि कार्मिकों हेतु विचारों की अभिव्यक्ति एवं व्यक्तित्व निर्माण से जुड़े ऐसे कार्यक्रम निहायत ही जरूरी व महत्वपूर्ण हैं क्योंकि हमारा

केन्द्र एक अनुसंधान केन्द्र होने के साथ–साथ पर्यटन क्षेत्र के रूप में भी जाना जाता है तथा यहां आने वाले किसी भी सैलानी, विद्यार्थी, आमजन की जिज्ञासा का निराकरण करने में प्रत्येक कार्मिक सक्षम बनें, प्रतियोगिता आयोजन के पीछे मूल उद्देश्य भी यही है। उन्होंने कहा कि व्यक्ति द्वारा विचारों का मंथन परिवार, समाज एवं राष्ट्र हेतु एक स्वस्थ वातावरण के निर्माण में सहायक होता है। उसकी अभिव्यक्ति अधिक प्रखर व प्रभावी बनती है। डॉ.पाटिल ने निर्णायकों को अवगत करवाते हुए कहा कि हमारा केन्द्र निरन्तर राजभाषा के अधिकाधिक प्रयोग हेतु विभिन्न कार्यक्रमों एवं गतिविधियों का संचालन करता है। इसका प्रभाव कार्मिकों के कार्यक्षेत्र में भी दृष्टिगोचर होता है। अपने अभिभाषण के अन्त में डॉ. पाटिल ने राजभाषा के उत्तरोत्तर विकास में योगदान देने हेतु सभी कार्मिकों को प्रोत्साहित किया।

इस अवसर पर निर्णायक के रूप में डॉ. एन.डी. यादव, अध्यक्ष, केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान का क्षेत्रीय केन्द्र, बीकानेर ने कहा कि सभी प्रतिभागियों ने बहु आयामी विचारों का प्रकटन कर प्रतियोगिता को रोमांचक दौर में पहुँचा दिया। विचारों की अभिव्यक्ति को समय–सीमा में बांधते हुए प्रस्तुत करना बहुत मुश्किल होता है। उन्होंने भाषा पर बोलते हुए कहा कि अब हिन्दी के उत्तरोत्तर विकास हेतु इसे व्यवहार में लाया जाना चाहिए। उन्होंने हिन्दी भाषा को एक संकल्प रूप में अपनाए जाने की भी बात कही। इस अवसर पर अन्य निर्णायक के रूप में डॉ. विजय कुमार, वैज्ञानिक, राष्ट्रीय अश्व अनुसंधान केन्द्र, अश्व उत्पादन परिसर, बीकानेर ने भी अपने विचार रखे। प्रतियोगिता के अन्त में प्रभारी राजभाषा डॉ.निर्मला सैनी द्वारा अध्यक्ष महोदय, निर्णायकों, प्रतियोगियों को धन्यवाद ज्ञापित किया गया।

पुरस्कार विजेता

	अ वर्ग	ब एवं स वर्ग
प्रथम	डॉ. सुमन्त व्यास	श्री हरपाल सिंह
द्वितीय	डॉ. उमेश कुमार बिस्सा	श्री अविनाश कुमार
तृतीय	डॉ. सज्जन सिंह	श्री सतनाम सिंह
प्रोत्साहन	डॉ. चंपक भकत	डॉ. दाऊलाल बोहरा
द वर्ग		
श्री सुखदेव प्रजापत		

(2) राजभाषा कार्यशाला

हिन्दी पखवाड़े के अन्तर्गत दिनांक 17.09.2012 को एक दिवसीय राजभाषा कार्यशाला का आयोजन किया गया। प्रभारी राजभाषा डॉ.निर्मला सैनी द्वारा कार्यशाला के उद्देश्य एवं महत्व पर प्रकाश डाला गया। राजभाषा कार्यशाला में व्याख्यान प्रस्तुति हेतु श्रीमान सुनील कुमार बोड़ा, वरिष्ठ व्याख्याता, चौपड़ा उच्च माध्यमिक विद्यालय, बीकानेर द्वारा 'हिन्दी भाषा की वैज्ञानिकता' विषयक व्याख्यान प्रस्तुत किया गया। श्री बोड़ा ने अपने व्याख्यान में कहा कि 14 सितम्बर, 1949 को हिन्दी भाषा को राजभाषा के रूप में अंगीकार किया गया। हिन्दी भाषा में अनगिनत विशेषताएं विद्यमान है। यह आम आदमी की समझ वाली भाषा है तथा उच्च व्याकरण एवं शब्दावली के कारण यह प्रत्येक क्षेत्र में अपनी पकड़ बनाती जा रही है। आज विश्व में इसे तीसरा स्थान प्राप्त है। श्री बोड़ा ने कहा कि हिन्दी भाषा राजभाषा के रूप में भी प्रभावी बनती जा रही है, कार्यालयीन पत्रावलियाँ, राजकीय दस्तावेजों आदि में इसे देखा जा सकता है।

उन्होंने हिन्दी भाषा की संभावनाओं को उजागर करते हुए कहा कि इसमें पर्याप्त शब्दावली उपलब्ध है, इन्हें प्रचलन में लाकर अधिकाधिक शोध, वैज्ञानिक एवं तकनीकी आलेख हिन्दी में प्रस्तुत किए जाने चाहिए, इसकी महत्ती आवश्यकता है।

अध्यक्ष के रूप में डॉ.समर कुमार घौरूई ने कहा कि हिन्दी के अधिकाधिक प्रयोग हेतु केन्द्र की विभिन्न राजभाषा गतिविधियों में विद्वजनों के व्याख्यान निश्चित रूप से प्रेरणादायी है तथा ये कार्यालय में राजभाषा के अधिकाधिक प्रयोग में सहायक होते हैं, सभी कार्मिक आज की कार्यशाला से लाभान्वित हुए हैं, अर्जित ज्ञान को कार्यक्षेत्र में अवश्य अपनाया जाना चाहिए। इस अवसर पर केन्द्र के वरिष्ठ वैज्ञानिक डॉ.राघवेन्द्र सिंह ने कहा कि हिन्दी भाषा आज संचार का एक सशक्त माध्यम बन कर उभर रही है। साथ ही हमारे देश में उभरता हुआ बाजारवाद इस बात का द्योतक हैं कि भविष्य में हिन्दी भाषा की प्रबल संभावनाएं हैं। केन्द्र के प्रधान वैज्ञानिक डॉ.सज्जन सिंह ने भी अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा कि हमें समन्वित व धीरे–धीरे ही सही परंतु निरन्तर प्रयासों के माध्यम से हिन्दी भाषा की प्रगति का मार्ग प्रशस्त करना चाहिए। केन्द्र के प्रधान वैज्ञानिक डॉ.शरत चन्द्र मेहता ने दूरदर्शन एवं अन्य चैनलों में हिन्दी भाषा की महत्ता बताते हुए कहा कि एकता में अनेकता वाले इस देश के लोगों में यह भाषा ज़हन में बसी है तभी हिन्दी आगे बढ़ रही है। इस अवसर पर प्रभारी राजभाषा डॉ.निर्मला सैनी ने अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा कि हमें अपने दैनन्दिन कार्यों में पूर्णतया हिन्दी को अपनाना चाहिए। हमारी अभिव्यक्ति जब पूर्णतया हिन्दी में होती है तो इसे लेखन में भी शत प्रतिशत व्यवहार में लाया जाना चाहिए। इससे हिन्दी दिन–दुनी रात चौगुनी प्रगति करेंगी। अन्त में सभी के प्रति धन्यवाद ज्ञापित किया गया।

(3) हिन्दी में निबन्ध प्रतियोगिता

हिन्दी पखवाड़े के अन्तर्गत दिनांक 20.09.2012 को हिन्दी में निबन्ध प्रतियोगिता का आयोजन किया गया। इसमें परीक्षार्थियों को विविध विषय वर्गीय निबन्ध शीर्षक दिए गए। वैज्ञानिकों, अधिकारियों एवं कर्मचारियों ने अच्छी संख्या में भाग लेते हुए प्रतियोगिता को सफल बनाया।

पुरस्कार विजेता

	अ, ब एवं स वर्ग	द वर्ग
प्रथम	डॉ. बलदेव किराडू	श्री राजेश कुमार
द्वितीय	डॉ. देवेन्द्र कुमार	श्री दुर्गा सिंह
तृतीय	डॉ. राकेश पूनियाँ	श्री माणक लाल किराडू
प्रोत्साहन	श्री वी.के. पान्डे	

(4) कवि सम्मेलन

हिन्दी पखवाड़ा (11–25 सितम्बर, 2012) के अन्तर्गत ही दिनांक 22.09.2012 को आयोजित कवि सम्मेलन में बीकानेर नगर के जाने–माने कवियों ने अपनी अर्थपूर्ण व सामयिक कविताओं की रौचक स्वरूप में प्रस्तुति कर श्रोताओं का भरपूर मनोरंजन किया। कवि सम्मेलन में शिरकत करने वाले कवियों में सर्वश्री भवानी शंकर व्यास 'विनोद', गौरीशंकर जी मधुकर, संजय आचार्य 'वरूण', विजय कुमार धमीजा एवं बुनियाद हुसैन 'जहीन' शामिल थे। केन्द्र के अलावा भाकृअनुप अधीनस्थ बीकानेर स्थित संस्थान एवं केन्द्र के वैज्ञानिकों, अधिकारियों एवं कर्मचारियों ने भी इस कवि सम्मेलन में अपनी उपस्थिति दी।

कवि श्री भवानी शंकर व्यास 'विनोद' वरिष्ठ साहित्यकार एवं समीक्षक ने कार्मिकों को 'गंजापन' एवं 'तोंद को नमस्कार' जैसी हास्य भरी कविताओं के माध्यम

से श्रोताओं का भरपूर मनोरंजन किया वहीं श्री गौरीशंकर जी मधुकर ने 'निरक्षरता' एवं 'मोबाइल' पर रचनाओं का वाचन कर खूब गुदगुदाया। हास्य कवि श्री विजय कुमार धमीजा ने 'धर्मपत्नी' व 'देश के हालात' पर अपनी हास्य व व्यंग्यात्मक कविताओं के माध्यम से वाहवाही लूटी। युवा कवि श्री संजय आचार्य 'वरूण' ने 'माँ' (शीर्षक) पर रचना प्रस्तुत कर श्रोताओं की संवेदना को जगाया। युवा शायर श्री बुनियाद हुसैन 'जहीन' ने 'आए थे बिन लिबाज' में विषयक शेर प्रस्तुत कर जीवन की सच्चाई की ओर सभी का ध्यान खींचा।

इस अवसर पर केन्द्र के निदेशक एवं कार्यक्रम अध्यक्ष डॉ.नितीन वसन्तराव पाटिल ने कहा कि कार्यक्रम में आए हुए अतिथि गण बीकानेर नगर की साहित्य जगत की धरोहर हैं जो निरन्तर अपनी रचनात्मक व चिंतक सोच से समाज को नई दिशा प्रदान करते हैं। डॉ.पाटिल ने कहा कि हमारा केन्द्र ऊँटों पर अनुसंधान के साथ–साथ राजभाषा के प्रगामी प्रयोग हेतु विभिन्न कार्यक्रमों एवं गतिविधियों का नियमित आयोजन करता है। कवि सम्मेलन के इस कार्यक्रम का संचालन प्रभारी राजभाषा राजभाषा डॉ.निर्मला सैनी ने किया तथा अन्त में केन्द्र निदेशक, अतिथि कवियों, परिषद अधीनस्थ बीकानेर स्थित केन्द्रों एवं संस्थानों एवं केन्द्र के कार्मिकों का धन्यवाद ज्ञापित किया गया।

(5) हिन्दी पखवाड़ा : पुरस्कार वितरण एवं समापन समारोह

केन्द्र द्वारा आयोजित हिन्दी पखवाड़ा के पुरस्कार वितरण एवं समापन समारोह (25 सितम्बर, 2012) के मुख्य अतिथि के रूप में पधारे प्रो. के.एम.एल. पाठक, माननीय उप महानिदेशक (पशु विज्ञान), भाकृअनुप, नई दिल्ली एवं अतिथियों द्वारा दीप प्रज्जवलित कर कार्यक्रम का शुभारम्भ किया गया। मुख्य अतिथि प्रो. के.एम.एल. पाठक ने अपने अभिभाषण में कहा कि हिन्दी में आपसी संवाद सुखद अनुभूति दिलाता है। इस भाषा की किसी भी भाषा से प्रतिस्पर्द्धा नहीं, यह सभी भाषाओं को साथ लेकर चलने वाली एक ऐसी भाषा है जो हमारे देश में सर्वत्र बोली जाती है। अतः आपके केन्द्र के हिन्दी पखवाड़े के शुभ अवसर पर मैं सभी से यह आह्वान करता हूँ कि समन्वित रूप से हिन्दी को अपनाएं, इसे आगे बढ़ाएं। प्रो. पाठक ने वैज्ञानिकों से हिन्दी भाषा को अधिकाधिक रूप में अपनाए जाने की बात पर जोर देते हुए कहा कि यहां का उष्ट्र पालक, उष्ट्र–हितधारक, विद्यार्थी एवं आमजन हिन्दी भाषा को अच्छी तरह से बोलता एवं समझता है, अतः अनुसंधानों के यथोचित लाभ हेतु आवश्यकता इस बात की है कि उनसे ज्यादा से ज्यादा आपसी संवाद, वैज्ञानिक एवं तकनीकी प्रचार–प्रसार सामग्री का प्रकाशन, हिन्दी भाषा के माध्यम से ही किया जाए। मुख्य अतिथि महोदय ने पखवाड़े के अन्तर्गत आयोजित प्रतियोगिताओं के सभी विजेताओं को बधाई देते हुए हिन्दी भाषा के प्रति समर्पित भाव रखने हेतु प्रोत्साहित किया।

इस अवसर पर केन्द्र के निदेशक एवं कार्यक्रम अध्यक्ष डॉ. एन.वी. पाटिल ने अतिथियों को बताया कि राजभाषा के प्रगामी प्रयोग हेतु केन्द्र द्वारा पूरे पखवाड़े में विभिन्न प्रतियोगिताओं का आयोजन कर कार्मिकों में राष्ट्रीय चिंतन

को मुखारबिन्द करने हेतु उनकी अभिव्यक्ति कौशल एवं लेखन को प्रतियोगिताओं के माध्यम से परखा गया। पखवाड़े की सफलता इस बात की द्योतक है कि इसमें सामूहिक एवं सकारात्मक प्रयास, ऐसे कार्यक्रमों को वृहत् स्तर पर आयोजित करने की ओर हमें प्रोत्साहित कर रहे हैं। डॉ.पाटिल ने कहा कि हिन्दी पखवाड़े जैसे कार्यक्रम केन्द्र के हित में जुड़ने के महत्वपूर्ण अवसर है, इससे न केवल कार्मिकों के स्वयं अपितु केन्द्र की प्रगति का मार्ग भी प्रशस्त होता है। उन्होंने कहा कि आज केन्द्र के पास 40 से अधिक हिन्दी में लघु पुस्तिकाएं है, 'करभ' नाम से वार्षिक पत्रिका का नियमित रूप से प्रकाशन होता है, वार्षिक प्रतिवेदन पूर्णतया हिन्दी में भी प्रकाशित किया गया है, केन्द्र को राजभाषा में सराहनीय कार्यों हेतु परिषद एवं नगर राजभाषा, बीकानेर द्वारा समय–समय पर पुरूस्कृत किया जा चुका है। अपने अभिभाषण में डॉ.पाटिल ने जम्मू एवं कश्मीर के दो कुबड़ीय ऊँट पालकों हेतु हिन्दी एवं उर्दू में भी केन्द्र के प्रकाशन की मांग को सामने रखा।

केन्द्र के इस शुभ अवसर पर विशिष्ट अतिथि के रूप में आमन्त्रित डॉ. एस.सी. गुप्ता, सहायक महानिदेशक, भाकृअनुप, डॉ. एस.एम.के. नकवी, निदेशक, केन्द्रीय भेड़ एवं ऊन अनुसंधान संस्थान, अविकानगर एवं डॉ. बी.के.बेनीवाल, अधिष्ठाता, राजुवास, बीकानेर द्वारा भी राजभाषा के उत्तरोत्तर

विकास हेतु हिन्दी को अपनाए जाने के विचार प्रकट किए गए। साथ ही भाकृअनुप,नई दिल्ली के प्रधान वैज्ञानिक डॉ. विनीत भसीन, बीकानेर स्थित परिषद के संस्थान/केन्द्रों के कार्मिकों ने भी इस कार्यक्रम में शिरकत की।

इस अवसर पर मुख्य अतिथि प्रो.के.एम.एल.पाठक के कर कमलों द्वारा केन्द्र की राजभाषा पत्रिका 'करभ' के नवम् अंक का भी लोकार्पण किया गया। प्रो.पाठक द्वारा हिन्दी पखवाड़े के अन्तर्गत आयोजित विभिन्न प्रतियोगिताओं के विजेताओं को पुरूस्कृत किया गया। केन्द्र के वरिष्ठ वैज्ञानिक डॉ.राघवेन्द्र सिंह द्वारा धन्यवाद ज्ञापित किया गया।

राजभाषा कार्यशाला : 30 मार्च, 2013

राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र, बीकानेर द्वारा राजभाषा नीति कार्यान्वयन के अन्तर्गत 30 मार्च 2013 को प्रातः 11.30 बजे एक दिवसीय राजभाषा कार्यशाला का आयोजन किया गया। राजभाषा प्रबन्धन एवं तकनीकी विषय पर आयोजित इस कार्यशाला में राजकीय डूँगर महाविद्यालय, बीकानेर के श्री ब्रजरतन जोशी, व्याख्याता, हि.सा. एवं अलीगढ़ मुस्लिम युनिवर्सिटी के प्रोफेसर श्री बी.एल. भादानी को आमन्त्रित किया गया। कार्यशाला में श्री जोशी द्वारा 'राजभाषा प्रबन्धन' एवं श्री भादानी द्वारा 'उष्ट्र : ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में' विषयक व्याख्यान प्रस्तुत किए गए। कार्यशाला

में केन्द्र के निदेशक एवं कार्यक्रम अध्यक्ष, आमंत्रित वक्ताओं तथा उपस्थित सभी वैज्ञानिकों, अधिकारियों एवं कर्मचारियों का स्वागत करते हुए कार्यशाला सत्र प्रारम्भ किया गया।

केन्द्र की राजभाषा इकाई के तकनीकी अधिकारी श्री नेमीचंद ने सर्वप्रथम आयोजित कार्यशाला के उद्देश्य एवं महत्व पर प्रकाश डालते हुए बताया कि आयोजित कार्यशाला का मुख्य ध्येय राजभाषा के बेहतर प्रबन्धन एवं केन्द्र से सम्बद्ध उष्ट्र प्रजाति के परिप्रेक्ष्य में ऐतिहासिक जानकारी का अवलोकन करना भी है।

कार्यशाला के इस अवसर पर 'राजभाषा प्रबन्धन' विषयक व्याख्यान प्रस्तुत करते हुए श्री ब्रजरतन जोशी ने कहा कि एक अनुसंधान संस्थान होते हुए भी यहां राजभाषा के प्रति समर्पित भाव से कार्य किया जा रहा है, भाषा के प्रति विनयशीलता एक प्रेरणास्पद कार्य की श्रेणी में आता है। श्री जोशी ने अपने व्याख्यान में प्रबन्धन हेतु भाषा के प्रति समर्पण को पहला सूत्र बताया, इसी क्रम में विपणन, उत्पादन एवं विज्ञापन के अन्तर्गत रचनाकार, प्रशासक, प्रचारक, संचार, शिक्षक कार्य करते हैं। उन्होंने हिन्दी भाषा को कमत्तर भाषा न मानते हुए इसे स्वाभिमान के रूप में लेने की बात कही। श्री जोशी ने आवश्यकता जताई कि हम अपनी दृष्टि परिष्कृत करें। उन्होंने इस बात की सउदाहरण पुष्टि करते हुए जानकारी दीं कि हिन्दी भाषा एक वैश्विक भाषा होने के कारण आज जापान, यूरोप आदि में लगभग 125 हिन्दी विभाग एवं 130 विश्वविद्यालय हिन्दी भाषा पर सक्रिय रूप से कार्य कर रहे हैं। श्री जोशी ने हिन्दी भाषा के उत्तरोत्तर विकास गति को बनाए रखने हेतु कहा कि उन कार्यों को हिन्दी भाषा के माध्यम से आगे लाना चाहिए जिनमें हमें सक्षमता हासिल हैं। उन्होंने राजभाषा कलैण्डर, राजभाषा अधिकारी एवं विभिन्न सामयिक बातों पर भी अपने विचार प्रस्तुत किए।

इस अवसर पर अन्य अतिथि वक्ता के रूप पधारे श्री बी.एल. भादानी ने 'उष्ट्र : ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में' विषयक व्याख्यान पर बोलते हुए कहा कि उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र इस पशु से जुड़े विभिन्न पहलुओं पर उल्लेखनीय कार्य कर रहा हैं, वैज्ञानिक उपकरणों/अनुसंधान कसौटी पर यह संस्थान उष्ट्र से जुड़ी हर समस्या का निदान खोजने का प्रयास करता हैं परंतु आवश्यकता इस बात की भी हैं कि 300–350 वर्षों में उष्ट्र पालन में आए बदलाव का भी आकलन किया जाए। श्री भादानी ने कहा कि यह अध्ययन का विषय होना चाहिए कि इतने लम्बे अर्से तक ऊँट का पालन कैसे संभव हो पाया है ? इस पशु का ऐतिहासिक महत्व रहा है तथा इससे जुड़ी प्रत्येक वस्तु को सामने लाया जाना चाहिए। उन्होंने इस अवसर पर राजभाषा के संबंध में बोलते हुए कहा कि हिन्दी की पूरी एक विकास यात्रा है और इसमें सम्पन्नता कैसे आई ? यह जानना भी जरूरी हैं।

इस अवसर पर केन्द्र निदेशक एवं कार्यक्रम अध्यक्ष डॉ. एन.वी.पाटिल ने अतिथि वक्ताओं द्वारा प्रस्तुत व्याख्यानों को महत्वपूर्ण बताते हुए कहा कि जब कोई भी विद्वान व्यक्ति अपनी जीवन अनुभव यात्रा को एक सीमित समय–सीमा में प्रस्तुत करता हैं तो यह उसके संपूर्ण जीवन का सार है, अतः व्याख्यानों द्वारा प्रस्तुत विचार हमें पुनः चेतनता प्रदान करने का काम करते हैं, इनका लाभ उठाया

जाना चाहिए। डॉ. पाटिल ने केन्द्र की अनुसंधान रिपोर्ट को द्विभाषी रूप में (हिन्दी व अंग्रेजी) प्रकाशित करने की बात कहते हुए कहा कि आज जरूरत इस बात की है कि देश के किसान के साथ आपसी संवाद स्थापित करने हेतु हिन्दी को अपनाया जाएं, तभी विकसित तकनीकी एवं अनुसंधान का सार्थक परिणाम हमें मिल सकेगा। उन्होंने ऐतिहासिक तौर पर जो उष्ट्र पालन संबंधी नीति/तरीके कारगर साबित हुए, उनका अवलोकन किए जाने की महत्ती आवश्यकता जताई। उन्होंने कहा कि हमें इतिहास से सीख लेने की जरूरत हैं क्योंकि पशु संख्या में लगातार आ रही गिरावट इस बात की मांग भी करती है कि ऐतिहासिक व समकालीन परिस्थितियों, प्रमाणिकताओं से जुड़ाव स्थापित हों ताकि ये उष्ट्र प्रजाति के संरक्षण एवं विकास में सहायक सिद्ध हो सके।

डॉ. पाटिल ने भाषा पर अपनी बात रखते हुए इस हेतु जोर दिया कि हमें अपनी भाषा व संस्कृति पर विश्वास कायम रखना चाहिए। अपनी समृद्धि को समझने में किसी भी प्रकार की हिचकिचाहट को दर किनार किया जाना चाहिए। उन्होंने भाषा रूपी अग्नि हमेशा प्रज्जवलित रखते हुए प्रचलित भाषा के प्रयोग की सलाह दी।

कार्यशाला व्याख्यान सत्रों के अंत में प्रतिभागियों की जिज्ञासाओं का निराकरण किया गया। विभिन्न समाचार–पत्रों में आयोजित कार्यशाला संबंधी समाचार प्रकाशित किया गया। कार्यशाला कार्यक्रम का संचालन श्री नेमीचंद, तकनीकी अधिकारी द्वारा किया गया। अतिथि वक्ताओं, कार्यशाला कार्यक्रम अध्यक्ष एवं केन्द्र निदेशक एवं उपस्थित सभी वैज्ञानिकों, अधिकारियों एवं कर्मचारियों के प्रति धन्यवाद ज्ञापित करते हुए कार्यशाला का समापन किया गया।

राजभाषा कार्यशाला : 13 जून, 2013

राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र, बीकानेर द्वारा दिनांक 13 जून 2013 को एक दिवसीय राजभाषा कार्यशाला का आयोजन किया गया। केन्द्र द्वारा राजभाषा कार्यशालाएं विविध विषयों पर आयोजित किए जाने के अन्तर्गत ही इस कार्यशाला में श्रीमान जी.एम.देशपांडे, उप महाप्रबंधक (से.नि.), इंजीनियर इण्डिया लिमिटेड, भारत सरकार द्वारा 'स्वस्थ जीवन हेतु अपनाएं सहज योग' विषयक व्याख्यान प्रस्तुत करने हेतु आमंत्रित किया गया।

कार्यशाला में केन्द्र के निदेशक एवं कार्यक्रम अध्यक्ष, आमंत्रित वक्ता तथा उपस्थित सभी वैज्ञानिकों, अधिकारियों एवं कर्मचारियों का स्वागत करते हुए कार्यशाला सत्र प्रारम्भ किया गया। आयोजित कार्यशाला इस उद्देश्य से प्रेरित रही कि बदलते परिदृश्य में मानवीय जीवनशैली में आए तेजी से बदलाव ने उसके तन एवं मन दोनों को अत्यधिक प्रभावित किया है। अतः इस भाग–दौड़ भरी जिंदगी में तनाव रहित जीवन जीने, कार्य क्षमता में अभिवृद्धि, आत्मविश्वास और अंतः करण की खुशी प्राप्त कर एक स्वस्थ जीवन शैली अपनाया जाना महत्ती आवश्यकता है। इसी आधार पर 'स्वस्थ जीवन हेतु अपनाएं सहज योग' विषय पर कार्यशाला आयोजित की गई।

कार्यशाला के इस अवसर पर 'स्वस्थ जीवन हेतु अपनाएं सहज योग' विषयक व्याख्यान प्रस्तुत करते हुए श्री जी.एम.देशपांडे ने प्रतिभागियों को आश्वस्त किया कि इस विविध विषयक व्याख्यान द्वारा वे एक बेहतर जीवन को पा सकते हैं। यह सभी के लिए जरूरी भी हो गया है क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति अपनी दिनचर्या में व्यस्तता के रहते अपने स्वास्थ्य के पहलू से कटता जा रहा है, नतीजतन आज का मानव रोगग्रस्त है। ऐसे में व्यक्ति को अपने स्वास्थ्य

के प्रति अधिक सजग होना चाहिए। अतिथि वक्ता ने पूज्य श्रीमाता निर्मला देवी की प्रेरणा शक्ति से चल रहे इस सहज योग की यह विशेषता बताई कि यह सामूहिकता में विश्वास करता है तथा इसी से प्राप्त परिणाम अधिक प्रभावी व उत्साहवर्धक होते है। श्री देशपांडे द्वारा सभा में उपस्थित सभी प्रतिभागियों को अपने व्याख्यान प्रस्तुति के साथ–साथ व्यावहारिक रूप में भी सहज योग की क्रियाओं एवं चक्रों का अभ्यास करवाया गया। अन्त में उन्होंने कहा कि सहज योग को जीवन में अपनाने से व्यक्ति की समाज के प्रति कर्त्तव्य में वृद्धि होगी, वाणी अधिक शुद्ध व सत्य होगी। व्यक्ति अपनी व्यावसायिक उन्नति के साथ एक अच्छा इंसान बनने की ओर अग्रसर होगा।

इस अवसर पर केन्द्र निदेशक एवं कार्यक्रम अध्यक्ष डॉ. नितीन वसंतराव पाटिल ने अतिथि वक्ता को एक महत्वपूर्ण व गूढ़ ज्ञान युक्त व्याख्यान प्रस्तुति हेतु धन्यवाद व्यक्त करते हुए कहा कि अच्छा व्यक्तित्व राष्ट्र व संपूर्ण विश्व में एक स्वस्थ वातावरण का निर्माण करने में सहायक होता है। सहज योग रूपी यह पौधा अंकुरित होकर समस्त वसुंधरा में स्वस्थ वातावरण का निर्माण कर रहा है, ऐसे में इसका अधिकाधिक लाभ लिया जाना चाहिए। इस योग में संचालित क्रियाओं द्वारा यह देखा गया है कि व्यक्ति आत्म साक्षात्कार का आनंद प्राप्त करता है। वह इसके माध्यम से अधिक शांत व्यक्तित्व का निर्माण करने में सक्षम होता है।

डॉ. पाटिल ने कहा कि आज अर्थप्रधान युग में व्यक्ति अपने स्वास्थ्य की अनदेखी करता है। ऐसे में आचार–विचार–आहार इसे और अधिक प्रभावित कर रहे हैं। अतिथि वक्ता द्वारा प्रस्तुत व्याख्यान हमें प्रेरित करता है कि एक स्वस्थ जीवन शैली हेतु सहज योग को अपनाया जाए। यह व्यक्ति के सर्वांगीण विकास के लिए महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। कार्यक्रम के अंत में प्रभारी राजभाषा एवं वरिष्ठ वैज्ञानिक डॉ.फतेह चन्द्र टुटेजा द्वारा अतिथि वक्ताओं, कार्यशाला कार्यक्रम अध्यक्ष एवं केन्द्र निदेशक एवं उपस्थित सभी वैज्ञानिकों, अधिकारियों एवं कर्मचारियों के प्रति धन्यवाद ज्ञापित करते हुए कार्यशाला का समापन किया गया।

राजभाषा कार्यशाला : 28 जून, 2013

राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र, बीकानेर द्वारा राजभाषा नीति कार्यान्वयन के अन्तर्गत दिनांक 28 जून, 2013 को एक दिवसीय राजभाषा कार्यशाला का आयोजन किया गया। राजभाषा प्रबन्धन एवं कम्प्यूटर यूनिकोड विषय पर आयोजित इस कार्यशाला में श्री मनोज कुमार, वरिष्ठ तकनीकी अधिकारी, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली, श्रीमती संगीता सेठी, प्रशासनिक अधिकारी एवं पूर्व राजभाषा अधिकारी, भारतीय जीवन बीमा निगम, मंडल कार्यालय, बीकानेर एवं श्री अनिल कुमार शर्मा, राजभाषा अधिकारी, मंडल रेल प्रबन्धक कार्यालय, उ.प.रे. एवं सचिव, नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति, बीकानेर को आमन्त्रित किया गया। कार्यशाला में श्री मनोज कुमार द्वारा 'राजभाषा प्रबन्धन', श्रीमती संगीता सेठी द्वारा हिन्दी का भविष्य एवं श्री अनिल कुमार द्वारा 'कम्प्यूटर : यूनिकोड का महत्व' विषयक व्याख्यान प्रस्तुत किए गए। कार्यशाला में केन्द्र के निदेशक एवं कार्यक्रम अध्यक्ष, आमंत्रित अतिथि वक्ताओं तथा उपस्थित

सभी वैज्ञानिकों, अधिकारियों एवं कर्मचारियों का स्वागत करते हुए कार्यशाला सत्र प्रारम्भ किया गया।

प्रभारी राजभाषा डॉ.फतेह चन्द टुटेजा द्वारा आयोजित कार्यशाला के उद्देश्य एवं महत्व पर प्रकाश डालते हुए बताया गया कि भारत सरकार की राजभाषा नीति के सफल क्रियान्वयन हेतु केन्द्र में नियमित रूप से राजभाषा कार्यशालाएं आयोजित की जाती है। केन्द्र के निदेशक महोदय के कुशल नेतृत्व में राजभाषा कार्यशालाओं में बहुआयामी विषय भी शामिल किए जाते हैं जो केन्द्र के सभी वैज्ञानिकों, अधिकारियों एवं कर्मचारियों को उनके कार्यक्षेत्र के ज्ञान में अभिवृद्वि करने में मददगार हो सके। आज की आयोजित कार्यशाला का मुख्य ध्येय राजभाषा के बेहतर प्रबन्धन एवं राजभाषा प्रयोग हेतु उपयुक्त वातावरण का सृजन करना है।

कार्यालय व्याख्यान सत्र

कार्यशाला के इस अवसर पर 'राजभाषा प्रबन्धन' विषयक व्याख्यान प्रस्तुत करते हुए श्री मनोज कुमार ने राजभाषा कार्यशालाओं पर बोलते हुए कहा कि अधिकारी एवं कर्मचारी गण राजभाषा प्रयोग के दौरान आ रहे बाधाओं, जिज्ञासाओं का निराकरण इन कार्यशालाओं के माध्यम से प्राप्त कर सकते हैं। रोजमर्रा के कामकाज में हिन्दी भाषा का प्रयोग करने पर ही भारत सरकार की राजभाषा नीति अधिक प्रभावी व कारगर ढंग से लागू होगी। श्री मनोज द्वारा सभाकक्ष में उपस्थित प्रतिभागियों को भारत सरकार की राजभाषा नीति के अन्तर्गत अनुच्छेदों, नियमों, उप–नियमों, धाराओं आदि के बारे में विस्तारपूर्वक जानकारी दी गई। इस दौरान प्रतिभागियों ने राजभाषा नीति संबंधी विभिन्न पहलुओं, इसके व्यावहारिक प्रयोग आदि पर भी चर्चा की तथा राजभाषा नीति के महत्व एवं सशक्तता को भी जाना। अपने व्याख्यान के अंत में श्री मनोज कुमार ने कहा कि यद्यपि राजभाषा नीति कार्यान्वयन के अन्तर्गत नीति नियमों की अवहेलना पर दण्ड आदि का भी प्रावधान हैं परंतु राजभाषा प्रेरणा और प्रोत्साहन के द्वारा और अधिक प्रभावी सिद्व होगी।

कार्यशाला के 'हिन्दी का भविष्य' विषयक दूसरा व्याख्यान श्रीमती संगीता सेठी द्वारा प्रस्तुत किया गया। श्रीमती सेठी ने कहा कि राजभाषा आज अधिक प्रभावी एवं तेजी से कार्यप्रणाली में शामिल होती जा रही है। इसका श्रेय गृह मंत्रालय, राजभाषा विभाग को जाता है। उन्होंने कहा कि सभ्यता एवं संस्कृति के विकास हेतु होने वाला व्यय किसी प्रकार की पुर्नप्राप्ति के उद्देश्य को लेकर नहीं किया जाता बल्कि यह नितांत आवश्यक है। उन्होंने कहा कि समय परिवर्तनशील है और हिन्दी भाषा का विकास हस्त–लेखन से कम्प्यूटर क्रान्ति तक पहुंच चुका है, उस दौरान कोई सहसा ही विश्वास नहीं करता था कि कम्प्यूटर पर हिन्दी प्रयोग संभव हो पाएगा। लेकिन उस दौरान एक सोच काम कर रही थी, बदौलत इसके समाधान भी मिले कि कम्प्यूटर पर हिन्दी प्रयोग आज धीरे–धीरे अपनी पकड़ बना रहा है। श्रीमती सेठी ने कहा कि भारत को विश्व में धर्म गुरू के रूप में जाना जाता था तथा आज भी इस राष्ट्र के ज्ञान की ओर विश्व आकर्षित है जिसके लिए उन्हें हिन्दी का ज्ञान लेना आवश्यक होगा।

इस अवसर पर अन्य अतिथि वक्ता के रूप में पधारे श्री अनिल कुमार ने 'कम्प्यूटर : यूनिकोड का महत्व' विषयक व्याख्यान प्रस्तुत किया। श्री अनिल कुमार ने वर्तमान में कम्प्यूटर पर हिन्दी के बढ़ते प्रयोग की स्थिति को संतोषजनक बताया तथा कहा कि आज कम्प्यूटर पर हिन्दी में कार्य करना आसान होता जा रहा है, यूनिकोड के माध्यम से आप कहीं पर किसी भी जगह संदेश (ई–मेल) सुविधा का लाभ उठा सकते हैं। आज हिन्दी के की–बोर्ड, स्पेल चेकर आदि उपलब्ध है, गुगल आईएमई के माध्यम से टंकण आदि की सुविधा उनके लिए बेहद उपयोगी साबित हो रही है जो हिन्दी टंकण नहीं जानते, वे इससे हिन्दी भाषा में अपना काम बेहतर तरीके से निष्पादित कर सकते हैं। साथ ही कई ऐसी वेबसाईटें हैं जो हिन्दी फॉन्ट, कनवर्ट एवं अनुवाद जैसी सुविधा मुहैया करवा रही हैं। श्री अनिल कुमार ने स्पष्ट किया कि हिन्दी हर प्रकार से सक्षम है केवल इच्छाशक्ति से कार्य करने की जरूरत है।

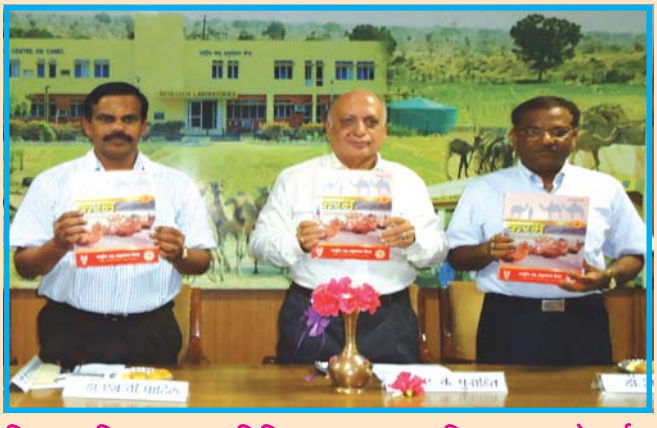

किसान दिवस पर अतिथि गण करभ पत्रिका का लोकार्पण करते हुए

कार्यशाला के इस अवसर पर केन्द्र निदेशक एवं कार्यक्रम अध्यक्ष डॉ. नितीन वसन्तराव पाटिल ने सभी वैज्ञानिकों, अधिकारियों एवं कर्मचारियों को संबोधित करते हुए कहा कि केन्द्र कार्यशालाओं के माध्यम से राजभाषा कार्यप्रणाली के बेहतर कार्यान्वयन पर चिन्तन करता है। यह जरूरी भी है क्योंकि हमारा संस्थान जिस पशु विशेष (ऊँट) से जुड़ा हुआ है, उसका पालक अपनी प्रादेशिक भाषा के साथ केवल हिन्दी भाषा ही जानता है, अतः केन्द्र अपनी अनुसंधान उपलब्धियों, गतिविधियों, वार्षिक प्रतिवेदनों को राजभाषा हिन्दी में प्रकाशित एवं प्रचारित कर जरूरतमंदों को लाभान्वित करने हेतु तत्पर रहता है। डॉ. पाटिल ने इसकी महत्ती आवश्यकता जताई कि जब हमारा वैज्ञानिक हिन्दी भाषा में सोचेगा तो प्राप्त अनुसंधान सम्बन्धी सूचनाओं जानकारियों का संप्रेषण अधिक प्रभावी होगा। डॉ.पाटिल ने सभी को व्याख्यानों से प्राप्त ज्ञान का लाभ लिए जाने हेतु प्रोत्साहित किया। कार्यक्रम के अंत में डॉ. शरत् चन्द्र मेहता, प्रधान वैज्ञानिक द्वारा धन्यवाद ज्ञापित किया गया।

राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र को राजभाषा सम्मान

नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति, बीकानेर की ओर से केन्द्र को वर्ष 2012–13 के दौरान तकनीकी शोध पत्र व वार्षिक प्रतिवेदन में राजभाषा के विशिष्ट प्रयोग के लिए प्रशस्ति पत्र देकर सम्मानित किया गया। केन्द्र को यह पुरस्कार अध्यक्ष नराकास एवं मंडल रेल प्रबंधक श्रीमती मंजू गुप्ता के कर कमलों द्वारा नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति की दिनांक 27.06.2013 को आयोजित बैठक में प्रदान किया गया।

❀❀❀❀

आपके पत्र

आपके द्वारा प्रकाशित वार्षिक गृह पत्रिका 'करभ' गणेश शंकर विद्यार्थी हिन्दी कृषि पत्रिका पुरस्कार योजना के अंतर्गत पुरस्कार के लिए प्रविष्टि के रूप में प्राप्त हुई थी। उक्त पत्रिका विविध विषयों, आकर्षक साज–सज्जा और रंगीन चित्रों से सुसज्जित है, जो वैज्ञानिक लेखों के माध्यम से विज्ञान में हिन्दी के प्रचार–प्रसार में अपना उद्देश्य पूर्ण करती प्रतीत होती है। इसके लिए आप तथा इसके संपादकीय मंडल बधाई के पात्र है। आशा है, भविष्य में भी इसकी गुणवत्ता को बनाए रखेंगे।

हरीश चन्द्र जोशी
निदेशक (रा.भा.)
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद,
नई दिल्ली

आपके इस अंक में काफी नई जानकारियाँ समाहित हैं। इससे यह अंक अपना महत्व प्रदर्शित करता है। इस पत्रिका को और अधिक उपयोगी व सार्थक बनाने हेतु ऊँट पालकों एवं ग्रामीण वासियों के पुराने पारंपरिक अनुभवों का एक स्तंभ और जोड़ा जाए तो अच्छा होगा। शुभ कामनाओं सहित।

घनश्याम व्यास
वरिष्ठ व्याख्याता (हि.सा.)
बिन्नाणी कन्या महाविद्यालय, बीकानेर

आपके केन्द्र की राजभाषा पत्रिका 'करभ' 2012 का अंक अत्यंत आकर्षक व उपयोगी लगा। पत्रिका में न केवल आलेख बल्कि कविताओं के माध्यम से ऊँट का गुणगान प्रभावी ढंग से दर्शाया गया है जिसके लिए रचनाकार बधाई के पात्र हैं। मेरी और से करभ के आगामी अंकों हेतु शुभकामनाएं।

डॉ. महेन्द्र कुमार साहू,
वरिष्ठ तकनीकी अधिकारी (रा.भा.)
राष्ट्रीय मृदा सर्वेक्षण एवं भूमि उपयोग नियोजन ब्यूरो
अमरावती रोड़, नागपुर–33, महाराष्ट्र